॥ श्री ॥

संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का १७ वाँ रत्न

नन्दी सूत्र

विवेचक—

पं. मुनिश्री पारसकुमारजी महाराज

प्रकाशक—

अ. भा. साधुमार्गी जैन
संस्कृति रक्षक संघ
सैलाना (म. प्र.)

अन्नाण-संमोह तमोहरस्स,
नमो नमो नाण दिवायरस्स

卐 दृढ़धर्मी प्रियधर्मी सुश्रावक श्रीमान् सेठ मिलापचन्दजी साहब बोहरा, मंड्या निवासी की धर्मप्राणा मातेश्वरी की उदार सहायता से, लागत से भी कम मूल्य—

मूल्य २--५०

द्वितीयावृत्ति १००० | द्वितीय श्रावण शु. ८
वीर संवत् २४९२ | विक्रम संवत् २०२३

प्रकाशकीय निवेदन

नन्दीसूत्र में मात्र ज्ञान का ही प्रतिपादन हुआ है। अन्य सूत्रों में तो एक से अधिक विषय भी संग्रहित हुए हैं। कुछ में चरित्र वर्णन है, तो कुछ में आचार विधान है, किंतु एक ही विषय और वह भी मोक्ष के प्रथम अंग ऐसे ज्ञान का प्रतिपादक तो यह नन्दीसूत्र ही है।

नन्दीसूत्र का नाम ही आनन्दकारी है। इसका स्वाध्याय कई संत सती, नित्य करते रहते हैं। बहुतों के तो यह कंठाग्र है। उपासक वर्ग में भी इसके मूल पाठ का स्वाध्याय होता है। यदि मूल के साथ इसका भाव भी हृदयंगम रहे, तो अत्यधिक लाभ का कारण है। अतएव यह नूतन संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इससे स्वाध्यायी वर्ग अवश्य लाभान्वित होगा।

इसमें उत्पातिकी आदि चार वुद्धि की जो कथाएँ दी हैं, वे पं. श्री घेवरचन्द्रजी बांठिया (वर्त्तमान मुनि श्री वीरपुत्रजी म० सा०) की लिखी हुई, हमारे पास रखी थी, वे दी गई हैं और परिशिष्ट में अनुज्ञा-नन्दी और लघुनन्दी भी देकर एक उपयोगी साहित्य से समाज को अवगत कराया है। अनुज्ञानन्दी में केवल 'अनुज्ञा' शब्द पर ही—१ नाम २ स्थापना ३ द्रव्य ४ क्षेत्र ५ काल और ६ भाव के मूल भेद तथा उत्तर भेद से तथा नयदृष्टि से विवेचन किया गया है। इसका विषय अनुयोग-द्वार सूत्र के 'आवश्यक' पद पर हुए विवेचन के समान है और मननीय है। लघुनन्दी में केवल श्रुतज्ञान का ही विपय है, क्योंकि पठन, पाठन, अभ्यासादि श्रुतज्ञान का ही होता है, शेष चार ज्ञान का नहीं होता। क्रियात्मक व्यवहार, श्रुतज्ञान का ही होता है। इसका नाम—'योग क्रिया रूप बृहद् नन्दी' भी है। लघुनन्दी का विषय सरल है और नन्दीसूत्र के श्रुत भेद में आया हुआ है। इसलिए इसका अर्थ नहीं देकर मात्र मूल पाठ ही दिया है। आशा है कि इससे पाठकों को विशेप लाभ होगा।

नन्दीसूत्र की प्रथमावृत्ति का अनुवाद स्व. आत्मार्थी श्री केवलमुनिजी म० सा० के सुशिष्य तथा तपस्वी मुनिराज श्री लालचंदजी म० सा० के अंतेवासी पं० मुनि श्री पारसकुमारजी म० ने किया था और इस दूसरी आवृत्ति का विशद विवेचन भी आप ही ने लिखने की कृपा की है। मुनिश्री की ज्ञान साधना की लगन विशेष है। बुद्धि भी पैनी है। आपने बहुश्रुत श्रमणश्रेष्ठ पं० मुनिराज पू० श्री समर्थमलजी म० सा० की सेवा में रहकर ज्ञान चेतना को पुष्ट एवं समृद्ध करने का भरसक प्रयत्न किया है। आप श्रुत सेवा में सदैव तत्पर रहते हैं। आप से समाज बहुत लाभान्वित होगा और निर्ग्रंथ परम्परा को बल मिलेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रथमावृत्ति का प्रकाशन ६ वर्ष पूर्व हुआ था। उस समय इसका पूरा व्यय खीचन निवासी उदारमना श्रीमान् सेठ मानकलालजी अमरचंदजी बोथरा ने दिया था। यह आवृत्ति समाप्त हो जाने के बाद निरन्तर माँग आ रही थी। हमारा विचार इस बार विशेष विवेचन युक्त आवृत्ति का प्रकाशन करने का था। हमने गत वर्ष जयपुर चातुर्मास के समय मुनि श्री से निवेदन किया। आपने हमारी प्रार्थना स्वीकार की और काम प्रारंभ कर दिया। परिणाम पाठकों के हाथ में है।

संघ की ओर से अब विवेचन युक्त आगमों का प्रकाशन किया जाने लगा है। इससे ग्रंथ का आकार बढ़ता है और लागत बढ़ती है, तदनुसार मूल्य भी बढ़ता है। किंतु संघ का प्रयत्न लागत अथवा लागत से भी कम मूल्य में जिनवाणी का प्रचार का रहता है। इस आवृत्ति में लागत तीन रुपया प्रति से भी विशेष हुआ है, किंतु मंड्या निवासी उदारमना दृढ़-धर्मी प्रियधर्मी सुश्रावक श्रीमान् सेठ मिलापचंदजी सा० बोहरा की धर्मप्राणा मातेश्वरी की उदारता से इसका मूल्य २) ५० ही रखा है। आशा है कि पाठक इससे पूरा लाभ उठायँगे।

अनुवादक के शब्द

—:x:—
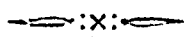
संवत् २०१४ में फलौदी (मारवाड़) में वर्षावास हुआ था, उस चातुर्मास में श्री नन्दीसूत्र का प्रथमवार अनुवाद किया था। उसके वाद आठ वर्ष में संवत् २०२२ में जयपुर में वर्षावास हुआ। उस चातुर्मास में श्री नन्दी सूत्र का दूसरी वार अनुवाद किया।

प्रथम वार के अनुवाद में जो अर्थ विषयक अशुद्धियां रह गई थीं, वे इस वार के अनुवाद में न रहें, इसका उपयोग रक्खा गया है। अर्थ के उपरान्त पूर्व अनुवाद में जो अल्प विवेचन था, उसमें अल्प परिवर्त्तन किया गया है, तथा कुछ नया परिवर्धन किया गया है।

सामान्यतया प्राणी का ज्ञान ज्यों ज्यों पूर्व की अपेक्षा बढ़ता है, त्यों त्यों जहाँ एक ओर ज्ञान विषयक पुरानी अशुद्धियाँ दूर होती हैं, वहाँ क्षयोपशम की अविशुद्धता के कारण कुछ नई अशुद्धियाँ भी जन्म लेती हैं। अतएव इस अनुवाद में भी प्रथम वार के अनुवाद में रही हुई अशुद्धियाँ दूर हुई होगीं, वहां नई अशुद्धियाँ भी प्रविष्ट हुई होंगी, उसके लिए ज्ञानियों के समक्ष 'मिच्छा मि दुक्कडं' की भावना करता हूँ।

विद्वान् पाठकों से विनम्र अनुरोध है कि वे इस अनुवाद में रही हुई अशुद्धि त्रुटि आदि को सूचित कर मझे अनुगृहित करें, जिससे भविष्य में उसका संशोधन हो सके।

विषयानुक्रमणिका~

मूलपाठ का शुद्धि पत्र

पृष्ठ	मूल पाठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८	२	पुष्फदंत	पुप्फदंत
२१	३	हारियगुत्त	हारियगुत्तं
८३	२	मणुसाण	मणूसाण
९६	४	जोईट्ठाणं	जोइट्ठाणं
१०७	१	गाऊयम्मि	गाउयम्मि
१०७	३	साहिआ मासा	साहिओ मांसो
१०७	४	पुहुतं	पुहुत्तं
११५	३	वाल	वाल
११९	१	त्तं	तं
१२९	३	उप्पज्जई	उप्पज्जइ
१३६	३	कम्मभमिय	कम्मभूमिय
१४०	३	खंघे	खंधे
१४०	४	अब्भहियंतराए	अब्भहियतराए
१४२	६	छपन्नाए	छप्पन्नाए
१४३	१	अब्भहियत्तरं	अब्भहियतरं
१७२	४	सु नाणं	सुयनाणं
१७५	४	पचमा	पंचमा
१७७	३	सगड	अगड
३१९	१	सूयनिस्सियं	सुयनिस्सियं
३२९	३	जब्भिदिय	जिब्भिदिय
३३०	३	वुद्धि	बुद्धी
३३८	६	होहि	होही
३४०	१	पविसई	पविसइ
३४०	१	जाणई	जाणइ

पृष्ठ	मूल पाठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५२	१	उग्गहणंम्मि	उग्गहणंमि
३५३	२	होई	होइ
३७६	६	वावत्तरि	बावत्तरि
४०२	४	पण्णतं	पण्णत्ते
४०६	२	परुविज्जंति	परूविज्जंति
४११	५	अण्णाणिपवाईणं	अण्णाणियवाईणं
४११	६	वूहं	वूहं
४१६	५	परुविज्जंति	परूविज्जंति
४२०	१	वावत्तरि	बावत्तरि
४२७	२	परुविज्जंति	परूविज्जंति
४३८	८	अणंत	अणंता
४४०	३	संखेजाओ	संखेज्जाओ
४४६	७	रासिवद्धं ४४	रासिवद्धं ४
४५४	५	अबंझं	अवंझं
४५८	८	अवंझ	अवंझ
४६५	३	पडीवत्तीओ	पडिवत्तिओ
४६५	८	पाहुडिओ	पाहुडियाओ
४६६	५	आघविज्जंति	आघविज्जति
४६७	२	भवीयं	भविय
४७५	१	वाढ	बाढ

हिन्दी अनुवाद का शुद्धि पत्र

पृष्ठ	अर्थ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	५	समह	समूह
२७	६	सस्त	समस्त
३६	२३	तृणादि	तृण आदि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६१	१५	के नगर	नगर
६६	१३	उसी प्रकार	उसी प्रकार जो
७२	१०	आ जाता	रहता
७६	८	विशेष	विशेष में
८६	२१	अन्गत	अन्तगत
९०	१८	है	है कि उससे एक ही दिशा के पदार्थ जाने जा सकते हैं
९६	१६	नमक	नामक
१०३	१२	चौथे समय के	चौथे समय में
		पूर्व मत्स्य अपने	मत्स्य अपने पूर्व
११४	५	हुई	०
१४६	१३	कालिक	सर्वकालिक
१६१	१८	से को	से
१६४	२	क्षेत्रों की	ज्ञेयों की
३३४	१७	चार अर्थ, अवग्रह	चार, अर्थ अवग्रह
३४०	१६	समय	बिन्दु
३८२	१३	आदि	सादि
४१५	१५	षोऽशक	षोडशक
४२८	५	नमन	गमन
४२८	११	ज्ञान	ज्ञात
४२९	१३	धर्माचार्य—धर्माचार्य	धर्माचार्य का
		का पदार्पण	पदार्पण, धर्माचा
४४९	११	विप्रजह	विप्रजहन
४५९	१२	साथ	मूल विषय के साथ
४६१	४	उत्पत्र	उत्पन्न

—:x:—

अस्वाध्याय

निम्न लिखित चौंतीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश संबंधी १० अस्वाध्याय	काल मर्यादा
१ बड़ा तारा टूटे तो	एक प्रहर
२ उदय अस्त के समय लाल दिशा	जब तक रहे
३ अकाल में मेघ गर्जना हो तो	दो प्रहर
४ " बिजली चमके तो	एक प्रहर
५ " बिजली कड़के तो	दो प्रहर
६ शुक्ल पक्ष की १-२-३ की रात	प्रहर रात्रि तक
७ आकाश में यक्ष का चिन्ह हो	जब तक दिखाई दे
८-९ काली और सफेद धूंअर	जब तक रहे
१० आकाश मण्डल धूलि से आच्छादित हो	"

औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

११-१३ हड्डी, रक्त और मांस, ये तिर्यञ्च के ६० हाथ के भीतर हों। मनुष्य के हों तो १०० हाथ के भीतर। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो तो १२ वर्ष तक।

१४ अशुचि की दुर्गन्ध आवे या दिखाई दे तब तक
१५ श्मशान भूमि– सौ हाथ से कम दूर हो तो
१६ चन्द्रग्रहण––खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर
१७ सूर्य ग्रहण " १२ " १६ "
१८ राजा का अवसान होने पर, जबतक नया राजा घोषित न हो।
१९ युद्ध स्थान के निकट जब तक युद्ध चले।
२० उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो, जब तक पड़ा रहे।
२१–२५ आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन,
कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा दिन रात
२६–३० इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदाएँ "
३१–३४ प्रातः, मध्यान्ह, संध्या और अर्द्ध रात्रि १–१ मुहूर्त।

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुँह नहीं बोलना तथा दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट–मेघ गर्जनादि में अकाल, आर्द्रा नक्षत्र से पूर्व और स्वांति से बाद का माना गया है।

ज्ञान की महिमा

ज्ञान गुण मोदक हू सो मीठो ।।टेर।।

जा को ज्ञान रुच्यो ता जन को,
लागत षट रस सीठो ।।१।।

भोगे भोग विवश याही ते,
करम न बाँधे चीठो ।।२।।

ज्ञान बिना जाने ना प्राणी,
निज-पर ईठ अनीठो ।।३।।

ज्ञान क्रिया दोऊ सदरिस पै,
लागे ज्ञान गरीठो ।। ४ ।।

'माधव' कहे ज्ञान गुण दायक,
सुगुरु मगन मुनि दीठो ।।५।।

अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ
मु.
सैलाना (म.प्र.)
अ

णमो णाणस्स

सिरि नंदी सुत्तं

(श्री नन्दी सूत्र)

नन्दी सूत्र=आनन्द, हर्ष, और प्रमोद को 'नन्दी' कहते हैं। यह पाँच ज्ञान का निरूपण करनेवाला सूत्र, ज्ञान रूप आनन्द का देने वाला है, अतः इसे 'नन्दी सूत्र' कहते हैं। किसी भी सूत्र को आरम्भ करने से पूर्व मंगल के लिए इस नन्दी सूत्र का स्वाध्याय किया जाता है।

इस सूत्र के प्रारम्भ में आचार्यश्री 'देववाचकजी' ने जो स्तुति की है और आवलिका प्रतिपादित की है, वह इस प्रकार है।

आचार्यश्री सर्व प्रथम अनादि से अब तक के सभी तीर्थंकरों की सामान्यतः स्तुति करते हैं;-

तीर्थंकर स्तुति

जयइ जग-जीव-जोणी-वियाणओ, जग-गुरू जगाणंदो।
जग-णाहो जग-बंधू, जयइ जगप्पियामहो भयवं ॥१॥

१ हे भगवन् ! आप जग-'जीव और योनि के विज्ञाता हैं'=१ धर्म २ अधर्म ३ आकाश ४ जीव ५ पुद्गल और ६ काल रूप छह द्रव्यात्मक सकल जगत् को, सिद्ध और संसारी रूप सकल

जीवों को और जीवों की उत्पत्ति स्थान रूपी सभी योनियों को विशेष रूप से जाननेवाले केवलज्ञानी हैं।

२ आप 'जगत् गुरु' हैं='छहों द्रव्यों के' यथार्थ 'प्रतिपादन करने वाले' हैं।

३ आप 'जगदानंद' हैं='पर्याप्त संज्ञी पञ्चेन्द्रिय भव्य जीवों को' अपने उत्तमदर्शन और सद्धर्मोपदेश के द्वारा इहलौकिक पारलौकिक और अलौकिक मोक्ष 'आनंद को' देने वाले हैं। ऐसे हे भगवन् ! आप 'जयवन्त' है=इन्द्रिय, विषय, कषाय, परीषह, उपसर्ग, घातिकर्म आदि सभी शत्रुओं को जीतने के कारण सबसे बढ़कर हैं।

४ आप 'जगन्नाथ' हैं=छहों द्रव्यों की यथार्थ प्ररूपणा द्वारा, अयथार्थ प्ररूपणा से उनकी 'रक्षा करने वाले' हैं।

५ आप 'जगद्बन्धु' हैं=सभी संसारी प्राणियों की, अहिंसा के उपदेश द्वारा रक्षा करनेवाले 'स्वजन' हैं।

६ आप 'जगत् पितामह' हैं=सभी भव्य जीवों को दुर्गति से बचाने वाला जो पिता के समान धर्म है, उस धर्म को आप प्रकट करने वाले हैं, अतः आप जगत् के पितामह=पिता के पिता=दादा हैं।

७ आप 'भगवान्' हैं=सर्वश्रेष्ठ १ ऐश्वर्यवान् २ रूपवान् ३ यशवान् ४ श्रीमान् ५ धर्मवान् और ६ प्रयत्नवान् हैं।

ऐसे हे भगवन् ! आप 'जयवन्त' हैं=सब से बढ़कर हैं।

(जो सबसे बढ़कर होता है, वह बुद्धिमानों के लिए अवश्य प्रणाम करने योग्य होता है। तात्पर्य यह है कि इस कारण

मैं भी आपको प्रणाम करता हूँ।)

स्तुति आदि के प्रसंग में किसी शब्द के बार बार प्रयोग को निर्दोष माना गयाहै। अतः यहाँ और आगे 'जयति' आदि के बार बार प्रयोग को निर्दोष समझना चाहिए।

महावीर स्तुति

अब आचार्यश्री निकट उपकारी भगवान् महावीर की स्तुति करते हैं;–

जयइ सुयाणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ।
जयइ गुरू लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ॥२॥

१ हे महावीर! आप 'श्रुतों के प्रभव' हैं–जितने भी आचारांग आदि सूत्र रूप आगम हैं उनके मूल आप ही हैं, क्योंकि आपके अर्थ रूप आगम के आधार पर ही गणधर और पूर्वधरों ने उनकी रचना की है। ऐसे हे भगवन्! आप जयवन्त हैं।

२ आप 'तीर्थंकरों में अपश्चिम' हैं–इस अवसर्पिणी काल में इस भरत क्षेत्र में जो चौवीस तीर्थंकर हुए हैं, उनमें सबसे अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर हैं। आपके पीछे और कोई तीर्थंकर नहीं हुआ। ऐसे हे भगवन्! आप जयवन्त हैं।

३ आप 'लोगों के गुरु' हैं–तीर्थंकर और सर्वश्रुत के मूल होने से आप सब जीवों के गुरु हैं अर्थात् सभी के उपदेश दाता होने से सभी जीवों के लिए गुरु रूप से पूज्य हैं। ऐसे हे भगवन्! आप जयवन्त हैं।

४ आप 'महात्मा' हैं—आपकी आत्मा अचिन्त्य अनन्त वीर्य से युक्त है।

५ आप 'महावीर हैं'—विषय कषाय आदि महाशत्रुओं को जीतनेवाले हैं, अथवा घातिकर्म रूप शत्रुओं को खदेड़ने वाले हैं अथवा मोक्ष प्राप्त करने वाले हैं।

ऐसे हे भगवन् ! आप 'जयवंत' हैं।

भद्दं सव्व-जगुज्जोयगस्स, भद्दं जिणस्स वीरस्स।
भद्दं सुरासुरनमंसियस्स, भद्दं धुयरयस्स ॥३॥

हे महावीर ! आप 'सर्व जगत् के उद्योतक' हैं—समस्त लोक अलोक रूप जगत् को केवलज्ञान के द्वारा प्रकाशित करनेवाले हैं। (इसके द्वारा भगवान् का 'ज्ञान अतिशय' कहा गया)। ऐसे हे भगवन् ! आपका 'भद्र' हो—भला हो, कल्याण हो।

आप 'जिन' हैं—इन्द्रिय, विषय, कषाय, परीषह, उपसर्ग, घातिकर्म आदि शत्रुओं को जीतने वाले हैं। (इसके द्वारा 'अपाय-अपगम अतिशय कहा गया।) ऐसे हे भगवन् ! आपका 'भद्र' हो—भला हो, कल्याण हो।

आप 'सुर असुर नमस्कृत हैं'—वैमानिक और ज्योतिष्क रूप देव और भवनपति व्यन्तर रूप दानवों के द्वारा पञ्चांग वन्दना से वन्दित हैं। (इससे 'पूज्य अतिशय' कहा गया। पूज्य अतिशय, 'वचन अतिशय के बिना नहीं होता, अतः यहाँ वचन अतिशय भी समझ लेना चाहिए। इस प्रकार ये चार मूल अतिशय कहे।) ऐसे हे भगवन् ! आपका 'भद्र' हो, भला हो, कल्याण हो।

आप 'धूत-रज' हैं—वर्तमान में बन्धनेवाले कर्म को 'रज'

कहते हैं, आप उस बध्यमान कर्म-रज से भी मुक्त होकर मोक्ष पधार गये हैं।

ऐसे हे भगवन् ! आपका 'भद्र' हो—भला हो, कल्याण हो। ('यद्यपि भगवन् सदा ही कल्याणमय हैं, तथापि ऐसे कथन से शुभ वचन योग की प्राप्ति होती है, अतएव ऐसे कथन को निर्दोष माना गया है'। ऐसा टीकाकार समाधान करते हैं।)

संघ स्तुति

अब आचार्यश्री चतुर्विध जैन श्री संघ की आठ उपमाओं द्वारा स्तुति करते हैं। उनमें सर्व प्रथम नगर की उपमा द्वारा स्तुति करते हैं—

गुण-भवण-गहण सुय-रयण, भरिय दंसण विसुद्ध-रत्थागा।
संघनगर ! भद्दं ते, अखंड चारित्तपागारा ॥४॥

नगर की उपमावाले हे संघ ! तुम 'गुण-भवन-गहन' हो। जैसे—उत्तम नगर में भवन होते हैं, वैसे ही तुम में उत्तरगुण रूप भवन हैं। जैसे उत्तम नगर में भवन प्रचुर होते हैं, वैसे ही तुम में उत्तरगुण रूप भवन प्रचुर हैं। जैसे उत्तम नगर भवनों की प्रचुरता से गहन-सँकड़ा होता है, वैसे तुम भी उत्तर गुण रूप भवनों से गहन हो।

तुम 'श्रुत-रत्नों से भरे हुए' हो—जैसे उत्तम नगर नानाविध रत्नों से परिपूर्ण होता है, वैसे तुम आचारांग आदि नानाविध श्रुतरूप रत्नों से परिपूर्ण हो।

तुम सम्यग्दर्शन रूप विशुद्ध रथ्यावाले हो–जैसे उत्तम नगर के मार्ग, कूड़े कर्कट, पत्थर आदि से रहित शुद्ध होते हैं, वैसे ही तुम में सम्यग्दर्शन रूप मार्ग हैं, जो मिथ्यात्व रूप रज से रहित, शुद्ध हैं।

तुम 'अखण्ड चारित्र रूप प्राकारवाले' हो। जैसे–उत्तम नगर, कोट युक्त होता है, वैसे ही तुम अहिंसादि मूल गुणमय चारित्र रूप कोट युक्त हो। जैसे उत्तम नगर का प्राकार अखंड होता है, वैसे ही तुम्हारा चारित्र रूप कोट अखण्ड है–खण्डना विराधना से रहित है।

ऐसे हे 'संघ रूप नगर! तेरा भद्र हो'–तेरा भला हो, कल्याण हो।

अब आचार्यश्री युद्ध में काम आने वाले चक्र की दूसरी उपमा से संघ की स्तुति करते हैं–

संजम-तव-तुंबारयस्स, नमो सम्मत्त-पारियल्लस्स।
अप्पडिचक्कस्स जओ, होउ सया संघचक्कस्स ॥५॥

चक्र की उपमा वाले हे संघ! तुम 'संयम रूप तुम्ब, तप रूप आरे और सम्यक्त्व रूप पृष्ठभूमि वाले हो'–चक्र के मध्य-भाग में रही हुई नाभि को 'तुम्ब' कहते हैं। तुम्ब के चारों ओर लगे हुए दण्डों को–तीरों को, 'आरे' कहते हैं। और आरों के ऊपर सभी ओर लगे हुए गोल पाटलों को–पुट्ठों को (पूठी को) 'पृष्ठ भूमि' कहते हैं। जैसे चक्र में तुम्ब, आरे और पृष्ठ भूमि ये तीन वस्तुएँ होती हैं, वैसे ही तुम में पृथ्वीकाय संयम आदि सतरह प्रकार का संयम रूप 'तुम्ब' है, अनशन

आदि बारह प्रकार का तप रूप बारह 'आरे' हैं तथा सुदृढ़ सम्यक्त्व रूप 'पृष्ठ भूमि' है। ऐसे हे संघ चक्र! तुम्हें नमस्कार हो।

तुम 'अप्रति चक्र' हो—जैसे तुम संसार शत्रु का उच्छेद करने में समर्थ चक्र हो, वैसे तुम्हारे समान अन्य कोई भी मत चक्र संसार शत्रु का उच्छेद करने में समर्थ नहीं है।

ऐसे 'हे संघ चक्र! तुम्हारी सदा जय हो'।

अब आचार्यश्री रथ की तीसरी उपमा से संघ की स्तुति करते हैं—

भद्दं सील-पडागूसियस्स, तव-नियम-तुरय-जुत्तस्स।
संघरहस्स भगवओ, सज्झाय-सुनन्दिघोसस्स ॥६॥

रथ की उपमावाले हे संघ! तुम शीलरूप ऊँची पताका वाले, तप नियम रूप तुरंगों से युक्त और स्वाध्याय रूप सुनन्दि घोष सहित हो। जैसे—उत्तम रथ के ऊपर ऊँची फहराती हुई पताका होती है, वैसे ही तुम में अठारह सहस्र शीलांग रूप ऊँची फहराती हुई पताका है। जैसे उत्तम रथ में तीव्र गतिवाले अनेक अश्व—घोड़े, होते हैं, वैसे ही तुम में तप और नमस्कार सहित—नवकारसी आदि नियम रूप संसार अटवी को शीघ्र पार करने वाले अनेक घोड़े हैं। जैसे उत्तम रथ, बारह प्रकार के मंगल-वाद्यों की ध्वनि से सुशोभित होता है, वैसे ही तुम भी वाचना आदि पाँच प्रकार की स्वाध्याय रूप मंगल ध्वनि से सुशोभित हो।

ऐसे हे सन्मार्गगामी, मुक्तिनगर प्रापक 'संघ रथ भगवन्!

तेरा भद्र हो–भला हो, कल्याण हो।

अब आचार्यश्री चौथी कमल की उपमा से संघ की स्तुति करते हैं–

कम्म-रय-जलोह-विणिग्गयस्स, सुय-रयण-दीहनालस्स।
पंच-महव्वय-थिर-कन्नियस्स गुणकेसरालस्स ॥७॥

कमल की उपमा वाले हे संघ! तुम कर्म रूप 'रज'–कीचड़ और जलौध–जल समूह से बाहर निकले हुए हो। जैसे लोक में सरोवर होता है, वैसे ही लोक में यह संसार है। जैसे सरोवर में कीचड़ और जल होता है, वैसे ही संसार में जन्म-मरण के हेतुभूत ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म रूप कीचड़ और जल है। जैसे कमल, सरोवर के कीचड़ और जल से ऊपर उठ जाता है; वैसे ही संघ, कर्म रूप कीचड़ और जल से ऊपर उठा हुआ होता है। क्योंकि चौथे गुणस्थान वाले अविरत–व्रत रहित, सम्यग्दृष्टि को भी अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन से भी न्यून संसार ही शेष रहता है, अथवा एक कोटिकोटि सागरोपम से भी न्यून कर्म शेष रहते हैं।

कमल की उपमावाले हे संघ! तुम श्रुतरत्न रूप दीर्घ नाल वाले हो। जैसे कमल, दीर्घ नाल के सहारे अथाह कीचड़ और जल से ऊपर उठता है, वैसे ही तुम भी श्रुत–शास्त्र वचन रूप दीर्घ नाल के सहारे, कर्मरूप कीचड़ और जल से ऊपर उठे हो।

सावग-जण-महुयरी-परिवुडस्स, जिण-सूर-तेय-बुद्धस्स।
संघपउमस्स भद्दं, समण-गण-सहस्स-पत्तस्स ॥८॥

तुम पाँच महाव्रत रूप स्थिर कर्णिका-बीज-कोश, पंखुड़ियों वाले और गुणरूप केशर–पुष्प पराग, किञ्जल्क वाले हो। जैसे कमल में कमलनाल के ऊपर कमल की पँखुड़ियाँ होती है, वैसे तुम में मूलगुण रूप पँखुड़ियाँ है। जैसे कमल की पँखुड़ियों के बीच केशर के समान पराग होती है, वैसे ही तुम्हारे मूलगुण रूप पँखुड़ियों में उत्तरगुण रूप सुगन्धमय पराग है।

तुम श्रावकजन रूप मधुकरियों से परिवृत्त हो। जैसे सुगंधित उत्तम कमल पर उसके मधुरस को पीने की स्वभाव वाली अनेक मधुकरियाँ–भँवरियाँ मँडराती रहती हैं, वैसे ही तुम पर, तुम्हारे प्रवचन रस रूप मधु को पीने के स्वभाव वाले श्रावक रूप मधुकरियाँ मँडराती रहती हैं।

तुम जिन रूप सूर के तेज से बुद्ध हो। जैसे सूर्य-विकाशी कमल, प्रातःकाल सूर्य की तेजस्वी किरणों के स्पर्श से खिलता है, वैसे ही तुम भी जिनेन्द्ररूप सूर्य के पैंतीस वचनातिशय युक्त महादेशना रूप तेजस्वी किरणों के श्रवण रूप स्पर्श से सम्यक्त्व बोधि रूप खिलाव को पाये हुए हो।

तुम श्रमणगण रूप सहस्रपत्रों वाले हो। जैसे उत्तम कमल के चारों ओर सहस्रों पत्ते होते हैं, वैसे तुम में साधुओं के विभिन्न गणों में रहे हुए सहस्रों साधुरूप पत्र हैं।

ऐसे हे संघ रूप पद्म–कमल, तेरा भद्र हो,–भला हो, कल्याण हो।

अब आचार्यश्री पाँचवीं, चन्द्र की उपमा से संघ की स्तुति करते हैं।

तव-संजम-मय-लंछण, अकिरिय-राहु-मुह-दुद्धरिस निच्चं।
जय संघ-चंद ! निम्मल-सम्मत्त-विसुद्ध-जोण्हागा ॥९॥

चन्द्र की उपमावाले हे संघ ! तुम तप और संयम रूप 'मृग लाञ्छन' वाले हो। जैसे--चन्द्रमा पर हरिण का चिन्ह होता है, वैसे ही तुम पर तप संयम रूप मृग चिन्ह है।

तुम अक्रिय रूप राहु के मुख से दुःधृष्य हो। जैसे-चन्द्रमा को राहू, ग्रसना चाहता है, वैसे ही परलोक में धर्म-क्रिया का फल मिलेगा—ऐसा न माननेवाले नास्तिक तुम्हें ग्रसना चाहते हैं, पर तुम्हें वे ग्रस नहीं सकते।

तुम निर्मल-सम्यक्त्व रूप विशुद्ध ज्योत्सनावाले हो। जैसे—शरदपूर्णिमा को मेघों के अभाव के कारण, धूलि के उप-शान्ति के कारण और उष्णता के अभाव के कारण, चन्द्र की विशुद्ध शीतल चाँदनी होती है, वैसे ही तुम में मिथ्यात्व रूप रज से रहित, निर्मल सम्यक्त्व रूप शीतल चाँदनी है।

ऐसे हे संघ रूप चन्द्र ! तुम नित्य जय पाओ—अन्य-दर्शन रूप तारों से सदा अतिशयवान रहो।

अब आचार्यश्री छठी सूर्य की उपमा से संघ की स्तुति करते हैं।

पर-तित्थिय-गह-पह-नासगस्स, तव-तेय-दित्त-लेसस्स।
नाणुज्जोयस्स जए, भद्दं दम-संघ-सूरस्स ॥१०॥

सूर्य की उपमावाले हे संघ ! तुम परतीर्थिक रूप ग्रहों की प्रभा का नाश करनेवाले हो। जो अन्यमत हैं, वे अल्प-प्रभा के समान—जो एक एक दुर्नय है, उनके आग्रही होने से

अल्प प्रभावाले ग्रह के समान हैं तथा जो जैनमत है, वह विशिष्ट प्रभा के समान अनन्त नयों के समूह का ग्रहण करने वाला होने से विशिष्ट प्रभावाले सूर्य के समान है। जैसे सूर्य अपनी विशिष्ट प्रभा के फैलाव से ग्रहों की अल्प प्रभा को अदृश्य कर देता है, वैसे ही जैनमतरूपी सूर्य अनन्त नय समहरूप अपनी विशिष्ट ज्ञान प्रभा के फैलाव से अन्यमत रूपी ग्रहों की एक एक दुर्नय रूप सामान्य प्रभा को नष्ट कर देता है।

सूर्य की उपमावाले हे संघ! तुम तपस्तेज रूप दीप्त लेश्यावाले हो। जैसे सूर्य मण्डल में दीप्तिमान तेजस्विता होती है, जिससे कोई सूर्य को आँख उठाकर नहीं देख सकता, वैसे ही तुम में तप रूप जो तेजस्विता है, उससे अन्य कोई तुम्हें कुदृष्टि से नहीं देख सकता।

तुम ज्ञान रूप उद्योत वाले हो। जैसे-सूर्य में पदार्थों को प्रकाशित करनेवाला प्रकाश होता है, वैसे ही तुम में लोका-लोक के समस्त द्रव्यों को प्रकाशित करनेवाला ज्ञान रूप प्रकाश है।

ऐसे 'दम'–उपशम प्रधान, 'संघ' रूप 'सूर्य' 'तेरा भद्र हो'–भला हो, कल्याण हो।

अब आचार्यश्री सातवीं समुद्र की उपमा से संघ की स्तुति करते हैं–

भद्दं धिइ-वेला–परिगयस्स, सज्झाय-जोग-मगरस्स।
अक्खोहस्स भगवओ, संघसमुद्दस्स रुंदस्स ॥११॥

समुद्र की उपमावाले हे संघ! तुम धृति-धैर्य रूप वेला

से परिगत हो। जैसे—समुद्र में सभी ओर लहरें उठती रहती है, वैसे तुम में भी मूलगुण उत्तरगुण विषयक प्रतिदिन बढ़ते हुए उत्साह रूपी लहरें उठती रहती हैं, या जैसे समुद्र में शुक्ल पक्ष में ज्वार—जलवृद्धि होती है, वैसे ही तुम में धर्म विषयक उत्साह रूप ज्वार आता है।

तुम स्वाध्याय योग रूप मगरवाले हो। जैसे—समुद्र में हाथी आदि बड़े बड़े तिर्यञ्चों को भी फाड़ देनेवाले कई मगर रहते हैं, वैसे ही तुम में भी अष्टकर्मों को विदारित करदेनेवाले, स्वाध्याय में लगे हुए शुभ योग रूपी अनेकों मगर रहते हैं।

तुम अक्षोभ्य हो। जैसे समुद्र प्रलयंकर वात से भी क्षुब्ध नहीं होता—अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, वैसे ही तुम भी उपसर्ग—परीषह रूप प्रलयंकर वात से भी क्षुब्ध नहीं होते—अपनी व्रत प्रतिमा आदि रूप मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करते।

तुम विशाल हो। जैसे—समुद्र सभी दिशाओं में विस्तीर्ण फैला हुआ होता है, वैसे ही तुम भी पन्द्रह कर्म भूमियों में विस्तृत फैले हुए हो।

ऐसे हे संघ रूप 'समुद्र'! तेरा भद्र हो। भला हो, कल्याण हो।

अब आचार्यश्री आठवीं, मेरु की उपमा से संघ की स्तुति करते हैं—

सम्म-दंसण-वर-वइर-दढ-रूढ-गाढावगाढ-पेढस्स।
धम्म-वर-रयण-मंडिय, चामीयर-मेहलागस्स॥१२॥

मेरु की उपमावाले हे संघ ! तुम सम्यग्दर्शनरूप वरवज्र की दृढ़-निष्प्रकंप, रूढ़-चिरप्ररूढ़, गाढ-निबिड, अवगाढ-गहरी पीठिकावाले हो। जैसे-मेरु पर्वत का समतल से नीचे भूमि में रहा हुआ, एक सहस्र योजन परिमाण प्रथम काण्ड उसकी पीठिका है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन तुम्हारी पीठिका है, क्योंकि सम्यग्दर्शन ही मोक्ष का सर्वप्रथम वास्तविक अंग है। जैसे मेरु की पीठिका (देशतः) प्रधान वज्र रूप है, वैसे ही तुम्हारी सम्यग्दर्शन रूप पीठिका भी श्रेष्ठ वज्ररूप है, क्योंकि सम्यग्दर्शन सारभूत है। जैसे मेरु की पीठिका निष्प्रकंप है, क्योंकि उसमें छिद्रों का अभाव है। अतः उसमें जल प्रविष्ट न होने के कारण उसमें कंपन-हिलाव, नहीं आता, वैसे ही तुम्हारी सम्यग्दर्शन पीठिका निष्प्रकंप है, क्योंकि उसमें शंकादि छिद्र नहीं है। अतः उसमें अन्य-मत भावना रूप जल का प्रवेश न होने के कारण उसमें हिलाव नहीं आता। जैसे मेरु की पीठिका अनादिकाल की है, वैसे ही तुम्हारी सम्यग्-दर्शन रूप पीठिका चिरकाल की है, क्योंकि तुम चिरकाल से विशुद्धयमान परिणाम और प्रशस्त अध्यवसाय में वर्त रहे हो। जैसे मेरु की पीठिका गाढ़ है, वैसे ही तुम्हारी सम्यग्दर्शन रूप पीठिका गाढ़ है, क्योंकि तत्व विषयक रुचि तीव्र है। जैसे-मेरु की पीठिका सहस्र योजन गहरी है, वैसे ही तुम्हारी सम्यग्दर्शन पीठिका गहरी है, क्योंकि जीवादि पदार्थों का सम्यग्बोध है।
। इति पीठिका उपमा ।

तुम अहिंसादि मूल-धर्म रूप स्वर्ण मेखलावाले हो, जो उत्तर-धर्म रूप श्रेष्ठ रत्नों से मण्डित है। इति मेखला उपमा।

नियमूसिय-कणय, सिलाय-लुज्जल-जलंत चित्तकूडस्स ।
नंदण-वण-मणहर-सुरभि-सील-गंधुद्धुमायस्स ॥१३॥

तुम में इन्द्रिय दमन आदि नियम रूप स्वर्णशिलाएँ हैं, जिस पर चित्त रूप कूट हैं । जैसे मेरु पर्वत के कूट ५०० योजन ऊँचे हैं, वैसे ही तुम्हारा चित्त रूप कूट भी 'ऊँचा' है । क्योंकि अशुभ अध्यवसाय रहित है । जैसे मेरु के कूट 'उज्ज्वल'– निर्मल है, वैसे ही तुम्हारा चित्त रूप कूट निर्मल है, क्योंकि कर्म-मल प्रतिक्षण हट रहा है । जैसे मेरु के कूट ज्वलंत–जाज्वल्य-मान हैं, वैसे ही तुम्हारा चित्त रूप कूट जाज्वल्यमान है, क्योंकि उत्तरोत्तर सूत्रार्थ का स्मरण करते रहते हो । इति कूट उपमा ।

तुम में संतोष रूप 'नन्दनवन' है । जिस प्रकार अशोक आम्रादि युक्त नन्दन-वन, सुर असुर विद्याधर आदि सभी को आनंद देता है, उसी प्रकार सन्तोष सभी को आनंद देता है । जैसे वह नन्दन वन, फलफूल आदि से सभी को मनोहर लगता है, वैसे ही तुम्हारा सन्तोष रूप वन आमर्ष–स्पर्श, औषधि आदि रूप फल फूल आदि से सभी को 'मनोहर' है । जैसे–नन्दन वन सुगंध स्वभाव वाले गन्ध से परिपूर्ण है, वैसे ही तुम्हारा सन्तोष रूप वन, शील रूप सुगन्ध से परिपूर्ण है । इति वन उपमा ।

जीवदया-सुन्दर कंद-रुद्दरिय-मुणिवर-मइंदइण्णस्स ।
हेउ-सय-धाउ-पगलंत,-रयण-दित्तोसहिगुहस्स ॥१४॥

तुम 'जीवदया' रूप 'सुन्दर कन्दरावाले' हो । जैसे कन्दरा– खोह में जीव शरण पाते हैं, वैसे ही जीव, जीवदया में शरण पाते हैं । तुम्हारी वे कन्दराएँ कर्म-शत्रुओं के प्रति दर्प भरे

मुनिवर रूप मृगेन्द्रों–सिंहों से व्याप्त है। जैसे सिंह से वन्य पशु भयभीत रहते हैं और पराजित होते हैं, वैसे ही वादी-अनगार रूप सिंहों से, अन्यमती रूप वन्य-पशु भयभीत रहते हैं और चर्चा में पराजित होते हैं। इति कन्दरा उपमा।

तुम व्याख्यान शाला रूप 'गुफा' वाले हो। जैसे–गुफाओं में कनकादि पुष्टिकर सैकड़ों धातुएँ होती हैं, वैसे ही व्याख्यान शाला में सैकड़ों हेतु–तर्क युक्ति रूप स्वर्ण आदि धातुएँ हैं, जो परमत का खण्डन करके स्व–जिनमत की पुष्टि करती हैं। जैसे गुफाओं में चंद्रकान्तादि कई अमृत 'झरते हुए रत्न' होते हैं, वैसे व्याख्यानशाला में क्षयोपशम भावरूप अमृतरस से झरते हुए जिनवचन रूप रत्न होते हैं। जैसे गुफाओं में कई दीप्तमान औषधियाँ होती हैं, वैसे ही तुम में आमर्ष आदि रूप कई औषधियाँ हैं। इति गुफा उपमा।

संवर-वर-जल-पगलिय, उज्झर-पविरायमाण-हारस्स।
सावग-जण-पउर-रवंत-मोर-नच्चंत-कुहरस्स ॥१५॥

तुम संवर झरने रूप हार से विराजित–सुशोभित हो। जैसे मेरु के झरनों में प्यास बुझानेवाला, मल धोनेवाला और परिणाम में सुखकर उत्तम जल निरन्तर बहता है, वैसे ही तुम्हारे संवर रूप झरनों में, संसारियों की तृष्णा को मिटानेवाला, कर्ममल को धोनेवाला और परिणाम में आत्म सुखकर श्रेष्ठ जल निरन्तर बहता है। इति उज्झर उपमा।

तुम उपाश्रय रूप कुहरे से युक्त हो, जिसमें श्रावकजन रूप मयूर स्तुति आदि रूप प्रचुर केकारव और भक्ति

वैयावृत्य रूप नृत्य करते हैं। इति कुहर उपमा।

विणय-नय-पवर-मुणिवर,फुरंत-विज्जुज्जलंत-सिहरस्स।
विविह-गुण-कप्प-रुक्खग,फल-भर-कुसुमाउल-वणस्स।१६।

तुम आचार्य आदि रूप ज्वलन्त शिखर वाले हो, जिसमें श्रेष्ठ मुनिवर रूप बिजलियाँ हैं, जो विनय एवं तप रूप चमकाहट वाली हैं। इति शिखर उपमा।

तुम में गण–गच्छ, संप्रदाय रूप भद्रशालादि वन हैं, जिसमें विविध गुणधारी मुनिवर रूप कल्पवृक्ष हैं, जो धर्म रूप फल भार युक्त हैं और नाना ऋद्धि रूप कुसुम से संकुल हैं। इति वन उपमा।

नाण-वर-रयण-दिप्पंत, कंत-वेरुलिय-विमल-चूलस्स।
वंदामि विणय-पणओ, संघमहामंदरगिरिस्स ॥१७॥

तुम श्रेष्ठ ज्ञान रत्न रूप वैडूर्य रत्नमयी चूलिकावाले हो। जैसे मेरु की वैडूर्य रत्नमयी चूला देदीप्यमान है, वैसे ही तुम्हारी ज्ञानरूप चूला देदीप्यमान है, क्योंकि सूत्रार्थ अत्यन्त परिचित है। जैसे मेरु की चूला कान्त–कमनीय है, वैसे ही तुम्हारी ज्ञान रूप चूला कमनीय है, क्योंकि भव्यजनों का मन हरण करती है। जैसे मेरु की चूला विमल है, वैसे ही तुम्हारी ज्ञान रूप चूला विमल है, क्योंकि उसमें जीवादि पदार्थों का यथातथ्य स्वरूप उपलब्ध होता है। इति चूला उपमा।

ऐसे हे संघरूप महामंदर गिरि! मैं तुम्हारे यश की विनय सहित गाथा गाता हूँ।

फिर से संक्षेप में मेरु की उपमा से संघ की स्तुति करते हैं।

गुण-रयणुज्जल-कडयं, सील-सुगंधि-तव-मंडिउद्देसं ।
सुय-बारसंग-सिहरं, संघमहामंदरं वंदे ॥१८॥

मेरु पर्वत की उपमावाले हे संघ! तुम गुण रत्न रूप उज्ज्वल कटक–पर्वत-तटवाले हो, तुम्हारा उद्देश–प्रदेश, शीलरूप सुगन्ध से सुगन्धित और तपरूप आभूषणों से मण्डित है। तुम बारह अंगवाले श्रुतरूप शिखरवाले हो। ऐसे हे संघ रूप महामन्दर। मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

संघ को जिन उपमाओं से उपमित किया गया है, उन उपमाओं को सरलता से स्मरण में रखने के लिए अब संग्रहणी गाथा प्रस्तुत करते हैं।

नगर-रह-चक्क-पउमे, चंदे सुरे समुद्द-मेरुम्मि ।
जो उवमिज्जइ सययं, तं संघगुणायरं वंदे ॥१९॥

१ नगर २ रथ ३ चक्र ४ पद्म ५ चन्द्र ६ सूर्य ७ समुद्र और ८ मेरु की जिसे उपमा दी जाती है, ऐसे गुणाकर संघ की मैं सतत स्तुति करता हूँ।

तीर्थंकर आवलिका

अब आचार्यश्री, आवलिका में सर्व प्रथम वर्त्तमान अवसर्पिणी के, भरत क्षेत्रीय चौबीस तीर्थङ्करों की आवलिका का प्रतिपादन करते हैं, जो अर्थरूप से प्रवचन को प्रकट करते हैं–

(वंदे) उसभं अजियं संभव–मभिनंदण-सुमइ-सुप्पभ-सुपासं
ससि पुष्फदंत सीयल, सिज्जंसं वासुपुज्जं च ॥२०॥

१ ऋषभ २ अजित ३ संभव ४ अभिनंदन ५ सुमति ६ सुप्रभ (पद्मप्रभ) ७ सुपार्श्व ८ शशि (चन्द्रप्रभ) ९ पुष्प-दन्त (सुविधि) १० शीतल ११ श्रेयांस और १२ वासुपूज्य ।

विमल-मणंतं च धम्मं, संतिं कुंथुं अरं च मल्लिं च ।
मुनिसुव्वय नमि नेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥२१॥

१३ विमल १४ अनन्त १५ धर्म १६ शान्ति १७ कुंथु १८ अर १९ मल्लि २० मुनिसुव्रत २१ नमि २२ नेमि (अरिष्ट-नेमि) तथा २३ पार्श्व और २४ वर्द्धमान । इनको मैं वन्दना करता हूँ ।

गणधर आवलिका

अब आचार्यश्री, भगवान् महावीर के ११ गणधरों की आवलिका का प्रतिपादन करते हैं, जिन्होंने भगवान् के द्वारा पदार्थ में प्रतिक्षण १ उत्पाद–नई पर्याय उत्पन्न होती है, २ व्यय–पूर्व पर्याय विनष्ट होती है और ३ ध्रौव्य–द्रव्य त्रिकाल ध्रुव रहता है, इस त्रिपदी को सुनकर सकल प्रवचन को सूत्र रूप से ग्रथित किया था ।

पढमित्थ इंदभूई, बीए पुण होई अग्गिभूइत्ति ।
तइए य वाउभूई, तओ वियत्ते सुहम्मे य ॥२२॥

'यहाँ ग्यारह गणधरों में, पहले इन्द्रभूति है, फिर दूसरे अग्निभूति और तीसरे वायुभूति हैं, उसके बाद ४ व्यक्तभूति और ५ सुधर्मा (स्वामी) हैं।

मंडिय-मोरियपुत्ते, अकंपिए चेव अयलभाया य।
मेयज्जे य पहासे य गणहरा हुंति वीरस्स ॥२३॥

६ मण्डित ७ मौर्यपुत्र ८ अकम्पित ९ अचलभ्राता १० मैतार्य और ११ प्रभास, ये वीर के ग्यारह गणधर हैं।

प्रवचन स्तुति

अब आचार्यश्री, प्रसंगवश उस तीर्थङ्कर उपदिष्ट और गणधरों द्वारा ग्रथित प्रवचन की गुण-स्तुति करते हैं।

निव्वुइ-पह-सासणयं, जयइ सया सव्व-भाव-देसणयं।
कुसमय-मय-नासणयं, जिणिंद-वर-वीर-सासणयं ॥२४॥

जिनेन्द्रवर वीर का यह शासन–प्रवचन, निर्वृत्ति-पथ का शासक है–मोक्षमार्ग को बतलानेवाला है, सर्व भाव का देशक है–सभी द्रव्यों और पर्यायों का ज्ञान करानेवाला है। कुसमय के मद का नाश करनेवाला है,–अन्य कुमतों के "हम सत्य हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं,"–इस मिथ्या अहंकार को गलानेवाला है। ऐसा यह जिनेन्द्रवर वीर का शासन सदा जयवन्त है।

स्थविर आवलिका

अब आचार्यश्री उन स्थविरों की आवलिका का प्रतिपादन

करते हैं, जिन्होंने भव्य जीवों के उपकार के लिए उस प्रवचन को आचार्यश्री देववाचक तक पहुँचाया—

सुहम्मं अग्गिवेसाणं, जंबूनामं च कासवं ।
पभवं कच्चायणं वंदे, वच्छं सिज्जंभवं तहा ॥२५॥

भगवान् के पाट पर पाँचवें गणधर आर्य सुधर्मा सबसे पहले आचार्य हुए । ये अग्नि-वैश्यायन गोत्रीय थे ।

(भगवान् के ग्यारह गणधरों में इन्द्रभूति और सुधर्मा, इन दो को छोड़कर शेष नव गणधर, भगवान् महावीर स्वामी की विद्यमानता में ही मोक्ष में पधार गये थे। अतः भगवान् के पाट पर उनमें से कोई नहीं आये । जब भगवान् मोक्ष में पधारे, तो श्री इन्द्रभूतिजी को केवलज्ञान हो गया, अतः वे पाटपर नहीं बिराजे । क्योंकि सूत्र परम्परा चलाना, छद्मस्थों का व्यवहार है, केवलियों का व्यवहार नहीं है । अतएव भगवान् के पाटपर सुधर्मा बिराजे ।)

सुधर्मा के पाट पर दूसरे आचार्य २ जम्बू स्वामी हुए, ये काश्यप गोत्रीय थे। जम्बू के पाट पर तीसरे आचार्य ३ श्री प्रभव स्वामी हुए, ये कात्यायन गौत्रीय थे । श्री प्रभव के पाटपर चौथे आचार्य ४ श्री शय्यंभव हुए, ये वत्स गौत्रीय थे (इन्होंने अपने संसारी पुत्र 'मनक' नाम के शिष्य के आयुष्य को अल्प जानकर, उसके कल्याणार्थ, पूर्वों से दशवैकालिक सूत्र का उद्धार किया था ।) इन सब को मैं वन्दना करता हूँ ।

जसभद्दं तुंगियं वंदे, संभूयं चेव माढरं ।
भद्दबाहुं च पाइन्नं, थूलभद्दं च गोयमं ॥२६॥

शय्यंभव के पाट पर पाँचवें आचार्य ५ यशोभद्र हुए। ये तुंगिक गोत्रीय थे। इनके दो महान् शिष्य हुए। एक माठर गोत्रीय ६ श्री संभूतिविजय थे और दूसरे प्राचीन गोत्रीय ७ श्री भद्रबाहु स्वामी थे। भद्रबाहु सातवें आचार्य हुए। ये अंतिम चौदह पूर्वधर थे। उन्होंने पूर्वों से छेदसूत्रों का उद्धार किया था। भद्रबाहु के पाट पर श्री संभूतिविजय के शिष्य ८ श्री स्थूलिभद्र सातवें आचार्य हुए। ये गौतम गोत्रीय थे। इन सभी को मैं वन्दना करता हूँ।

एलावच्चसगोत्तं, वंदामि महागिरिं सुहत्थिं च।
तत्तो कोसियगोत्तं, बहुलस्स सरिव्वयं वंदे ॥२७॥

श्री स्थूलिभद्रजी के दो महान् शिष्य हुए। एक आर्य ९ महागिरि, ये एलापत्य गोत्रीय थे। ये आठवें आचार्य हुए। दूसरे आर्य १० सुहस्ति हुए, ये वशिष्ठ गोत्रीय थे। आर्य महागिरि के दो महान् शिष्य हुए:—एक ११ बहुल और दूसरे बलिस्सह। ये दोनों कोशिक गोत्रीय थे और जुड़वाँ भाई थे। (बलिस्सहजी प्रवचन में प्रधान हुए।) इन सबको मैं वन्दना करता हूँ।

हारियगुत्त साइं च, वंदिमो हारियं च सामज्जं।
वंदे कोसियगोत्तं, संडिल्लं अज्जजीयधरं ।२८।

बलिस्सहजी के शिष्य १२ 'स्वाति' हुए। ये हारित गोत्रीय थे। स्वाति के शिष्य आर्य १३ श्री श्याम हुए। ये भी हारित गोत्रीय थे। (इन्होंने पूर्वों से प्रज्ञापना सूत्र का उद्धार किया

था।) इनके शिष्य आर्य १४ शांडिल्य हुए। ये कोशिक गोत्रीय थे। ये जीतधर–विशिष्ट सूत्रधर हुए। किन्हीं के मतानुसार शाण्डिल्य के आर्य जीतधर नामक शिष्य हुए।

ति-समुद्द-खाय-कित्ति, दीव-समुद्देसु गहिय-पेयालं।
वंदे अज्जसमुद्दं, अक्खुभिय-समुद्द-गंभीरं ॥२९॥

शाण्डिल्य के शिष्य आर्य १५ समुद्र हुए। समुद्रजी, तीनों समुद्रों में विख्यात कीर्तिवाले थे। (दक्षिण भरत के उत्तर में वैताढ्य पर्वत है और शेष तीन दिशाओं में लवण समुद्र है। वहाँ तक आपकी कीर्ति फैली हुई थी) द्वीप-समुद्रों के प्रमाण के जाननेवाले थे–'द्वीपसागर प्रज्ञप्ति' के अतिशय ज्ञाता थे। और समुद्र के समान अक्षुभित और गम्भीर थे। ऐसे–'यथानाम तथागुण' आर्य समुद्र को मैं वन्दना करता हूँ।

भणगं करगं झरगं, पभावगं णाण-दंसण-गुणाणं।
वंदामि अज्जमंगुं सुय-सागर-पारगं धीरं ॥३०॥

इनके शिष्य आर्य १६ मंगु हुए। ये भणक थे–कालिकादि सूत्रों का अनवरत प्रतिपादन करनेवाले थे। वे कारक थे–सूत्रोक्त प्रतिलेखन आदि समस्त क्रियाओं के करने और करानेवाले थे। ध्याता थे–आर्तध्यान और रोद्रध्यान छोड़कर, धर्मध्यान ध्यानेवाले थे। इस प्रकार ज्ञानवान्, क्रियापात्र एवं ध्यानी होने के कारण ज्ञान, दर्शन और चारित्र गुण की प्रभावना करनेवाले थे। ऐसे श्रुत-सागर के पारगामी 'धी-र'–बुद्धि से विराजित, आर्य मंगु को वन्दना करता हूँ।

(वंदामि अज्जधम्मं, तत्तो वंदे य भद्दगुत्तं च ।
तत्तो य अज्जवइरं तव-नियम-गुणेहिं वइरसमं ॥३१॥

आर्य धर्म और भद्रगुप्त को वन्दना करता हूँ, उसके पश्चात् आर्य वज्र को वन्दना करता हूँ, जो तप और नियम गुणों में वज्र के समान कठोर थे ।

वंदामि अज्जरक्खिय-खमणे, रक्खियचरित्त सव्वस्से ।
रयण-करंडग-भूओ, अणुओगो रक्खिओ जेहिं ॥३२॥)

इसके पश्चात आर्य रक्षित क्षमण को वन्दना करता हूँ । इन्होंने चारित्र सर्वस्व की रक्षा की थी, या सबके चारित्र की रक्षा की थी, तथा रत्नकरंडकभूत अनुयोग की (अनुयोगद्वार सूत्र बनाकर) रक्षा की थी ।

णाणम्मि दंसणम्मि य, तवविणए णिच्च-काल-नुज्जुत्तं ।
अज्जं नंदिलखमणं, सिरसा वंदे पसन्नमणं ॥३३॥

आर्य मंगु के शिष्य आर्य १७ नन्दिल क्षमण हुए । ये ज्ञान, दर्शन, (चारित्र) तप–अनशन आदि और विनय–ज्ञान-विनय आदि में नित्य काल उद्युक्त रहते थे–सदा काल अप्रमादी रहते थे । ये प्रसन्न मनवाले थे। राग-द्वेष रहित अन्तःकरणवाले थे । ऐसे आर्य नन्दिल क्षमण को वन्दना करता हूँ ।

वड्ढउ वायगवंसो, जसवंसो अज्जनागहत्थीणं ।
वागरण-करण-भंगिय, कम्मप्पयडी-पहाणाणं ।३४।

इनके शिष्य आर्य १८ नागहस्ति हुए । ये व्याकरण–

संस्कृत प्राकृत भाषा के शब्द-व्याकरण अथवा प्रश्नव्याकरण की वाचना देनेवालों में प्रधान थे। करण (—चार पिण्डविशुद्धि, पाँच समिति, बारह भावना, बारह भिक्षु-प्रतिमा, पाँच इन्द्रिय निरोध, पच्चीस प्रतिलेखना, तीन गुप्ति, चार अभिग्रह, इन करण सत्तरी के सत्तर बोलों) की वाचना देनेवालों में भी प्रधान थे। तथा भंग-बहुल ऐसी कर्म-प्रकृति की वाचना देनेवालों में भी प्रधान थे। ऐसे श्री नागहस्ति वाचकजी का वाचक-वंश—वाचक पुरुषों की सन्तति, वृद्धि प्राप्त करें (—कभी विच्छिन्न नहीं हो) तथा इनका वाचक वंश यशवंश हो—इस वाचक वंश में होने वाले वाचक यशस्वी बने।

जच्चंजण-धाउ-सम-प्पहाण, मुद्दिय-कुवलय-निहाणं।
वड्ढउ वायगवंसो, रेवइनक्खत्तनामाणं ॥३५॥

इनके शिष्य १९ श्री रेवतिनक्षत्र हुए। इनके शरीर की प्रभा जातिवान अंजन धातु के समान कृष्ण थी। (इसका अर्थ यह नहीं कि 'ये अत्यन्त काले थे, परन्तु) पकी हुई दाख या नीलोत्पल कमल अथवा कुवलय मणि के समान श्याम थे। इनका वाचकवंश बढ़े।

अयलपुरा णिक्खंते, कालिय-सुय-आणुओगिए धीरे।
बंभद्दीवग-सीहे, वायग-पय-मुत्तमं पत्ते ॥३६॥

इनके शिष्य २० श्री सिंह हुए। ये अचलपुर से निकले थे (—अचलपुर नगर के निवासी थे) और वहीं से दीक्षित हुए थे। ये कालिक श्रुत के अनुयोग में (—व्याख्या करने में) नियुक्त किये

गये थे। अथवा कालिक श्रुत के व्याख्याता थे और धीर थे। ये ब्रह्मद्वीपिक शाखा में उत्पन्न हुए थे।

इन्होंने अपने युग की अपेक्षा, उत्तम वाचक पद प्राप्त किया था।

जेसिं इमो अणुओगो, पयरइ अज्जावि अड्ढ-भरहम्मि।
बहु-नयर-निग्गय-जसे, ते वंदे खंदिलायरिए ॥३७॥

इनके शिष्य आचार्य २१ स्कंदिल हुए। आज भी अर्द्ध भरत में जिनका यह अनुयोग-सूत्र का अर्थ, चल रहा है। जिनका यश बहुत नगरों में फैला हुआ है। ऐसे उन आर्य स्कंदिल को वन्दना करता हूँ।

तत्तो हिमवंत-महंत, विक्कमे धिइ-परक्कम-मणंते।
सज्झाय-मणंतधरे, हिमवंते वंदिमो सिरसा ॥३८॥

इनके शिष्य २२ श्री हिमवन्त हुए। ये हिमवान् पर्वत की भाँति महान् विक्रमवाले थे (–जिस प्रकार हिमवान् पर्वत बहुत लम्बा चौड़ा है, उसी प्रकार इनका विहार-क्षेत्र बहुत लम्बा चौड़ा था। ये अनन्त–अपरिमित, धैर्य-प्रधान पराक्रमवाले थे। ये अनन्त स्वाध्याय के धारक थे–अनन्तगम और अनन्त पर्यायोंवाले सूत्रों के धारक थे। ऐसे हिमवन्त को शिरसा वन्दन करता हूँ।

आचार्यश्री इनकी कुछ और भी स्तुति करते हैं।

कालिय-सुय-अणुओगस्स, धारए धारए य पुव्वाणं।
हिमवंत खमासमणे, वंदे णागज्जुणायरिए ॥३९॥

हिमवन्त क्षमाश्रमण, कालिक श्रुत की व्याख्या को जानने वाले थे और उत्पादपूर्व आदि अनेक पूर्वों के ज्ञाता थे। ऐसे हिमवन्त को वन्दना करता हूँ। उसके पश्चात् २३ श्री नागार्जुन आचार्यको वन्दना करता हूँ। श्री नागार्जुन की गुणस्तुति करते हुए कहा कि;–

मिउ-मद्दव-संपन्ने, आणुपुव्वि वायगत्तणं पत्ते।
ओह-सुय-समायारे, नागज्जुणवायए वंदे ॥४०॥

वे मृदु-मार्दव सम्पन्न थे (–समस्त भव्यजनों का मन संतोषित हो–ऐसी कोमलतावाले थे) आनुपूर्वी से उन्हें वाचकपद प्राप्त हुआ था–(योग्य वय और योग्य चारित्र पर्याय आने पर उन्हें वाचक पद दिया गया था) वे ओघश्रुत का समाचरण करने वाले थे (–उत्सर्ग मार्ग पर चलनेवाले थे।) ऐसे श्री नागार्जुन वाचक को मैं वन्दना करता हूँ।

(गोविंदाणं पि नमो, अणुओगे विउलधारिणिंदाणं।
णिच्चं खंतिदयाणं, परूवणे दुल्लभिंदाणं)॥४१॥

मैं गोविन्द आचार्य को भी नमस्कार करता हूँ। ये विपुल अनुयोग को धारण करनेवालों में इन्द्र (तुल्य प्रधान) थे। इसी प्रकार नित्य क्षमा दया आदि की प्ररूपणा करनेवालों में भी दुर्लभ–इन्द्र तुल्य थे।

तत्तो य भूयदिन्नं, निच्चं तवसंजमे अनिव्विण्णं।
पंडियजण-सामण्णं, वंदामो संजम-विहिण्णू ॥४२॥

वर-कणग-तविय चंपग, विमउल-वर-कमल-गब्भ-सरिवण्णो।
भविय-जण-हियय-दइए, दया-गुण-विसारए धीरे ॥४३॥

इसके पश्चात् श्री भूतदिन्न को हम वन्दना करते हैं। ये तप और संयम में नित्य ही निर्वेद रहित (–रुचि सहित) थे। पण्डितजनों में सन्माननीय थे और संयम की विधि के जानकार थे।

इनके शरीर का वर्ण, श्रेष्ठ तपाये हुए सोने के सदृश, पीले चम्पक पुष्प के सदृश और विकसित उत्तम कमल के गर्भ के सदृश–स्वर्ण समान था। ये भव्यजनों के हृदयवल्लभ थे। दयागुण विशारद् थे (–सभी जीवों के प्रति दया की विधि का विधान करते में अतीव कुशल थे) धीर थे।

अड्ढ भरह-प्पहाणे, बहुविह-सज्झाय-सुमुणियपहाणे।
अणुओगिय-वर-वसभे, नाइल-कुल-वंस-नंदीकरे ॥४४॥

जग-भूय-हियप्पगब्भे, वन्देऽहं भूयदिन्नमायरिए।
भव-भय-वुच्छेय-करे, सीसे नागज्जुणरिसीणं ॥४५॥

आप अर्द्ध भरत में प्रधान थे (–उस काल की अपेक्षा सस्त आधे भरत में आप युग-प्रधान थे) आचारांगादि सूत्रोंका बहुविध स्वाध्याय के अच्छे जानकारों में भी आप प्रधान थे। वरवृषभों को (मारवाड़ के धोरियों के समान संयम-भार को वहने में समर्थ सन्तों को) सेवामें नियुक्त करनेवाले थे। नागेन्द्र कुल-वंश के लिए आनंद उत्पन्न करनेवाले थे। (नागेन्द्र कुल में उत्पन्न हुए थे)

आप, संसारी जीवों को अनेक प्रकार से हितोपदेश देने में कुशल थे। सदुपदेशादि से भवभ्रमण के भय का विच्छेद करते थे। ऐसे

नागार्जुन ऋषि के शिष्य श्री भूतदिन्न आचार्य को मैं वन्दना करता हूँ।

सुमुणिय-णिच्चाणिच्चं, सुमुणिय-सुत्तत्थधारयं वंदे।
सब्भावुब्भावणया, तत्थं लोहिच्चणामाणं ॥४६॥

इनके शिष्य २५ श्री लोहित्य हुए। ये 'द्रव्य किस प्रकार नित्य हैं और किस प्रकार अनित्य हैं'—इसके बहुत अच्छे जानकार थे—अर्थात् न्याय विषय के प्रकाण्ड पण्डित थे। जो सूत्रार्थ को धारण किये थे (उन्हें भलीभांति समझे हुए थे) सद्भाव की उद्भावना में तथ्य थे (—जो पदार्थ जैसे हैं, उनकी प्ररूपणा इस प्रकार करते थे कि उनके वचन में कभी सदोषता या विसंवाद—विरोध नहीं आता था) ऐसे लोहित्य नामक आचार्य को मैं वन्दना करता हूँ।

अत्थ-महत्थक्खाणिं, सुसमण-वक्खाण-कहण-निव्वाणिं।
पयईए महुरवाणिं, पयओ पणमामि दूसगणिं ॥४७॥

इनके शिष्य श्री २६ 'दूष्य गणि' हैं। ये शास्त्रों के सामान्य अर्थ (जो भाषा द्वारा प्रकट किये जाते हैं) तथा महार्थ (जो विभाषा वार्तिक आदि द्वारा प्रकट किये जाते हैं) की खान के समान हैं। मूलगुण उत्तरगुण युक्त सुसाधुओं को अपूर्व-सूत्रार्थ का व्याख्यान देने में और उनके पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर कहने में समाधि का अनुभव करनेवाले हैं। प्रकृति से ही मधुरवाणी वाले हैं (शिष्य में प्रमाद आदि देखकर कोपवश हो निष्ठुरवचन नहीं कहते थे) ऐसे दूष्यगणि को प्रयत्नपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

आचार्यश्री पुनः इनकी कुछ और स्तुति करते हैं--

तव-नियम-सच्च-संजम,-विणय-ज्जव-खंति मद्दव-रयाणं ।
सील गुण-गद्दियाणं, अणुओग-जुग-प्पहाणाणं ॥४८॥

ये तप,नियम,सत्य,संयम विनय,आर्जव,क्षमा और मार्दव में रत हैं। शील गुण से विख्यात हैं। अनुयोगधारियों में युग प्रधान हैं।

सुकुमाल-कोमल-तले, तेसिं पणमामि लक्खणपसत्थे ।
पाए पावयणीणं, पडिच्छय-सयएहिं पणिवइए ॥४९॥

ऐसे प्रावचनिकों में प्रधान श्री दुष्यगणि के चरणों में--जिनके चरणों के तलवे सुकुमार और मनोज्ञ हैं, शंख चक्र आदि प्रशस्त लक्षणों से युक्त हैं और सैंकड़ों प्रातीच्छकों से नमस्कृत हैं, (मैं २७ देववाचक शिष्य) प्रणाम करता हूँ।

प्रातीच्छक–जो श्रुतार्थी मुनिराज, विशेष श्रुत के अभ्यास के लिए अपने गच्छ के आचार्य आदि से आज्ञा लेकर, अन्य गच्छ में जाते हैं और वहाँ के गच्छ के वाचक आचार्य आदि की आज्ञापूर्वक वहाँ के वाचकों से श्रुतज्ञान ग्रहण करते हैं, उन्हें 'प्रातीच्छक' कहते हैं।

जे अन्ने भगवंते, कालिय-सुय-आणुओगिए धीरे ।
ते पणमिऊण सिरसा, "नाणस्स परूवणं" वोच्छं ।५०।

उक्त भगवन्तों के अतिरिक्त अन्य जो कालिक आदि श्रुत के अनुयोगधर हैं, धीर हैं, उन्हें शिरसा प्रणाम करके ज्ञान की प्ररूपणा करूँगा।

॥ इति श्री देववाचक आचार्य निर्मित स्तुति और आवलिका समाप्त ॥

चौदह दृष्टांत

अब पाँच ज्ञान के प्ररूपक श्री नन्दीसूत्र का आरम्भ होता है। ज्ञान प्ररूपणा के पूर्व, ज्ञान की प्ररूपणा किसे देना योग्य है और किसे देना योग्य नहीं–' यह बताने के लिए सूत्रकार, लोक प्रसिद्ध चौदह उपमाओं की संग्रहणी गाथा प्रस्तुत करते हैं–

१ सेल-घण २ कुडग ३ चालणि,
४ परिपूणग ५ हंस ६ महिस ७ मेसे य।
८ मसग ९ जलूग १० बिराली,
११ जाहग १२ गो १३ भेरी १४ आभीरी ॥५१॥

१ मुद्गशैल और घन–मेघ, २ कुट–घड़ा, ३ चालनी, ४ परिपूणक–सुघरी नामक पक्षी का घोंसला, जिसमें घी छाना जाता है, ५ हंस ६ महिष–भैंसा, ७ मेष–मेढ़ा, ८ मशक–मच्छर ९ जलौका–विकृत रक्त चूसनेवाला एक जलचर जन्तु, १० बिल्ली ११ जाहक–सेल्हक, चूहे की जाति का तिर्यंच विशेष १२ गाय १३ भेरी और १४ अहीर।

भावार्थ–जो १ मुद्गशैल के समान अपरिणामी हो, २ दुर्गन्धित घट की भांति दुष्परिणामी हो, ३ चालनी के समान अग्राही हो, ४ परिपूणक के समान दोष-ग्राही हो, ५ भैंसे के समान अन्तराय करनेवाला हो, ६ मच्छर के समान असमाधि करनेवाला हो, ७ बिल्ली के समान विनय नहीं करनेवाला हो, ८ गाय-असेवक ब्राह्मणों के समान वैयावृत्य नहीं करने वाला हो, ९ भेरी नाशक के समान भक्ति न करने वाला हो, या ज्ञान का प्रत्यनीक–शत्रु हो, और १० स्वदोष नहीं देखनेवाले अहीर की

भांति आशातना करनेवाला, या ज्ञान का विसंवादी हो, वह ज्ञान का अपात्र है।

जो १ काली मिट्टी की भांति परिणामी हो, २ सुगन्धित घट के समान सुपरिणामी हो, ३ कमण्डलु के समान ग्राही हो, ४ हंस के समान गुणग्राही हो, ५ मेष के समान अन्तराय नहीं करनेवाला हो ६ जलौका के समान समाधि उपजानेवाला हो, ७ जाहक के समान विनय करनेवाला हो, ८ गायसेवक ब्राह्मणों के समान वैयावृत्य करनेवाला हो, ९ भेरी रक्षक के समान भक्ति करनेवाला हो, या ज्ञान का अप्रत्यनीक हो और १० स्वदोष देखनेवाले अहीर की भांति आशातना नहीं करनेवाला हो, या विसंवाद नहीं करनेवाला हो, वह ज्ञान का पात्र है।

इन दृष्टांतों की संक्षिप्त विवेचना इस प्रकार है–

मुद्गशैल का दृष्टांत

(१) मुद्गशैल और घन का दृष्टान्त–

असत् कल्पना के अनुसार एक वन था। वहाँ मुद्गशैल (मगशैलिया) नामक पत्थर रहता था। वह मूँग जितने प्रमाण वाला था। उधर आकाश में पुष्करावर्त नामक महामेघ रहता था। वह जम्बूद्वीप जितने प्रमाणवाला था।

एक समय की बात है–कलहप्रिय नारदजी, इन दोनों में कलह कराने की भावना से पहले मुद्गशैल के पास पहुँचे। मुद्गशैल ने उनका बहुत आदर सत्कार किया और कोई सुनने योग्य बात सुनाने के लिए कहा। तब नारदजी ने उससे कहा–

"हे मुद्गशैल ! किसी अवसर की बात है–महापुरुषों की एक सभा जुड़ी थी। वहाँ मैं भी पहुँच गया था। उस समय वहाँ पुष्करावर्त महामेघ भी आया हुआ था। उसे देखकर मुझे तुम्हारे गुण स्मृति में आगये। मैंने सभा में तुम्हारे गुणों का वर्णन करते हुए कहा–'मुद्गशैल पत्थर, वज्र से भी अधिक कठोर है। उस पर यदि कितना भी पानी पड़ जाय, तो भी वह कभी भेदा नहीं जा सकता।' परन्तु तुम्हारा यह गुण वर्णन पुष्करावर्त मेघ, अणुमात्र भी सहन नहीं कर सका। उसने सभा में उठकर सबके सामने मुझे कहा–"नारदजी ! ये झूठे प्रशंसा के वचन रहने दीजिए। जो बड़े बड़े पर्वत होते हैं, जिनके सहस्रों शिखर होते हैं, जो आकाश का चुम्बन करते हैं, जो क्षेत्र की मर्यादा करते हैं, ऐसे पर्वत भी, जब मैं बरसता हूँ, तो वे भिदकर सैकड़ों खण्ड हो जाते हैं, तो उस बेचारे मुद्गशैल के क्या कहने ? वह तो मेरी एक धारा भी सहन नहीं कर सकता।"

नारद के द्वारा पुष्करावर्त के इन वचनों को सुनते ही मुद्गशैल क्रोधाग्नि से भड़क उठा। उसने अहंकार पूर्वक कहा– 'नारदजी ! पुष्करावर्त के परोक्ष में अधिक कहने से क्या लाभ है ? सुनिये। मैं एक ही बात कहता हूँ कि 'वह दुरात्मा एक धार से तो क्या ? परन्तु सात दिन रात बरस करके भी यदि तिल के तुष का जो सहस्रवाँ भाग होता है, उतना भी मुझे भेद दे, तो मैं अपना मुद्गशैल नाम ही छोड़ दूँ।'

तब नारदजी, इन वचनों को मस्तिष्क में जमाकर कलह

कराने के लिए पुष्करावर्त मेघ के पास पहुँचे और उसके सामने उन्होंने मुद्गशैल की कही हुई बात को बहुत बढ़ा चढ़ाकर रखी।

उन वचनों को सुनकर पुष्करावर्त को अत्यन्त क्रोध आया और वह इस प्रकार कठोर वचन कहने लगा–'हा! दुष्ट! तू स्वयं अपने आपकी शक्ति नहीं जानता, उल्टा मुझ पर ही आक्षेप लगाता है? अस्तु, अब मैं तेरे वचन का फल बताता हूँ।'

यह कहकर पुष्करावर्त ने पूरी तैयारी के साथ मूसलाधार वर्षा आरंभ की और निरन्तर–बिना एक भी दिन रुके, सात अहोरात्रि तक, बरसता रहा। जब उस निरंतर सात दिनरात की तीव्र वर्षा से सारी ही धरती जल मग्न हो गई, तब उसने सारे जगत् को एक महासमुद्र सा देखकर चिन्तन किया कि–'वह बिचारा समूल ही नष्ट हो गया होगा!' यह सोचकर उसने वर्षा से निवृत्ति ली।

जब धीरे धीरे जल समूह वहाँ से बह गया और धरती फिर से बाहर आ निकली, तब उस पुष्करावर्त ने बड़े हर्ष के साथ नारद से कहा–'नारदजी! अब बिचारा वह मुद्गशैल किस अवस्था को पहुँच गया होगा? आइए, हम दोनों साथ ही चलकर देखें।'

नारदजी साथ हो लिए। दोनों साथ साथ मुद्गशैल के पास पहुँचे। पहले तो उस मुद्गशैल पर धूलि चढ़ी हुई थी, इसलिए वह कुछ मन्द मन्द चमक रहा था। पर अब वर्षा से उसके तन की सारी धूलि हट जाने के कारण वह तीव्रता से

चमकने लग गया था। वह चमकाहट से मानो हास्य करता हुआ, आये हुए नारद और पुष्करावर्त से कहने लगा—"आइए! आइए! आप दोनों का स्वागत है! स्वागत है! अहा! हम बड़े भाग्यशाली हैं कि आपने अचिन्त्य कृपा दृष्टि करके हमें अपने दर्शन दिये। हमें स्वप्न में भी जिसकी कल्पना नहीं थी, ऐसे आपके अचानक दर्शन पाकर हमारा मन मयूर नाच उठा है!"

मुद्गशैल को उस अवस्था में देखकर और उसके इन व्यंग वचनों को सुनकर पुष्करावर्त को अपनी प्रतिज्ञा-भ्रष्टता से बहुत ही लज्जा उत्पन्न हुई। उसका गर्व से तना हुआ सिर, आँखें, और कन्धे सभी कुछ झुक गये। वह बिचारा कुछ भी नहीं बोल सका। उसे चुपचाप अपने स्थान लौट जाना पड़ा।

किसी वृद्ध आचार्यश्री के पास, एक मुद्गशैल जैसा ही शिष्य दीक्षित हो गया। आचार्यश्री ने उसके कल्याण के लिए उसे यत्न से निरन्तर पढ़ाया, किंतु उसने एक भी अक्षर ग्रहण नहीं किया, तब आचार्यश्री ने अयोग्य समझकर उसकी उपेक्षा करदी।

अन्यदा एक युवक आचार्य, उन वृद्ध आचार्यश्री की सेवामें आये। उन्होंने उस शिष्य को आचार्य से उपेक्षित देखकर आचार्यश्री से पूछा—"आप इसे क्यों नहीं पढ़ाते?" आचार्यश्री ने उत्तर दिया—"यह मुद्गशैल के समान ज्ञान के लिए अयोग्य है, ऐसा अनुभव होने के कारण मैंने इसे पढ़ाना छोड़ दिया।" यह सुनकर वे तरुण आचार्य, आवेग में आगये। उन्होंने वृद्ध आचार्य

श्री के प्रयत्न की ओर ध्यान नहीं दिया और उस मुद्‌गशैल समान शिष्य की भी परख नहीं की, उल्टा तरुणाई के मद में आकर जंभाई के साथ अपना पराक्रम बताते हुए बोले–"आचार्यश्रीजी ! यह शिष्य मुझे दे दीजिए, मैं इसे पढ़ाउँगा।" दूसरे लोगों से भी कहने लगे–"अरे, यह कोई जड़–अजीव तो है नहीं कि पढ़ाने से भी नहीं पढ़े। यदि उचित विधि से पढ़ाना आता हो, तो किसे नहीं पढ़ाया जा सकता? यदि पढ़ाने से कोई न पढ़े, तो समझना चाहिए कि पढ़ानेवाले में ही कहीं कोई दोष है।"

"वे दृष्टांत भी देने लगे कि–जैसे गायें यदि कहीं गिर या डूब जाती हैं, तो यह गायों का दोष नहीं, वरन् गाय चरानेवाले ग्वाले का ही दोष है कि उन्हें विधि से सन्मार्ग पर नहीं चलाता।"

वृद्ध आचार्यश्री ने यह देख सुनकर अपना वह शिष्य उस आचार्य को सौंप दिया। युवक आचार्य ने बड़े यत्न से उसे पढ़ाना आरंभ किया, परन्तु मुद्‌गशैल के समान स्वभाववाला वह शिष्य, अपनी न पढ़ने की आदत से विचलित नहीं हुआ। दिन पर दिन निकल गये, पर उसने एक भी अक्षर नहीं सीखा। अन्त में उस युवक आचार्य को ही प्रतिज्ञा भ्रष्ट होना पड़ा। वे प्रतिभाशाली बहुश्रुत युवक आचार्य समझ गये कि–'वृद्ध आचार्यश्री का कथन सत्य था।' उन्होंने आचार्यश्री से अपने अविनय की क्षमा याचना की और चले गये।

इस प्रकार मुद्‌गशैल के समान जो जीव हों, उन्हें अध्ययन नहीं कराना चाहिए। जैसे बांझ गाय के सर, शृंग, मुंह, पीठ, पेट, पूंछ आदि पर स्नेह से हाथ फैरने पर भी वह कभी दूध

नहीं देती, इसी प्रकार ऐसे जीवों को सम्यग् विधि से पढ़ाने पर भी वे तथा-स्वभाव के कारण एक अक्षर भी नहीं सीख पाते। इसलिए उन्हें सीखाने से कोई उपकार नहीं हो सकता।

उनके उपकार की बात एक ओर रखिये। उल्टी आचार्य और अध्ययन की ही अपकीर्ति हो सकती है कि-"इस आचार्य में पढ़ाने के सम्यक् कौशल का अभाव है अथवा यह अध्ययन ही समीचीन नहीं है, अन्यथा यह शिष्य एक अक्षर भी क्यों नहीं समझता!"

दूसरी हानि यह है कि-'इस प्रकार के कुशिष्य कुछ भी समझ नहीं पाते। अतः आचार्यश्री को भी उत्तरोत्तर विशिष्ट सूत्र में अवगाहन करने का अवसर नहीं आता, जिससे धीरे धीरे वे स्वयं शास्त्रों के किये कराये विशिष्ट सूत्रार्थ को भूल जाते हैं'।

तीसरी हानि यह है कि-'जो दूसरे योग्य मेधावी शिष्य होते हैं, उन्हें ज्ञान लेने का अवसर प्राप्त नहीं होता और आचार्य का विशिष्ट सूत्रार्थ, विस्मृत हो जाने के कारण उन्हें विशिष्ट सूत्रार्थ की प्राप्ति नहीं हो पाती। अतएव ऐसे मुद्गशैल (मगशैलिये) के समान अपरिणामी शिष्यों को सूत्रार्थ नहीं देना चाहिए।

इसके विपरीत काली मिट्टी का दृष्टांत है। काली मिट्टी पर यदि थोड़ी भी वर्षा हो, तो टिकती है। वह पानी को व्यर्थ नहीं जाने देती। काली मिट्टी-१ पानी को टिकाती है, २ कोमल बनती है, ३ तृणादि उत्पन्न करती है, ४ बीज

बोने पर बीज युक्त बनती हैं, ५ अंकुरित होती हैं और ६ गहूँ आदि उत्पन्न करती है। इसी प्रकार जो शिष्य, काली मिट्टी के समान हो, जो ज्ञान सुनकर गहूँ उत्पत्तिरूप साधुत्व ग्रहण करते हों, या धान्य अंकुर रूप श्रावक व्रत ग्रहण करते हो,या बीजरूप सम्यक्त्व ग्रहण करते हों,अथवा तृणरूप मार्गानुसारित्व उत्पन्न करते हों, या कम से कम कोमलता (यथाभद्रकता) प्राप्त करते हों और ज्ञान को टिकाते हों, तो उन्हें ज्ञान देना चाहिए।

२ घट का दृष्टांत

घड़े छह प्रकार के होते हैं। यथा;–

१ कुछ घड़े अभी अभी पके हुए नये होते हैं। वे किसी भी प्रकार की गंध से रहित होते हैं। उनमें यदि जल भरा जाय, तो वह जल, उसी रूप में रहता है (–विकृत नहीं होता) और पीनेवालों को भी उसी रूप में मिलता है। उसी प्रकार कुछ बाल अवस्थावाले शिष्य होते हैं। वे किसी भी प्रकार के संस्कार से रहित्त होते हैं। उनमें श्रुतज्ञानरूप जल भरा जाय, तो वह उसी रूप में–सम्यक् परिणमता है (–मिथ्या रूप में नहीं परिणमता) और उससे अन्य पिपासुओं को भी यथावस्थित श्रुतज्ञान रूप जल मिलता है। अतएव ऐसे सुपरिणामी श्रोता, श्रुतज्ञान रूपी जल के लिए पात्र हैं।

२ कुछ घड़े वर्षों पहले के पके हुए–पुराने होते हैं, उनमें कुछ घड़े गंध रहित होते हैं। जिनमें कभी कोई गंधवाली वस्तु नहीं

नहीं देती, इसी प्रकार ऐसे जीवों को सम्यग् विधि से पढ़ाने पर भी वे तथा-स्वभाव के कारण एक अक्षर भी नहीं सीख पाते। इसलिए उन्हें सीखाने से कोई उपकार नहीं हो सकता।

उनके उपकार की बात एक ओर रखिये। उल्टी आचार्य और अध्ययन की ही अपकीर्ति हो सकती है कि–"इस आचार्य में पढ़ाने के सम्यक् कौशल का अभाव है अथवा यह अध्ययन ही समीचीन नहीं है, अन्यथा यह शिष्य एक अक्षर भी क्यों नहीं समझता !"

दूसरी हानि यह है कि–'इस प्रकार के कुशिष्य कुछ भी समझ नहीं पाते। अत: आचार्यश्री को भी उत्तरोत्तर विशिष्ट सूत्र में अवगाहन करने का अवसर नहीं आता, जिससे धीरे धीरे वे स्वयं शास्त्रों के किये कराये विशिष्ट सूत्रार्थ को भूल जाते हैं'।

तीसरी हानि यह है कि–'जो दूसरे योग्य मेधावी शिष्य होते हैं, उन्हें ज्ञान लेने का अवसर प्राप्त नहीं होता और आचार्य का विशिष्ट सूत्रार्थ, विस्मृत हो जाने के कारण उन्हें विशिष्ट सूत्रार्थ की प्राप्ति नहीं हो पाती। अतएव ऐसे मुद्गशैल (मगशैलिये) के समान अपरिणामी शिष्यों को सूत्रार्थ नहीं देना चाहिए।

इसके विपरीत काली मिट्टी का दृष्टांत है। काली मिट्टी पर यदि थोड़ी भी वर्षा हो, तो टिकती है। वह पानी को व्यर्थ नहीं जाने देती। काली मिट्टी–१ पानी को टिकाती है, २ कोमल बनती है, ३ तृणादि उत्पन्न करती है, ४ बीज

मिथ्या रूप में परिणत कर लेते हैं और दूसरे पिपासुओं को भी वे उस श्रुतज्ञान को मिथ्याश्रुत रूप में परिणत कर पिलाते हैं। अतएव ऐसे दुष्परिणामी श्रोता, श्रुतज्ञान के अपात्र हैं।

४ कुछ पुराने घड़े अनिकाचित दुर्गंधवाले होते हैं। उन में जब अल्प दुर्गंधवाले—लहसुन मदिरादि पदार्थ रखे जाते हैं, या अल्पमात्रा में रखे जाते हैं, अथवा अल्प समय के लिए रखे जाते हैं, तो उनमें अल्प दुर्गन्ध होती है। उन घड़ों में यदि जल भरा जाता है, तो कुछ समय में उनकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है और उनमें बाद में भरा हुआ जल ठीक रूप में रहता है तथा पीनेवालों को जल उसी रूप में मिलता है। वैसे ही कुछ युवक और वृद्ध, अनिकाचित नास्तिक संस्कारवाले, या अन्यधर्म संस्कारवाले, या विकृत धर्म संस्कारवाले होते हैं, जिन्हें नास्तिकों का मन्द संसर्ग होता है। वे अनिकाचित नास्तिक संस्कारवाले बनते हैं, तथा जिन्हें अन्य दर्शनियों का मन्द संसर्ग होता है, वे अन्य धर्म संस्कारवाले बनते हैं, तथा जिन्हें शिथिलाचारियों का मन्द संसर्ग मिलता है, वे विकृत धर्म संस्कारवाले बनते हैं। ऐसे को श्रुतज्ञान देने से उनके तथारूप कुसंस्कार दूर हो जाते हैं और पीछे उन्हें दिया हुआ श्रुतज्ञान सम्यक्रूप में परिणत होता है तथा उनसे अन्य पिपासुओं को भी सम्यक् रूप में श्रुतज्ञान मिलता है। अतएव ऐसे सुपरिणामी श्रोता, श्रुतज्ञान के पात्र हैं।

५ कुछ पुराने घड़े निकाचित सुगंधवाले होते हैं। जिन घड़ों में तीव्र सुगन्धवाले—कपूर, चन्दन, अगर आदि पदार्थ, पूर्ण भरकर बहुत वर्षों तक रखे जाते हैं, ऐसे घड़ों में यदि जल भरा जाय, तो वह सुगंधित बन जाता है और पीनेवाले को

सुगंधित जल पीने को मिलता है। वैसे ही कुछ वृद्ध और युवक होते हैं, जो निकाचित शुद्ध धर्म संस्कारवाले होते हैं। जिन्हें शुद्ध दृढ़ाचारी संतों का अधिक संसर्ग होता है। ऐसे जीवों को श्रुतज्ञान देने से वह सम्यगरूप में परिणत होता है और वे दूसरे पिपासुओं को भी श्रुतज्ञान, सम्यगरूप में पिलाते हैं। अतएव ऐसे सुपरिणामी श्रोता, श्रुतज्ञान के पात्र हैं।

६ कुछ पुराने घड़े अनिकाचित दुर्गन्धवाले होते हैं। जिन घड़ों को सुगंधित पदार्थों का अल्प समय का संयोग मिलता है, वे घड़े ऐसे बनते हैं। ये घड़े कालान्तर में सुगन्धित से दुर्गन्धित भी बनाये जा सकते हैं। ऐसे घड़ों में जल भरा जाय तो वह भविष्य में दुर्गन्धित बन सकता है और दूसरे पीने वालों को भी दुर्गन्धित जल पीने को मिलता है। ऐसे ही कुछ युवक और वृद्ध होते हैं, जिन्हें शुद्ध धर्म की श्रद्धा, मन्द होती हैं। वे किसी समय अन्य संसर्ग को प्राप्त करके शीघ्र अन्य श्रद्धा वाले बन जाते हैं। जिन्हें शुद्ध दृढ़ाचारी सन्तों का संसर्ग कम मिलता है तथा जिनमें समझ शक्ति और परीक्षा बुद्धि की मन्दता होती है। ऐसे जीवों को विशिष्ट श्रुतज्ञान देने से भविष्य में हानि की आशंका रहती। अतएव ऐसे संभावित दुष्परिणामवाले श्रोता, विशिष्ट श्रुतज्ञान के अपात्र हैं।

अथवा घड़े चार प्रकार के होते हैं–१ नीचे से छिद्रवाले २ मध्य से खण्डित ३ ऊपर से कंठ हीन और ४ सम्पूर्ण अखंड।

१ जो नीचे से छिद्रवाले होते हैं, उनमें यदि जल भरा

जाय, तो वे जब तक भूमि से संलग्न रहते हैं, तब तक उनमें से जल थोड़ा भी नहीं निकलता अथवा किंचित् मात्र ही निकलता है। कई श्रोता ऐसे घड़े के समान होते हैं, वे जब तक आचार्य के व्याख्यान स्थल में बैठे रहते हैं और आचार्य श्री जब तक पहिले का अनुसंधान करके सूत्रार्थ सुनाते हैं, तब तक वे उसे धारण किये रहते हैं और समझ जाते हैं, परन्तु ज्योंही व्याख्यान पूरा होने पर व्याख्यान स्थल से उठते हैं, त्योंही पूर्वापर अनुसंधान की शक्ति से रहित होने के कारण, सुना समझा हुआ ज्ञान विसर जाते हैं। ऐसे श्रोता धारणा की दृष्टि से एकांत अयोग्य हैं।

२ जो घड़े मध्य से खण्डित होते हैं, उनमें यदि पूरे घड़े जितना जल भरा जाय, तो उनमें उस जल का एक चौथाई, दो चौथाई, दो तिहाई, या तीन चौथाई जल ही रहेगा, शेष निकल जायगा। कुछ श्रोता इसी प्रकार के होते हैं। उन्हें आचार्यश्री, जितना सुनाते हैं, उसमें से वे एक चौथाई, दो चौथाई, दो तिहाई, या तीन चौथाई ही समझ पाते हैं—टिका पाते हैं। ऐसे श्रोता धारणा के लिए अल्पपात्र अर्द्धपात्र, त्रिभाग पात्र, या चतुर्भाग हीन पात्र समझने चाहिए।

३ जो घड़े ऊपर से कंठ हीन होते हैं, उनमें यदि एक घड़े जितना जल भरा जाय, तो उनमें कुछ कम सम्पूर्ण जल समा जाता है। कुछ श्रोता भी उन घड़ों के समान होते हैं, उन्हें आचार्यश्री जितना सुनाते हैं, उसमें से वे कुछ कम सम्पूर्ण समझ जाते हैं, और जितना समझते हैं, उतना धारण कर रखते

हैं। ऐसे श्रोता अधिकांशतः पात्र हैं।

४ जो घड़े सम्पूर्ण अखण्ड होते हैं, उनमें यदि एक घड़े जितना जल भरा जाय, तो उनमें वह जल सम्पूर्णतया समा जाता है। कुछ श्रोता भी ऐसे ही होते हैं। उन्हें आचार्यश्री जितना सुनाते हैं, वे उसे सम्पूर्ण समझ जाते हैं और भविष्य में स्मरण में रख लेते हैं। ऐसे श्रोता पूर्ण पात्र हैं।

अथवा घड़े दो प्रकार के होते हैं–१ कच्चे–अग्नि से बिना पके हुए और २ पके हुए।

१ जो घड़े कच्चे होते हैं, उनमें यदि जल डाला जाय, तो जल का भी विनाश हो जाता है और उस घट का भी। जो श्रोता कच्चे घड़े के समान होते हैं, उन्हें विशिष्ट श्रुतज्ञान देने से वह श्रुतज्ञान का दान भी व्यर्थ जाता है और वे उस विशिष्ट श्रुतज्ञान को न समझने के कारण या शंकाकुल होकर श्रद्धा-भ्रष्ट हो जाते हैं। ऐसे श्रोता विशिष्ट ज्ञानदान के लिए एकांत अयोग्य हैं।

२ जो घड़े पक्के होते हैं, उनमें जल डाला जाय, तो वे घट अधिक परिपक्व बनते हैं और जल शीतल बनता है। उनके समान जो श्रोता होते हैं, उनको यदि श्रुतज्ञान दिया जाय, तो उनकी श्रद्धा दृढ़ होती है और श्रुतज्ञान सम्यग्रूप में परिणत होता है। अतएव ऐसे श्रोता, ज्ञानदान के पात्र हैं।

३ चलनी का दृष्टांत

कई श्रोता चलनी के समान अग्राही होते हैं। जैसे चलनी

में पानी डालने पर टिकता नहीं, वैसे ही कुछ श्रोता, इधर शब्द कान में पड़ता है और उधर भूलते जाते हैं। ऐसे अग्राही श्रोता, धारणा के लिए एकांत अपात्र हैं।

१ मुद्गशैल २ नीचे से छिद्रवाले घट और ३ चलनी के समान श्रोताओं में रहे परस्पर अन्तर को समझने के लिए एक दृष्टांत इस प्रकार है—

एक समय की बात है—तीन श्रोता आपस में मिले। तीनों में प्रसंगवश उपदेश श्रवण की बात चल पड़ी। नीचे छिद्रवाले घट के समान श्रोता ने कहा—"बन्धुओं! उपदेश श्रवणकर उसे धारण करना भी एक प्रकार का परिग्रह है। अतएव मैं जबतक आचार्यश्री व्याख्यान स्थल पर उपदेश सुनाते हैं, तभी तक मैं उसे स्मरण रखता हूँ। परन्तु ज्यों ही व्याख्यान स्थल से उठता हूँ, सब कुछ वहीं विसर जाता हूँ। अपने मस्तिष्क में कुछ भी संग्रहित नहीं रखता"।

चलनी की उपमावाले श्रोता ने कहा—'बन्धु! गर्व न करो। तुम तो जहाँ तक व्याख्यान स्थल में बैठे रहते हो, तब तक उस उपदेश का मस्तिष्क में परिग्रह किये रहते हो, पर मैं इधर सुनता हूँ और उधर विसारता जाता हूँ। अतएव मैं तुम से अधिक श्रेष्ठ हूँ'।

मुद्गशैल की उपमावाले श्रोता ने कहा—'बन्धुओं! सुनिये, आप दोनों अब तक अपरिग्रह की मात्र साधना करनेवाले हैं, पर मैं इस विषय में सिद्ध हूँ। मैं अपने में उपदेश का एक अक्षर भी प्रविष्ट नहीं होने देता। अतएव आप दोनों मिलकर

भी मेरी समता नहीं कर सकते। दोनों ने उसकी श्रेष्ठता स्वीकार की और सभा समाप्त हो गई।

कुछ श्रोता इसके विपरीत, तापसों के कमण्डल के समान ग्राही होते हैं। जैसे—कमण्डल में जल भरने पर उसमें से जल का एक बिन्दु भी बाहर नहीं निकलता, उसी प्रकार कुछ श्रोता ऐसे होते हैं कि वे आचार्यश्री द्वारा दिया हुआ सूत्रार्थ, पूर्णतया धारण किये रहते हैं। ऐसे ग्राही श्रोता, धारणा की दृष्टि से एकान्त पात्र हैं।

४–५ परिपूणक और हंस का दृष्टांत

कुछ श्रोता परिपूणक (पक्षि विशेष का जालीदार घोंसला) के समान दोषग्राही होते हैं। जैसे परिपूणक में कचरा युक्त घी डालने पर उसमें कचरा ठहर जाता है और घी च्यवकर निकल जाता है। ऐसे ही कुछ श्रोता होते हैं, जो व्याख्याता के द्वारा प्रमाद आदि के कारण कभी कोई ऐसी अन्यथा व्याख्या हो जाय, जो उन कुशिष्यों के अनुकूल हो, तो वे उसे तो ग्रहण करके रखते हैं, शेष यथार्थ हितकर व्याख्या को भूल जाते हैं। अथवा उन आचार्य की उस विपरीत व्याख्या को लेकर उन्हें व्याख्यान के अयोग्य आदि बतलाते हैं और शेष व्याख्यान कुशलता को एक ओर डाल देते हैं। अथवा उनकी व्याख्या की यथार्थता को नहीं अपनाते, परंतु उनके जीवन में रहे किसी दुर्गुण को अपनाते हैं। ऐसे दुर्गुणग्राही श्रोता, श्रुतज्ञान दान के अयोग्य हैं।

कुछ श्रोता हंस के समान गुणग्राही होते हैं। जैसे—हंस को

यदि जलमिश्रित दुग्ध मिलता है, तो वह अपनी चोंच में रही अम्लता के कारण जल से दूध को पृथक् करके दूध ग्रहण करता है और जल छोड़ देता है। कुछ श्रोता भी इसी स्वभाव के होते हैं। यदि कभी व्याख्याता, व्याख्यान में कहीं कोई स्खलना कर जाता है, तो वे अपनी विवेक रूप चंचु से उस स्खलना रूप जल को पृथक् करके यथार्थ व्याख्यारूप दूध ही ग्रहण करते हैं। अथवा व्याख्याता के व्याख्यान में रहे हुए प्रमाद की उपेक्षा करके, उनके व्याख्यान कौशल की प्रशंसा करते हैं, अथवा उनके जीवन में रहे दुर्गुण को ग्रहण नहीं करके उनके यथार्थ व्याख्यान के अनुसार अपना आचार बनाते हैं। ऐसे गुणग्राही श्रोता हंस के समान दुर्लभ हैं और एकांत योग्य हैं।

६-७ भैंसे और मेंढे का दृष्टांत

१ कुछ श्रोता भैंसे के समान अन्तराय करनेवाले होते हैं। जैसे-भैंसा जब तालाब आदि में प्रवेश करता है, तो वह उसमें बारबार इधर उधर घूमता है, या बैठे बैठे सिर, पैर और पूँछ हिलाया करता है, करवटें बदलता रहता है, इस प्रकार पानी को अस्वच्छ बना देता है, फिर मल और मूत्र करके अधिक गन्दा बना देता है। इसके बाद जल पीता है, जिससे उसे भी स्वच्छ जल नहीं मिलता और दूसरों को भी स्वच्छ जल पीने में अन्तराय पड़ती है। कुछ श्रोता भी इसी प्रकार के होते हैं। वे व्याख्यान स्थल में चुपचाप-स्थिर नहीं बैठते, या तो इधर उधर घूमते रहते हैं, या बैठकर इधर उधर

हिलते डुलते और देखते रहते हैं, या इधर उधर की बातें करने लग जाते हैं अथवा अप्रासंगिक प्रश्न छेड़ देते हैं, व्यर्थ की कुतर्क करने लग जाते हैं, या जान बूझकर सीधे सरल प्रश्न को लम्बाने और घुमाने का प्रयत्न करते हैं।

इस प्रकार न तो वे स्वयं श्रुतज्ञान का सम्यक् लाभ उठा पाते हैं, न दूसरे श्रोताओं को लाभ लेने देते हैं। ऐसे अन्तराय भूत श्रोता, व्याख्यान स्थल में प्रवेश के ही अयोग्य हैं।

कुछ श्रोता मेढ़े के समान अन्तराय नहीं करनेवाले होते हैं। मेढ़ा, जलाशय के बाहर ही घुटने टेककर पानी में थोड़ा-सा मुँह डालकर पानी पीता है। वह पानी को स्वच्छ बनाये रखते हुए अपनी प्यास बुझाता है और दूसरों के लिए भी स्वच्छ जल पीने का अवसर देता है। जो श्रोता मेढ़े के समान होते हैं वे व्याख्यान स्थल में जहाँ भी स्थान मिलता है, बिना किसी का ध्यान भंग किये चुपचाप स्थिर होकर बैठ जाते हैं और एकाग्रता पूर्वक सुनते हैं। यदि प्रश्न पूछना हो, तो प्रासंगिक उचित और आवश्यक प्रश्न पूछते हैं। जिससे उन्हें भी श्रुतज्ञान का अच्छा और विशेष लाभ मिलता है और दूसरों को भी अच्छा व विशेष लाभ मिलता है। ऐसे अन्तराय न करनेवाले श्रोता, व्याख्यान स्थल में प्रवेश के योग्य हैं।

८—९ मच्छर और जलौका का दृष्टांत

कुछ श्रोता मच्छर के समान असमाधिकारक होते हैं, जैसे मच्छर डंक लगाकर विष पहुँचाता है और अविकृत रक्त चूस

कर प्राणियों को असमाधि पहुँचता है, वैसे ही कुछ श्रोता, आचार्य को कुवचन कहकर अपमानित करते, कष्ट देकर असमाधि पहुँचाते, या असमाधि पहुँचाते हुए ज्ञान ग्रहण करते हैं, अथवा जबतक आचार्य असमाधि से उदास या कोपायमान न हो जायँ, तब तक उनकी बात को विनय एकाग्रता और स्थिरता पूर्वक नहीं सुनते। ऐसे असमाधिकारक श्रोता, ज्ञान के अपात्र हैं।

कुछ श्रोता, जलौका के समान समाधिकारक होते हैं। जैसे–जलौका जिस समय विकृत रस चूसती है, तब भी साता का वेदन होता है और विकृत रस चूस लेती है, तब भी परिणाम में शाता का वेदन होता है। ऐसे ही कुछ श्रोता, आचार्य को विनययुक्त वचन कहकर, उनका बहुमान कर और उन्हें सुख देकर समाधि पहुँचाते हैं, वे समाधि पहुँचाते हुए ज्ञान ग्रहण करते हैं। कभी प्रमादवश उन्हें असमाधि हो जाय, तो विनयपूर्वक उनकी असमाधि दूर करते हैं। ऐसे समाधिकारक श्रोता, ज्ञान के पात्र हैं।

१०–११ बिल्ली और जाहक का दृष्टांत

कुछ श्रोता बिल्ली के समान अविनीत होते हैं। बिल्ली का ऐसा दुष्ट स्वभाव होता है कि–वह प्रायः भाजन में दूध आदि नहीं पीती, वह भाजन को ठोकर लगाकर दूध आदि को भूमि पर बहा देती है और फिर उसे पीती है। इससे उसे पूरा दूध पीने को नहीं मिलता, दूध भूमि पर बह जाने से उसमें जो

रज आदि मिल जाते हैं, उससे सम्मिश्रित दूध पीना पड़ता है। साथ ही वह दूध आदि को बहुत ही शीघ्रता से चाटती है जिससे उसे पाचन भी बराबर नहीं होता। इसी प्रकार कुछ श्रोता 'विनय से बचने के लिए व्याख्यान में आकर श्रुतज्ञान ग्रहण नहीं करते, पर जो व्याख्यान सुनकर चले जाते हैं, उनसे पूछ कर सुनते हैं, या ऐसे लोगों की परस्पर बातचीत सुनकर ही काम निकालने की वृत्ति रखते हैं। इससे उन्हें श्रुतज्ञान का पूरा लाभ नहीं मिलता, फिर उन श्रोताओं में मति-मन्दता आदि के कारण अन्यथा कथन रूप रज आजाता है, उस दोष से मिश्रित व्याख्या सुनने को मिलती है। इसके अतिरिक्त ऐसे श्रोता, धैर्य एवं शांति पूर्वक नहीं सुनते हैं। अतएव उन्हें उस श्रुतज्ञान का पूरा पाचन भी नहीं होता। ऐसे अविनीत श्रोता, श्रुतज्ञान के अपात्र हैं।

कुछ श्रोता जाहक के समान विनीत होते हैं। जाहक, दूध आदि को भाजन में रहते हुए ही पीता है। थोड़ा थोड़ा पीता है, इधर उधर के पार्श्वभागों को चाटते हुए पीता है। इससे उसे पूरा दूध पीने को मिलता है, शुद्ध दूध पीने को मिलता है और दूध का पूरा पाचन होता है। ऐसे जो श्रोता होते हैं, वे आचार्य आदि का यथा योग्य विनय करते हैं, विनय पूर्वक उनके चरणों में बैठकर श्रुतज्ञान ग्रहण करते हैं। अपनी मन्द या तीव्र ग्रहण धारणा शक्ति के अनुसार अल्प-बहुत मात्रा में श्रुतज्ञान ग्रहण करते हैं और करके उसे दुहराकर परिपक्व बनाते हैं। इससे उन्हें श्रुतज्ञान का पूरा लाभ मिलता है। शुद्ध रूप में लाभ मिलता है और पूरा पाचन होता है। ऐसे

विनीत श्रोता, श्रुतज्ञान के पात्र हैं।

१२ गौ-सेवी ब्राह्मणों का दृष्टांत

कुछ श्रोता, गाय की सेवा नहीं करनेवाले ब्राह्मणों की भाँति गुरु की वैयावृत्य रहित होते हैं। एक गाँव में चार ब्राह्मण रहते थे। वे चारों चौबे (चारों वेद के जानकार) थे। किसी कुटुम्बी ने एक पर्व के दिन उनसे कथा करवाई और दक्षिणा में उन्हें अन्य वस्तुओं के साथ एक निरोग हृष्ट पुष्ट और विशेष दूध देनेवाली विनीत गाय दी।

उस गाय के मिलने पर उन्होंने सोचा—'हम चार हैं, और गाय एक है। हमें इसका उपभोग किस प्रकार करना चाहिए ?' तब एक ने कहा—'हम लोग एक एक दिन बारी बारी से गाय दुहते रहें'। यह सुझाव सबको उचित लगा और सभी ने स्वीकार कर लिया। पहले दिन सबसे बड़े ब्राह्मण को गाय दी गई। उस ब्राह्मण ने गाय को घर ले जाकर सोचा—'मैं तो इस गाय को आज ही दुहूँगा, कल तो दूसरा दुहेगा। अतः इसे निरर्थक चारा पानी क्यों डालूं ?' यह सोचकर उसने गाय का दूध तो दुह लिया, परन्तु दुहने से पहले या पीछे उस गाय को चारा पानी नहीं दिया। इससे वह गाय विचारी दिनरात भूखी प्यासी ही रही। रात को उसकी शीत से रक्षा का प्रबंध भी नहीं किया और वह शर्दी से पीड़ा पाती रही। दूसरे दिन दूसरा ब्राह्मण उस गाय को अपने घर ले गया और उसने भी पहले ब्राह्मण के समान दुष्ट विचार से गाय का दूध

दुह लिया, पर चारा पानी आदि नहीं दिया। शेष दोनों ब्राह्मण भी ऐसे ही निकले। इस प्रकार उन चारों स्वार्थी, निर्दय ब्राह्मणों के द्वारा अपना स्वार्थ साधने और दूसरों की चिन्ता नहीं करने की दुर्वृत्ति से वह गाय बिचारी भूख प्यास से क्षिण-काय होती हुई मर ही गई और उन ब्राह्मणों को गाय के दूध से वंचित होना पड़ा। गाय के मरने से गो-हत्या का पाप लगा। गाँव के लोगों में उनकी बड़ी तीव्र निन्दा हुई—'अरे ! ये वेद-पाठी ब्राह्मण हैं, या निर्दय चाण्डाल ? उनका कथा बाँचने का व्यवसाय भी उठ गया, भिक्षा और दक्षिणा मिलनी भी बन्द हो गई। तब वे उस गाँव को छोड़कर दूसरे गाँव चले गये, पर वहाँ भी उनकी अपयश कथा पहुँच चुकी थी, अतएव वहाँ और अन्यत्र कहीं भी उन्हें शरण प्राप्त नहीं हुई।

ऐसे ही कुछ शिष्यों की कहानी है—एक बहुश्रुत बहुआगम के ज्ञाता सहनशील शांत आचार्य थे। उनके पास उनके निजी शिष्य भी बहुत थे और उनकी ज्ञानादि गुणों की गरिमा से विविध अन्य गच्छ के कई प्रातीच्छक संत भी उनकी सेवा में आकर वाचना लेते थे। परन्तु पढ़ने के पहले और पीछे गौचरी आदि वैयावृत्य का अवसर आता, तो निजी शिष्य सोचते कि–"आचार्य केवल हमें ही व्याख्यान नहीं सुनाते, पर प्रातीच्छकों को भी सुनाते हैं। अतएव वे ही आचार्य की वैयावृत्य करेगें, हम आचार्यश्री की वैयावृत्य क्यों करें ?" प्रातीच्छक भी सोचते "—हम तो पराये गच्छ के हैं और कुछ समय के लिये आये हुए हैं तथा हमें तो इनसे अल्प समय का लाभ है। अतः हम इनकी

वैयावृत्य क्यों करें ? इनकी वैयावृत्य इनके शिष्य ही कर लेगे। क्योंकि जीवनभर लाभ तो वे ही लेंगे," इस प्रकार सोचकर दोनों ही आचार्य की सेवा नहीं करते थे।

इस प्रकार उन दोनों के चिन्तन के बीच आचार्यश्री वैयावृत्य के अभाव में अशक्त एवं ग्लान हो गए। इससे दोनों को ही सूत्रार्थ प्राप्ति में हानि हुई। आचार्यश्री के वैयावृत्य न करने से उन्हें जो अशक्तता और ग्लानता आई, उसका पाप लगा। संघ में अवर्णवाद हुआ। उस गण के दूसरे वाचक आचार्य ने भी उन्हें ज्ञानदान नहीं दिया। वहाँ से अन्य गणों में जाने पर भी उन्हें श्रुतज्ञान नहीं दिया गया, जिससे वे अगीतार्थ ही रह गये। तथा भवान्तर में वे उच्च गति के अधिकारी न बन सके। ऐसे वैयावृत्य न करनेवाले श्रोता, ज्ञान के अपात्र हैं।

इसके विपरीत कुछ श्रोता, गाय की सेवा करनेवाले ब्राह्मणों की भाँति गुरु की वैयावृत्य करनेवाले होते हैं।

पूर्वोक्त गांव में अन्य चार ब्राह्मण रहते थे। वे भी वेदपाठी थे। उन्हें भी किसी कुटुम्बी ने पर्व के दिन उनसे कथा करवा कर दक्षिणा में अन्य वस्तुओं के साथ एक गाय भी दी।

उन्होंने भी पूर्वोक्त प्रकार से एक एक दिन बारी बारी से गाय दुहने का निर्णय किया। पहले दिन बड़ा ब्राह्मण गाय को अपने घर ले गया। उसने सोचा–'यद्यपि मैं आज ही दूध दुहूँगा, कल दूसरा दूध दुहेगा, परन्तु यदि मैं इस गाय को चारा पानी नहीं दूंगा, शीतादि से रक्षा नहीं करूंगा, तो क्रमशः मुझे

भी इसका दुष्फल भोगना पड़ेगा। गायको जो पीड़ा होगी, उसका पाप लगेगा। लोकमें भी अवर्णवाद होगा। भविष्य में दक्षिणादि मिलना बन्द हो जायगा। अतएव मुझे अवश्य ही इसे चारा पानी डालना चाहिए, जिससे इनमें से एक भी दुष्फल न हो। साथ ही यदि मेरे चारे पानी से पुष्ट हुई गाय का दूध अन्य ब्राह्मण दूहेगें, तो यह मुझ पर महान् उपकार होगा। यह सोचकर उसने गाय को पर्याप्त मात्रा में चारा पानी दिया। उसकी पूरी देखभाल रख कर रक्षा की। शेष तीन ब्राह्मणों ने भी ऐसा ही सोचा और किया। इससे वे चिरकाल तक उस गाय का दूध पाते रहे। लोक में उनकी गौ-सेवा की बहुत प्रशंसा हुई और आगे भी उन्हें दक्षिणा में बहुत मिलता रहा।

इसी प्रकार के शिष्यों की एक कथा है। एक गुणसम्पन्न आचार्य के पास कई निजी शिष्य और कई प्रातीच्छक थे। पढ़ने के पहले और पीछे निजी शिष्य सोचते थे—'यद्यपि ये आचार्य दोनों को ही श्रुतज्ञान देते हैं, किन्तु वैयावृत्य हमें भी करना चाहिए। यदि हम वैयावृत्य नहीं करेगें, तो आचार्य अशक्त एवं ग्लान हो जाएँगे और संभव है इस निमित्त से काल भी कर जायँ। इससे हमें भी श्रुतज्ञान में अन्तराय होगी, संघ में अवर्णवाद होगा, इस गच्छ के अन्य आचार्य भी वाचना नहीं देगें, अन्य गच्छ में भी वाचना नहीं मिलेगी, अतएव हमें अवश्य ही आचार्यश्री की वैयावृत्य करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त इन आचार्यश्री ने हमें दीक्षा दी, व्रत का आरोपण किया, और संयम के आचार में निपुण बनाया। इस प्रकार आचार्य

हमारे महान् उपकारी हैं। उस उपकार के प्रत्युपकार के लिए भी हमें इनकी वैयावृत्य करनी चाहिए। यदि हमारे वैयावृत्य के द्वारा पुष्ट होकर आचार्यश्री इन प्रातीच्छकों को ज्ञान देगें, तो उससे हमें भी लाभ होगा। इस प्रकार करने से हमारे गच्छ की शोभा में वृद्धि होगी'। यह सोचकर वे विनयी शिष्य, आचार्य श्री की बहुत वैयावृत्य करते थे।

तथा जो प्रातीच्छक थे, वे भी सोचते थे–'अहो! ये आचार्य कैसे महान् हैं' हम इनके शिष्य नहीं, हमने इनकी कभी सेवा नहीं की, फिर भी हमें श्रुतज्ञान प्रदान करते हैं, ये कितना परिश्रम करते हैं? दूसरा ऐसा कौन होगा, जो बिना आशा के, बिना उपकार के दूसरों पर उपकार करे? ऐसे महान् आचार्य का हम क्या प्रत्युपकार कर सकते हैं? तथापि हम जो कुछ भी इनकी वैयावृत्य करेगें, उससे हमें बहुत लाभ होगा'। इत्यादि सोचकर वे आचार्यश्री की बहुत सेवा करते थे।

दोनों की सेवा से आचार्य श्री को बहुत समय तक सूत्रार्थ देते हुए भी अशक्तता नहीं आती थी। अतएव उनसे निजी और पर, दोनों शिष्यों को बहुत वर्षों तक, विपुलतर श्रुतज्ञान की प्राप्ति हुई। संघ में दोनों का खूब साधुवाद हुआ। गच्छान्तर में भी उन्हें बहुत श्रुतज्ञान की प्राप्ति हुई। तथा भवान्तर में सुगति पाते हुए वे मोक्षाधिकारी बने। ऐसे वैयावृत्यकारी शिष्य, श्रुतज्ञान के पात्र हैं।

१३ भेरीवादक का दृष्टांत

कुछ श्रोता, भेरी-नाशक के समान ज्ञान के प्रति भक्ति से

रहित तथा ज्ञान के शत्रु होते हैं।

कुबेर निर्मित्त द्वारिका नगरी में, दक्षिण भरत के स्वामी श्री कृष्ण राज्य कर रहे थे। किसी समय उस नगरी में रोग का उपद्रव उत्पन्न हो गया।

प्रथम स्वर्ग के अधिपति 'शक्र' इन्द्र अपनी सुधर्म सभा में बैठे हुए थे। सभा में 'पुरुष-गुण विचारणा' का विषय आया, तो उन्होंने 'अवधि' से द्वारिका स्थित श्री कृष्ण को देखकर सामान्य रूप से उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—"अहो! श्री कृष्ण धन्य है कि—वे दोष-बहुल वस्तु में भी गुण को ही ग्रहण करते हैं, लेश-मात्र भी दोष ग्रहण नहीं करते, तथा नीच युद्ध भी नहीं करते।"

इस प्रकार इन्द्र द्वारा की गई कृष्ण की प्रशंसा को एक मिथ्या-दृष्टि देव सहन नहीं कर सका। वह पृथ्वी पर आया और जिस मार्ग से श्रीकृष्ण भ० अरिष्टनेमि के वन्दनार्थ जानेवाले थे, मार्ग में एक मरे हुए से कुत्ते का रूप बनाकर पड़ गया। उस कुत्ते में इतनी दुर्गन्ध थी कि उसके निकट होकर किसी को निकलना बहुत कठिन था। उसका वर्ण अत्यंत काला था, स्पर्श अत्यंत कर्कश और रूक्ष था, आकार बहुत भयावना था, शरीर में सैंकड़ों कीड़े बिलबिला रहे थे और मुंह खुला हुआ था। परन्तु उसमें दाँत अत्यंत श्वेत, चमकीले, श्रेणीबद्ध और सुन्दराकार थे।

यथासमय श्रीकृष्ण, नेमि-वन्दना को निकले। उनके आगे पैदल चलनेवाले लोग, जब उस कुत्ते के निकट पहुँचे, तो वे उसकी दुर्गन्ध से अत्यंत संत्रस्त होकर नाक ढ़ँकने लगे और

मार्ग को छोड़कर इधर उधर होकर जाने लगे।

जब कृष्ण ने अपने आगे चलनेवाले लोगों को यों नाक ढँकते और मार्ग छोड़ते देखा, तो उन्होंने अपने निकटवर्ती सेवकों से इसका कारण पूछा। उसने कारण बताया, किन्तु श्रीकृष्ण ने इस कारण से मार्ग नहीं छोड़ा। वे उसी मार्ग पर चलते रहे। जब वे उस मृत-से कुत्ते के पास पहुँचे, तो उन्होंने उस कुत्ते की अवस्था देखी, परन्तु उन्होंने उसके किसी भी दुर्गुण की निन्दा नहीं की, वरन् उन्होंने उस कुत्ते में रही एक-मात्र गुणरूप श्वेत दंत-पंक्ति की प्रशंसा की—'अहो! इसकी दन्त-पङ्क्ति तो मरकत मणि (यह कृष्ण वर्ण होता है) के भाजन में रखी हुई मोती की श्रेणी के समान कितनी भव्य लगती है।'

इस प्रशंसा वचन को सुनकर देवता ने सोचा—'शक्र इन्द्र ने जो कहा था—वह यथार्थ है'।

उसके कुछ समय पश्चात् जब श्रीकृष्ण, श्री नेमिवन्दन करके लौट आये, तब उस देवता ने कृष्ण की युद्ध परीक्षा के निमित्त उनकी घुड़शाला से एक घोड़े का अपहरण किया। यह देखकर पैदल सेना के लोग तलवार, भाले आदि लेकर उसके पीछे पड़े। कई कुमार भी उस देवता के पीछे पड़े थे। सबने उस देवता पर सैंकड़ों प्रहार किये, पर वह देव अपनी दिव्यशक्ति से उन सभी को लीलामात्र से जीतता हुआ मन्द गति से आगे बढ़ रहा था। श्रीकृष्ण को इस घटना की जानकारी हुई, तो वे भी उसके पीछे गये। श्री कृष्ण ने उसके पास पहुँचकर उससे पूछा—'आप! मेरे अश्व-रत्न का अपहरण क्यों कर रहे हैं?'

देव ने कहा—'मैं अपहरण करने की शक्ति रखता हूँ, अतः अपहरण कर रहा हूँ। यदि तुझ में कोई शक्ति हो, तो मुझे जीतकर इसे छुड़ा ले'। तब युद्ध-प्रिय कृष्ण ने सहर्ष पूछा—'हे महापुरुष ! आप किस युद्ध से लड़ना चाहेंगे' ? यों कहकर कृष्ण ने उस देव को त्रिविध प्रकार के युद्धों के नाम गिनाये। परन्तु देव ने उन सभी युद्धों से लड़ने का निषेध कर दिया। तब कृष्ण ने पूछा--'आप ही कहिए, किस रीति से मैं युद्ध करूँ'? वह देव बोला—'तू मुझ से पुतों से=नितम्ब से युद्ध कर'। तब श्री कृष्ण ने अपने दोनों कानों को दोनों हाथों से बन्द करके 'हा ! हा !' करते हुए कहा—'यह आप क्या कह रहे हैं ? जाइए, जाइए, आप अश्व-रत्न ले जाइए, मैं अधम रीति से युद्ध नहीं कर सकता"।

देव को यह निश्चय हो गया कि—'शक्र इन्द्र की दूसरी बात भी सत्य है'। उसने अपना वास्तविक रूप प्रकट करके श्री कृष्ण से कहा—"कृष्ण ! मैं तुम्हारे अश्व का अपहरण करने नहीं आया। मैंने तुम्हारे गुण की परीक्षा के लिए ऐसा किया है"। यह कहकर देव ने शक्र कृत प्रशंसा का वृत्तांत कह सुनाया।

अपनी गुण प्रशंसा सुनकर श्री कृष्ण लज्जित हुए। उन्होंने अपनी ग्रीवा, मस्तक और नयन झुका लिए। वह देव श्री कृष्ण की यह अन्य विशेषता देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने कहा—" कृष्ण ! मनुष्यों को वैमानिक देवों का दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता,'—ऐसी लोक में प्रसिद्धि है। अतएव तुम

मुझ से कुछ यथेष्ट वर माँगो'।

कृष्णने कहा—"देव! अभी द्वारिका नगरी में रोग का उपद्रव चल रहा है। अतः उसे इस प्रकार उपशान्त कीजिए कि वह फिर से उत्पन्न न हो"। देव ने उन्हें गोशीर्ष चन्दन से बनी हुई, अशिव का उपशम करनेवाली एक भेरी दी और कहा—'इसका नियम यह है कि इसे छह छह मास के पश्चात् अपने आस्थान मण्डप में रखकर ही बजाई जाय। इसका बारह बारह योजन तक सुनाई देने वाला, मेघ गर्जना के समान गंभीर शब्द होगा। इसका शब्द जो भी सुनेगा, उसकी पहले की व्याधि निश्चय ही चली जायगी और भविष्य में छह मास से पहले कोई व्याधि नहीं होगी"। यह कहकर देव चला गया।

श्री कृष्ण ने वह भेरी, अपने भेरी बजानेवाले को दी और देव-प्रदत्त सूचना से उसे अवगत कर दिया।

दूसरे दिन श्री कृष्ण, सहस्रों राजा आदि से युक्त राज सभा में बैठे हुए थे, तब वह भेरी बजाई गयी। भेरी का नाद सुनते ही नगरी के समस्त रोगियों का रोग उसी प्रकार नष्ट हो गया, जिस प्रकार सूर्य की किरणों से अन्धकार नष्ट हो जाता है। रोग मुक्त होकर सभी द्वारिकावासियों ने श्रीकृष्ण को बारंबार आशीर्वाद दिया।

एक समय की बात है—किसी दूर देशान्तर में एक महान् धनाढ्य पुरुष रहता था। उसके शरीर में कोई असाध्य व्याधि उत्पन्न हो गयी थी। उसने बहुत से उपचार कराये, पर कोई फल नहीं निकला। किसी जानकार पुरुष ने उसे कहा कि—

'तुम द्वारिका जाओ। वहाँ सर्व-रोग-शामक भेरी बजती है। उससे तुम्हारा रोग नष्ट हो जायगा'। यह सुनकर वह द्वारिका पहुँचा, परन्तु दैव-योग से वह एक दिन बाद पहुँचा। उसके पहुँचने के एक दिन पहले ही भेरी बज चुकी थी। उसने सोचा- "अब मैं कैसे जीवित रहूँगा? क्योंकि अब फिर से छह मास के पश्चात् भेरी बजेगी, तब तक तो यह व्याधि बढ़ कर मेरे प्राणों का नाश ही कर देगी'। यह सोचते सोचते वह चिन्ता सागर मे डूब गया। अचानक उसे विचार हुआ कि—'जब इस भेरी के शब्द मात्र से व्याधि दूर हो जाती है, तो उसके कुछ भाग को घिस कर पी लेने से तो रोग अवश्य ही नष्ट हो जायगा। मेरे पास धन बहुत है, अतः धन का प्रलोभन देकर मुझे उस भेरी का एक भाग अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए'।

यह सोचकर उसने भेरी बजानेवाले को विपुल धन से प्रलोभित दिया। जिस प्रकार दुष्ट स्त्रियों को निरन्तर धन आदि से संमानित किया जाय, तो भी वे अपने स्वामी को छोड़कर पर-पुरुषों से धनादि के लिए व्यभिचार करती हैं, वैसे ही उस भेरी बजानेवाले को, उसके स्वामी श्री कृष्ण से धनादि बहुत प्राप्त होता था, फिर भी उसने विपुल धन के प्रलोभन में आकर उस भेरी का एक भाग काटकर उस धनिक को दे दिया एवं उसके स्थान पर अन्य चन्दन का खण्ड लगा दिया। इसी प्रकार अन्य अन्य देशों से आये हुए, नाना रोगियों को वह धन-लुब्ध बनकर भेरी का एक एक भाग काटकर देता रहा तथा उसके स्थान पर नया खण्ड जोड़ता रहा। यों खण्ड-

खण्ड देते हुए तथा खण्ड-खण्ड जोड़ते हुए वह भेरी, कन्था के समान चन्दन-खण्ड की सहस्रों जोड़वाली बन गई। जिससे उसमें रहा हुआ दिव्य प्रभाव नष्ट हो गया और पहले नगरी में जिस रोग का उपद्रव चल रहा था, वह पुनः आरंभ हो गया।

लोगों ने जाकर श्री कृष्ण से विज्ञप्ति की—"राजन्! जैसे वर्षाकाल की मेघाच्छन्न अमावास्या की रात्रि को तीव्र अंधकार व्याप्त रहता है, उसी प्रकार द्वारिका में फिर से रोग का भयंकर उपद्रव व्याप्त हो गया है"। यह सुनकर श्री कृष्ण ने दूसरे दिन सभा में भेरी बजानेवाले को बुलाया और उसे भेरी बजाने के लिए कहा। उसने भेरी बजाई, पर उसका शब्द सभा तक भी नहीं फैला। तब श्री कृष्णने स्वयं भेरी को निरखा। वह महादरिद्री की कंथा की भांति सहस्रों अन्य चन्दन-खण्डों से जुड़ी हुई दिखाई दी। यह देखकर श्री कृष्ण को बहुत क्रोध आया। उन्होंने उस भेरी-रक्षक से पूछा—"अरे दुष्ट! पापी! अधम! यह तूने क्या किया? उस भेरी-रक्षक ने मरण के भय से सब कुछ सच सच बतला दिया। उसके भ्रष्टाचार की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने उस भेरी-रक्षक को महान् अनर्थ करनेवाला समझकर तत्काल शूली पर चढ़वा दिया, तथा जन अनुकम्पा के लिए पुनः पौषधशाला में तेले का तप करके देव की आराधना की। देव के प्रत्यक्ष होने पर उसे स्मरण का हेतु बतलाया। देव ने श्री कृष्ण को दूसरी रोगोपद्रव मिटानेवाली भेरी दी। श्री कृष्ण ने वह भेरी एक अत्यन्त विश्वस्त एवं योग्य भेरी-वादक को सौंपी। उस निर्लोभ भेरी-वादक ने धन-वैभव

को ठोकर मारकर अत्यन्त निष्ठा के साथ उस भेरी की रक्षा की। उससे प्रसन्न होकर श्री कृष्ण ने बहुत वर्षों के बाद उसे अखूट धन देकर बिदा कर दिया।

इस दृष्टान्त में देव के स्थान पर तीर्थंकर, कृष्ण के स्थान पर आचार्य, भेरी के स्थान पर जिनवाणी और भेरीवादक के स्थान पर शिष्य समझना चाहिए।

जिस प्रकार देव ने कृष्ण को भेरी दी, उसी प्रकार तीर्थंकर, जिनवाणी प्रकट करके उसे गणधरादि आचार्यों को देते हैं। जैसे कृष्ण ने प्राप्त भेरी, भेरीवादक को दी, वैसे ही गणधरादि आचार्य, अपने शिष्यों को जिनवाणी देते हैं। जैसे भेरीवादक, भेरी को बजानेवाला है, वैसे ही शिष्य, अन्य को जिनवाणी सुनाता है। जैसे वह भेरी, सर्व रोग उपद्रव की शामक थी, वैसे ही जिनवाणी भी समस्त कर्म रोग को शमन करनेवाली है।

भेरी का नाश करनेवाले भेरी-वादक के समान कुछ शिष्य, आचार्य से जिनवाणी प्राप्त करके अपने असत्पक्ष की पुष्टि के लिए या स्वार्थ के लिए, मूलसूत्र में ही घटाव बढ़ाव और बदलाव करते हैं। कुछ उसके अर्थ में छिपाव, घुमाव और विपर्यय करते हैं अथवा कुछ शिष्य कहीं कोई सूत्र या अर्थ भूल जाने पर उसे अन्य गीतार्थ से पूछकर पूरा नहीं करते, पर अपनी मति-कल्पना से उसमें नया सूत्रार्थ जोड़ कर पूरा करते हैं। अथवा कुछ शिष्य, जैन सूत्रार्थ में अजैन सूत्रार्थ का सम्मिश्रण कर देते हैं। ऐसे श्रुत के प्रति भक्ति से रहित, श्रुत के शत्रु, श्रुत-दान के अयोग्य हैं। ऐसा करनेवाले स्वयं सम्यक्त्व से भ्रष्ट

होते हैं, दूसरों को सम्यक्त्व आदि से भ्रष्ट करते हैं, दुर्लभ-बोधी बनते हैं और अनन्त संसार बढ़ाते हैं।

इसके विपरीत भेरी की सम्यक् रक्षा करनेवाले, भेरीवादक के समान कुछ शिष्य, असत् मताग्रह और स्वार्थ को एक ओर रखकर, सूत्रार्थ को मान देते हैं, सूत्र और अर्थ को अविच्छिन्न रखते हैं, भूल जाने पर, दूसरे गीतार्थों से पूछकर पूरा करते हैं, अजैन ग्रंथों के मिश्रण से रहित शुद्ध रखते हैं। ऐसे श्रुत के भक्त, श्रुत के मित्र शिष्य, श्रुतज्ञान के योग्य हैं। ऐसे शिष्य सूत्रार्थ की रक्षा करते हैं, वे आगामी भव में सुलभ-बोधी बनते हैं और स्व-पर को कर्म रोग से मुक्त बनाते हैं।

१४ अहीर अहीरन का दृष्टांत

कुछ शिष्य अपना दोष न देखकर दूसरों पर दोष मढ़ने वाले होते हैं। इस विषय में अहीर दम्पति का दृष्टांत है। एक गाँव में एक अहीर रहता था। एक दिन वह बेचने के लिए घी से भरे हुए घड़े, गाड़ी में रखकर, अपनी पत्नी के साथ के नगर में पहुँचा। बाजार में गाड़ी रोककर वह घड़े उतारने लगा। अहीर, गाड़ी में से घड़े उठाकर पत्नी को देने और वह पृथ्वी पर रखने लगी।

इस उठाने रखने में दोनों में से किसी की भूल से, घी का घड़ा नीचे गिरकर फूट गया और घी ढुल गया। घी की इस हानि से दुःखी होकर अहीर, अहीरन् को गालियां देने लगा। जैसे—'हा, कुलटा ! पर पुरुष से विडम्बना की इच्छावाली ! तू

को ठोकर मारकर अत्यन्त निष्ठा के साथ उस भेरी की रक्षा की। उससे प्रसन्न होकर श्री कृष्ण ने बहुत वर्षों के बाद उसे अखूट धन देकर बिदा कर दिया।

इस दृष्टान्त में देव के स्थान पर तीर्थंकर, कृष्ण के स्थान पर आचार्य, भेरी के स्थान पर जिनवाणी और भेरीवादक के स्थान पर शिष्य समझना चाहिए।

जिस प्रकार देव ने कृष्ण को भेरी दी, उसी प्रकार तीर्थंकर, जिनवाणी प्रकट करके उसे गणधरादि आचार्यों को देते हैं। जैसे कृष्ण ने प्राप्त भेरी, भेरीवादक को दी, वैसे ही गणधरादि आचार्य, अपने शिष्यों को जिनवाणी देते हैं। जैसे भेरीवादक, भेरी को बजानेवाला है, वैसे ही शिष्य, अन्य को जिनवाणी सुनाता है। जैसे वह भेरी, सर्व रोग उपद्रव की शामक थी, वैसे ही जिनवाणी भी समस्त कर्म रोग को शमन करनेवाली है।

भेरी का नाश करनेवाले भेरी-वादक के समान कुछ शिष्य, आचार्य से जिनवाणी प्राप्त करके अपने असतपक्ष की पुष्टि के लिए या स्वार्थ के लिए, मूलसूत्र में ही घटाव बढ़ाव और बदलाव करते हैं। कुछ उसके अर्थ में छिपाव, घुमाव और विपर्यय करते हैं अथवा कुछ शिष्य कहीं कोई सूत्र या अर्थ भूल जाने पर उसे अन्य गीतार्थ से पूछकर पूरा नहीं करते, पर अपनी मति-कल्पना से उसमें नया सूत्रार्थ जोड़ कर पूरा करते हैं। अथवा कुछ शिष्य, जैन सूत्रार्थ में अजैन सूत्रार्थ का सम्मिश्रण कर देते हैं। ऐसे श्रुत के प्रति भक्ति से रहित, श्रुत के शत्रु, श्रुत-दान के अयोग्य हैं। ऐसा करनेवाले स्वयं सम्यक्त्व से भ्रष्ट

लिया। उनकी गाड़ी और बैल छीन लिए। उनके पास पहनने के वस्त्र भी नहीं रहने दिये। इस प्रकार वे महान् दुःखी हुए।

कुछ शिष्य भी इसी प्रकार के होते हैं। कभी आचार्य दो अथवा अधिक शिष्यों के बीच कोई भूल बताते हैं, तो वे अपना दोष स्वीकार नहीं करते, परन्तु एक दूसरे के सिर मढ़ना आरंभ कर देते हैं। पहला कहता है—'भंते ! मैं तो इसको शुद्ध सिखा रहा हूं, पर यही अशुद्ध बोल रहा है।' तो दूसरा कहता है कि 'नहीं, भन्ते ! मैं तो यह सिखाता है, वैसा ही बोलता हूँ, इसलिए मेरा दोष नहीं है, यह खुद अशुद्ध सिखा रहा है, अतएव इसी का दोष है।'

कुछ शिष्य तो आचार्य पर भी दोष मढ़ने लग जाते हैं। एक शिष्य, एक बार व्याख्यान में कोई विपरीत व्याख्या कर गया। आचार्य ने उससे कहा—'यह यों नहीं, यों है,' तब शिष्य बोला—'उस समय तो आपने मुझे ऐसा ही सिखाया था और अब सुधार का कह रहे हो, सो उसी समय आपको ठीक सिखाना था'। आचार्य ने कहा—'मुनि ! मुझे याद है कि मैंने शुद्ध सिखाया, पर तुम स्मृति दोष या अनुपयोग से ऐसा कह रहे हो।' आचार्य की बात सुनते ही शिष्य उद्धत होकर बोला—'मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि आपने मुझे ऐसा ही सिखाया था। क्या मेरे कान मुझे धोखा दे सकते हैं ? अब आप यों सचाई से बदलकर मुझे भरे व्याख्यान में क्यों अपमानित कर रहे हैं ?' आचार्य अवसर को प्रतिकूल देखकर मौन होगये।

कुछ शिष्य ऐसे होते हैं—जो अपनी भूल हो, तब तो

स्वीकार कर लेते हैं, परंतु यदि शिक्षादाता से ही भूल हो गई हो और शिक्षादाता आचार्य, अपनी भूल ध्यान में न आने से शिष्य को कुछ कहने लगें, तो वे थोड़ा भी सहन नहीं करते और आचार्य को ही 'आचार्यत्व कैसे निभाना चाहिए'-इसकी शिक्षा देना आरंभ कर देते हैं। ऐसे शिष्य, श्रुतदान के अपात्र हैं। ज्ञान.स्वदोष-दर्शन, सहिष्णुता, विनय आदि गुणों की उत्पत्ति के लिए दिया जाता है। यदि ज्ञान की प्राप्ति से ये गुण उत्पन्न नहीं होकर दोष बढ़ते हों, तो ज्ञान देना, सन्निपातवाले को दूध मिश्री देने के समान अहितकारी होजाता है। ऐसे शिष्य, ज्ञान और चारित्र के भागी नहीं बनते।

कुछ शिष्य, अपना दोष देखनेवाले अहीर अहीरन के समान होते हैं। पूर्वोक्त गाँव में दूसरे अहीर दम्पति रहते थे। वे भी नगरमें घी बेंचने के लिए गये। उनके हाथ से भी घड़ा गिरकर फूट जाने पर अहीर कहने लगा-'अहो! मैं कितना असावधान हूँ कि घड़े को उचित रीति से नहीं दे सका।' तब अहीरन ने कहा- 'नहीं, नाथ! असावधानी तो मेरी है कि मैंने ही उचित रीति से घड़ा नहीं पकड़ा।' यों उन दोनों ने घड़ा फूटने में अपनी अपनी भूल स्वीकार की और गिरे हुए घी को जितना बचा सकते थे-बचाया और अपना काम प्रारंभ कर दिया। इससे उन्हें अच्छी आय हुई। संध्याकाल वे दोनों अन्य अहीरों के साथ सकुशल अपने घर लौट गये और सुखी हुए।

ऐसे ही कुछ शिष्य होते हैं जो अपनी अपनी भूल स्वीकार करते हैं, या आचार्य श्री के द्वारा भूल होने पर भी विनय का

पालन करते हैं–जैसे आचार्यश्री कहे कि 'शिष्य! उस समय मैंने अनुपयोग से ऐसी व्याख्या कर दी थी, परन्तु अब तुम ऐसा ध्यान रखना', तो वे कहते हैं कि–'आप भगवंत ने तो ठीक ही कहा होगा, परन्तु मति-दोष से मेरी ही भूल हुई होगी।' अथवा आचार्य श्री कभी क्रोध के उदय से शिष्य में भूल न होते हुए भी भूल बतावें कि–'तुम्हें ऐसा नहीं, पर ऐसा कहना चाहिए,' तो वे आचार्य के पूर्व वाक्य-अंश को न पकड़ पर पिछले वाक्यांश को ही ग्रहण करके कहते हैं कि–'हाँ भगवन्! ऐसा ही कहना चाहिए। मैं भविष्य में ऐसा ही कहने का उपयोग रखूंगा।' ऐसे विनीत शिष्य ज्ञानदान के भाजन हैं। ये ही श्रुत-समुद्र के पारगामी बन सकते हैं और चारित्र के वास्तविक धनी बन सकते हैं।

जिज्ञासु इन दृष्टान्तों पर गहरा विचार करें और अपनी पात्रता एवं अपात्रता का निर्णय करें। यदि अपात्रता है, तो उसे दूर करें, या पात्रता में न्यूनता है, तो न्यूनता को दूर करें व पूर्ण पात्र बनकर ज्ञान के पूर्ण भागी बनें।

जिनकी अपात्रता दूर हो सकती है, उसे दूर करने का आचार्य श्री प्रयास करते हैं। यदि पात्रता में कमी होती है, तो उसे दूर करने का प्रयास करते हैं और पात्रानुसार ज्ञान देते हैं।

एक एक शिष्य की अपेक्षा, योग्य अयोग्य शिष्य विभाग प्ररूपणा समाप्त हुई।

—:❀:—

परिषद् लक्षण

अब सूत्रकार सामान्यतः परिषदा के तीन प्रकार बताते हैं–

सा समासओ तिविहा पण्णत्ता तं जहा–१ जाणिया २ अजाणिया ३ दुव्वियड्ढा ।

वह (परिषद्) संक्षेप से तीन प्रकार की कही गई है। यथा–१ ज्ञायिका परिषद् = जिनमत और गुण-दोष की जान परिषद्। २ अज्ञायिका परिषद्=जिनमत और गुणदोष की अजान परिषद। ३ दुर्विदग्ध परिषद् = पण्डितमन्य परिषद्। जिस प्रकार कोई रोटी आधी कच्ची और आधी जली होती है, उसी प्रकार जिनमें कुछ तो ज्ञान की कमी होती है और कुछ विकृत ज्ञान होता है, तिस पर भी जो अपने आपको पूरा पण्डित माने फिरते हैं, उन्हें 'दुर्विदग्ध'–पण्डितमन्य कहते हैं।

अब क्रमशः इन तीनों परिषदों के लक्षण बतलाते हैं–

१ जाणिया जहा–

खीरमिव जहा हंसा, जे घुट्टंति इह गुरुगुणसमिद्धा।
दोसे य विवज्जंती, तं जाणसु जाणियं परिसं ।५२।

पहली जानकार परिषद् के लक्षण इस प्रकार हैं–जिस प्रकार जातिवान् श्रेष्ठ हंस, जल मिश्रित दूध में से, मात्र दूध ग्रहण करता है और जल को त्याग देता है, उसी प्रकार आचार्य आदि के सद्गुणों को जीवन में ग्रहण कर, गुण समृद्ध बनती है और दोषों का त्याग करती है, उसे–'जानकर परिषद्' समझना चाहिए।

भावार्थ—जो जैन धर्म मान्य षड् द्रव्य, नव तत्व आदि के जानकार हैं, उस पर श्रद्धा रखते हैं, सद्गुण और दुर्गण के पारखी हैं, परन्तु दूसरों के मात्र सद्गुणों की प्रशंसा करते हैं, और जीवन में उतारते हैं, किन्तु दुर्गुणों की अनावश्यक, निरर्थक निन्दा नहीं करते, न जीवन में दुर्गुणों को स्थान देते हैं, वे जानकार परिषद् में आते हैं। ऐसे लोगों को समझाना अत्यन्त सुगम होता है। इन्हें 'पात्र परिषद्' के अन्तर्गत समझना चाहिए।

२ अजाणिया जहा—

जा होइ पगइमहुरा, मियछावयसीहकुक्कुडयभूआ।
रयणमिव असंठविया, अजाणिया सा भवे परिसा ।५३।

दूसरी अजानकार परिषद् के लक्षण इस प्रकार हैं—जो प्रकृति से मधुर हो = अन्यमति, नास्तिक या अनार्य होकर भी स्वभाव से सरल एवं नम्र हो, मृग के बच्चे, सिंह के बच्चे, या कुकड़े के बच्चे के समान हों = जैनधर्म से अजान हो, असंस्थापित = असंस्कृत, अघटित रत्न की भाँति जिसके गुण अब तक छुपे पड़े हों, वह 'अजानकार परिषद्' होती है।

भावार्थ—चाहे व्यक्ति अन्यमत का या नास्तिक हो, पर यदि वह सरल अन्तःकरणवाला हो, नम्र हो, सत्य मत के सामने आने पर अपने असत् मत का आग्रह करनेवाला नहीं हो, सत्य का समादर करनेवाला हो, तो उसे समझाना सरल है। इसी प्रकार यदि कोई शिकारी, कसाई आदि अनार्य, पापाचरण करने वाले हों, पर वे भी स्वभाव से सरल हों, तो उन्हें समझाना सरल है।

अथवा जो मृग के बच्चे के समान पीछे बहक सकते हैं, परन्तु अब तक किसी के बहकावे में नहीं आये हैं, ऐसे जैनकुल के मन्दबुद्धि बच्चों को भी समझाना सरल है।

अथवा जो कुकड़े के बच्चे या सिंह के बच्चे के समान पीछे युद्ध-धर्मी और क्रूर बन सकते हैं, पर अब तक पापमति और पापाचारी नहीं बने हैं, ऐसे अन्यमति के या नास्तिकों के या नीच जाति के बालकों को, बाल्य अवस्था के रहते हुए अच्छे संस्कार देना सरल है।

अथवा जैसे अघटित रत्न में गुण छुपे रहते हैं और ज्यों ही उन्हें घर्षण और संस्कार मिलता है, उनके गुण प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार जिस बालक में बुद्धि आदि छुपी पड़ी है, जिसे केवल थोड़े से शिक्षण और मार्ग दर्शन की आवश्यकता है, वह मिलते ही जो जानकार बन सकता हो, उसे समझाना सरल है।

अथवा प्रौढ़ होकर भी जिन्हें जिनधर्म श्रवण का योग नहीं मिलने से जिनकी बुद्धि अभी सत्य प्राप्त नहीं कर सकी हैं, उन्हें भी समझाना सरल है।

ऐसे सभी प्राणी 'अजान परिषद्' के अन्तर्गत हैं। जानकार परिषद् की अपेक्षा इन्हें समझाने में विलम्ब और प्रयत्न लगता है, पर ये समझ जाते हैं। अतः ये भी पात्र परिषद् हैं।

३ दुव्वियड्ढा जहा—

न य कत्थइ निम्माओ; न य पुच्छइ परिभवस्स दोसेणं।
वत्थिव्व वायपुण्णो, फुट्टइ गामिल्लय वियड्ढो।५४।

तीसरी दुर्विदग्ध परिषद् के लक्षण इस प्रकार हैं–

जो न स्वयं किसी विषय या शास्त्र में विद्वत्ता रखते हैं, न परिभव दोष से किसी से कुछ पूछते हैं (= हार या लघुता के भय से किसी विद्वान से ज्ञान ग्रहण नहीं करते हैं) परन्तु जैसे वायु से भरी मसक, केवल दिखने मात्र को फूली हुई होती है, उसमें वस्तुतः कोई ठोस पदार्थ नहीं होता, उसी प्रकार जो किसी ठोस ज्ञान के बिना ही, वायु के समान कुछ दो चार पद, गाथाएँ, युक्तियाँ, उदाहरण आदि को सुनकर अपने आपको महापण्डित मानकर फूले फिरते हैं, ऐसे ग्रामीण दुर्विदग्धों (=लाल बुझक्कड़ों) के झुण्ड को 'दुर्विदग्ध परिषद्' समझना चाहिए। ऐसे लोगों को यदि समझाना प्रारंभ किया जाय, तो ये लोग उपदेशक के ही आगे आगे, शीघ्र शीघ्र विषयपूर्ति करने का प्रयास करते हैं और कहते हैं--'बस ! बस ! यह विषय तो हम स्वयं भलीभाँति जानते हैं' ऐसे लोगों को समझाना कठिन है। ये लोग अपात्र परिषद् हैं।

अब सूत्रकार प्रत्येक ज्ञान का वर्णन करने से पहले ज्ञान के भेद बतलाते हैं–

ज्ञान के भेद

णाणं पंचविहं पण्णत्तं तं जहा–१ आभिणिबोहियणाणं २ सुयणाणं ३ ओहिणाणं ४ मणपज्जवणाणं ५ केवलणाणं ॥१॥

अर्थ–ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है। यथा–१ आभिनिबोधिक ज्ञान २ श्रुत ज्ञान ३ अवधि ज्ञान ४ मनःपर्यय ज्ञान

और ५ केवलज्ञान ।

विवेचन–ज्ञान की परिभाषा–१ द्रव्य विशेष, गुण विशेष, या पर्याय विशेष को जानना–'ज्ञान' है ।

२ अथवा जिससे द्रव्य विशेष, गुण विशेष, या पर्याय विशेष जाना जाय, वह 'ज्ञान' है ।

३ अथवा जिसमें द्रव्य विशेष, गुण विशेष, या पर्याय विशेष जाना जाय, वह 'ज्ञान' है ।

पहली परिभाषा 'पर्याय' नय से, दूसरी परिभाषा 'गुण' नय से और तीसरी परिभाषा 'द्रव्य' नय से है ।

'जानना' यह 'उपयोग रूप' ज्ञान है । २ जिससे जाना जाता है, वह 'लब्धि रूप' ज्ञान है । तथा ३ जिसमें जाना जाता है, वह उपयोगरूप ज्ञान और लब्धि रूप ज्ञान का आधार 'जीव द्रव्य' है ।

१ आभिनिबोधिक ज्ञान–द्रव्य इन्द्रिय और द्रव्य मन के निमित्त से, नियतरूप से रूपी और अरूपी द्रव्यों को जानना 'आभिनिबोधिक' ज्ञान है ।

२ श्रुत ज्ञान–द्रव्य इन्द्रिय और द्रव्य मन के निमित्त से शब्द या अर्थ को (रूपी अरूपी पदार्थ को) मति ज्ञान से ग्रहण कर या स्मरण कर, उसमें जो परस्पर वाच्य वाचक सम्बन्ध रहा हुआ है, उसकी पर्यालोचना पूर्वक, शब्दोल्लेख सहित, शब्द व अर्थ को (रूपी अरूपी पदार्थ को) जानना–'श्रुतज्ञान' है ।

सामान्य तया गुरु के शब्द सुनने से या ग्रंथ पढ़ने से या

उनमें उपयोग लगाने से जो ज्ञान होता है, उसे–'श्रुतज्ञान' कहते हैं।

३ अवधि ज्ञान–द्रव्य इन्द्रिय और द्रव्य मन के निमित्त के बिना केवल आत्मा से, रूपी पुद्गल द्रव्य को जानना–'अवधि ज्ञान' है।

४ मनःपर्याय ज्ञान–द्रव्य इन्द्रिय और द्रव्य मन के निमित्त के बिना ही केवल आत्मा से, रूपी द्रव्य मन में परिणत पुद्गल द्रव्य को जानना–'मनःपर्याय' ज्ञान है।

५ केवल ज्ञान–द्रव्य इन्द्रिय और द्रव्य मन के निमित्त के बिना ही केवल आत्मा से, रूपी अरूपी द्रव्यों को सम्पूर्णतया जानना–'केवल ज्ञान' है।

३ भेदका कारण–जैसे सूर्य के प्रकाश में स्वभाव से ही भेद नहीं है। वह जब शरद् ऋतु में मेघ से सर्वथा मुक्त होता है, तब समान रूप से सर्वत्र सब वस्तुओं को प्रकाशित करता है। परन्तु जब उस पर मेघ रूप आवरण आजाता है, तब उसका प्रकाश ढँक जाता है, किन्तु सर्वथा नहीं ढँकता। मन्द प्रकाश अवश्य रहता है। वह मन्द प्रकाश भी घर में एक सा प्रवेश नहीं करता, यदि द्वार खुले हों, तो उस द्वार से जो प्रकाश प्रवेश करता है, वह भिन्न प्रकार का होता है। यदि खिड़की खुली हो, तो उस खिड़की से जो प्रकाश प्रवेश करता है, वह भिन्न प्रकार का होता है। जाली से जो प्रकाश प्रवेश करता है, वह भिन्न प्रकार का होता है और कपड़े की यवनिका से जो प्रकाश प्रवेश करता है, वह भिन्न प्रकार का होता है। क्योंकि

१ द्वार २ खिड़की ३ जाली और ४ पर्दा, सूर्य के उस मन्द प्रकाश के इन आवरणों में और इन आवरणों में रहे सूर्य-प्रकाश के मार्गों में भिन्नता है। इस प्रकार प्रकाश के आवरणों में और उन आवरणों में रहे छिद्रों के भेद के कारण से, सूर्य के उस मन्द प्रकाश में भी वैभाविक भेद बन जाते हैं।

वैसे ही आत्मा के ज्ञान में स्वभाव से कोई भेद नहीं है। जब आत्मा, ज्ञानावरण से सर्वथा रहित हो जाती है, तब वह समान रूप से सर्व क्षेत्र में रहे हुए सभी पदार्थों को जानती है। उसका यह ज्ञान 'केवलज्ञान' कहलाता है। किन्तु उसके ऊपर केवलज्ञानावरण कर्म आ जाता है, इससे उसका केवलज्ञान ढँक जाता है। परन्तु ज्ञान सर्वथा नहीं ढँकता। मन्द ज्ञान अवश्य रहता है। वह मन्द ज्ञान भी एकसा नहीं होता। मति ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जो मतिज्ञान रूप आत्मा में मन्द ज्ञान प्रकट होता है, वह भिन्न प्रकार का होता है। श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जो श्रुत ज्ञान रूप आत्मा में मन्द ज्ञान प्रकट होता है, वह भिन्न प्रकार का होता है। अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जो अवधिज्ञानरूप आत्मा में मन्द ज्ञान प्रकट होता है, वह भिन्न प्रकार का होता है। तथा मनःपर्याय ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जो मनःपर्यव ज्ञान रूप आत्मा में मन्द ज्ञान प्रकट होता है, वह भिन्न प्रकार का होता है। क्योंकि १ मतिज्ञानावरण २ श्रुतज्ञानावरण ३ अवधिज्ञानावरण और ४ मनःपर्याय ज्ञानावरण, इन चारों के उस मन्द ज्ञान के आवरणों में

और इन चारों आवरणों के क्षयोपशमों में भिन्नता है। इस प्रकार मन्द ज्ञान के इन चारों आवरणों में और उन आवरणों के क्षयोपशमों में भेद के कारण ज्ञान के शेष चार भेद वैभाविक बनते हैं।

इस प्रकार ज्ञान के पाँच भेद बनने का कारण आवरण का अभाव, आवरणों की विचित्रता और क्षयोपशम की विचित्रता है।

४ क्रम का कारण—१ जो मतिज्ञान का स्वामी है, वही श्रुतज्ञान का भी स्वामी है, २ मति ज्ञान भी इन्द्रिय और मन के निमित्त से होता है और श्रुत ज्ञान भी इन्द्रिय और मन के निमित्त से होता है, ३ मति ज्ञान से भी छहों द्रव्य जाने जाते हैं और श्रुत ज्ञान से भी छहों द्रव्य जाने जाते हैं, ४ मति ज्ञान भी परोक्ष है और श्रुत ज्ञान भी परोक्ष है। इस प्रकार १ स्वामी, २ निमित्त, ३ विषय, ४ परोक्षत्व आदि की समानता के कारण मति और श्रुत साथ में रखे गये हैं।

मति ज्ञान, श्रुत पूर्वक नहीं होता। इस कारण इसे प्रथम स्थान दिया गया है। किन्तु श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है। इस कारण इसे दूसरा स्थान दिया गया है।

१ मति श्रुत ज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति भी ६६ सागर से कुछ अधिक की है और अवधिज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति भी ६६ सागर से कुछ अधिक है। २ मति-श्रुत ज्ञान भी मिथ्यात्व योग से मति-अज्ञान श्रुत-अज्ञान रूप हो जाता है और अवधि ज्ञान भी मिथ्यात्व उदय से विभंग-ज्ञान हो जाता है, ३ मति

श्रुत ज्ञान भी चारों गति के जीवों को हो सकता है और अवधिज्ञान भी चारों गति के जीवों को हो सकता है, ४ सम्यक्त्व प्राप्ति से जैसे मिथ्यात्वी देव को, मति श्रुत ज्ञान का लाभ होता है, वैसे ही अवधि ज्ञान का भी लाभ होता है, इस प्रकार १ स्थिति, २ विपर्यय, ३ स्वामी और ४ लाभ आदि की समानता के कारण मति-श्रुत ज्ञान के साथ अवधि ज्ञान को तीसरा स्थान प्राप्त हुआ है।

मति-श्रुत ज्ञान, सभी सम्यग्दृष्टियों को होता है, अवधिज्ञान कुछ सम्यग्दृष्टियों को ही होता है। मति-श्रुत ज्ञान परोक्ष है, अवधि ज्ञान प्रत्यक्ष है। इत्यादि कारणों से मति-श्रुत ज्ञान के पश्चात् अवधिज्ञान को स्थान मिला है।

जैसे अवधिज्ञान रूपी द्रव्य को जानता है, वैसे ही मनः-पर्याय ज्ञान भी रूपी द्रव्य को जानता है, इस प्रकार विषय समानता आदि कारणों से अवधिज्ञान के साथ मनःपर्यव ज्ञान रक्खा है।

जैसे मति-श्रुत, छद्मस्थों को होते हैं, वैसे ही अवधि, मनः-पर्यव भी छद्मस्थों को होते हैं। २ जैसे मति-श्रुत ज्ञान क्षायोप-शमिक है, वैसे अवधि, मनःपर्यव भी क्षायोपशमिक है। ३ जैसे मति-श्रुत प्रतिपाति हो सकते हैं, वैसे अवधि और मनःपर्यव भी प्रतिपाति हो सकते हैं। इस प्रकार १ स्वामी, २ क्षयोपशम ३ प्रतिपात आदि की समानता के कारण इन चारों को साथ रक्खा गया है।

मति, श्रुत, अवधिज्ञान चारों गति के जीवों को और अमा-

धुओं को भी हो सकते हैं, परंतु मनःपर्यवज्ञान तो मनुष्य गति के कुछ ऋद्धि सम्पन्न अप्रमत्त संयत जीवों को ही हो सकता है। मतिश्रुत और अवधि–ये तीनों तो अज्ञान रूप भी हो सकते हैं, परंतु मनःपर्याय ज्ञान, ज्ञानरूप ही होता है। इत्यादि कारणों से मतिश्रुत और अवधि के वाद मनःपर्याय ज्ञान को स्थान दिया गया है।

अवधिज्ञान गुण प्रत्यय और भवप्रत्यय भी होता है, पर मनःपर्यायज्ञान गुणप्रत्यय ही होता हैं, इत्यादि कारणों से अवधिज्ञान के वाद मनःपर्याय ज्ञान रक्खा गया है।

जैसे मनःपर्याय ज्ञान मनुष्य गति के कुछ विशिष्ट अप्रमत्त जीवों को ही हो सकता है, वैसे ही केवलज्ञान भी मनुष्य गति के अप्रमत्त जीवों को ही हो सकता है। जैसे मनःपर्याय ज्ञान का विपर्यय नहीं होता, वैसे केवलज्ञान का भी विपर्यय नहीं होता। इत्यादि कारणों से मनःपर्याय ज्ञान के साथ केवलज्ञान रक्खा गया है।

जैसे अवधि एवं मनःपर्यय प्रत्यक्ष है, वैसे ही केवलज्ञान भी प्रत्यक्ष है, इत्यादि कारणों से अवधि और मनःपर्याय के साथ केवलज्ञान रक्खा गया है।

मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्याय ज्ञान क्षायोपशमिक होते हैं, पर केवलज्ञान क्षायिक होता है। मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव ज्ञान, प्रतिपाति भी होते हैं, पर केवलज्ञान नियमेन अप्रतिपाति होता है। मति, श्रुत, अवधि और मनः पर्यव ज्ञान पहले होते हैं और केवलज्ञान सबसे अन्त में होता है।

मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान, असमस्त (अधुरे) पर्याय जानते हैं, किंतु केवलज्ञान तो समस्त पर्यायों को प्रत्यक्ष जानता है। इत्यादि कारणों से केवलज्ञान को सबसे अन्त में उच्च स्थान दिया है।

इन्द्रिय प्रत्यक्ष

अब सूत्रकार इन पाँचों ज्ञानों को संक्षेप में दो भेदों में विभक्त करते हैं;—

तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—१ पच्चक्खं च २ परोक्खं च ॥सूत्र २॥

अर्थ—वह पाँच प्रकार का ज्ञान, संक्षेप से दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—१ प्रत्यक्ष—बिना सहायता जानना—'प्रत्यक्ष' है। २ परोक्ष—सहायता से जानना—'परोक्ष' है।

से किं तं पच्चक्खं ! पच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—१ इंदियपच्चक्खं २ नोइंदियपच्चक्खं च ।सूत्र ३।

अर्थ—प्रश्न—वह प्रत्यक्ष क्या है?

उत्तर—प्रत्यक्ष दो प्रकार का है। यथा—१ इन्द्रिय प्रत्यक्ष और २ नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष।

विवेचन—१ किसी भी अन्य निमित्त की सहायता के बिना स्वतः निजी शक्ति से जानना—'प्रत्यक्ष' कहलाता है।

२ भेद—(अक्ष के दो अर्थ हैं, १ इन्द्रिय और २ अनिन्द्रिय—आत्मा, अतएव) प्रत्यक्ष के दो भेद हैं। वे इस प्रकार हैं—

१ इन्द्रिय प्रत्यक्ष—अन्य की सहायता के बिना स्व इन्द्रिय

से जानना–'इन्द्रिय प्रत्यक्ष' है।

२ अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष–अन्य की सहायता के विना, स्व आत्मा से जानना–'अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष' है।

से किं तं इंदियपच्चक्खं ! इंदियपच्चक्खं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा–१ सोइंदियपच्चक्खं २ चक्खिदियपच्चक्खं ३ घाणिंदियपच्चक्खं ४ जिब्भिदियपच्चक्खं ५ फासिंदियपच्चक्खं। से त्तं इंदियपच्चक्खं ॥सूत्र ४॥

अर्थ–प्रश्न–वह इंद्रिय प्रत्यक्ष क्या है ?

उत्तर–इंद्रिय प्रत्यक्ष के पाँच भेद हैं, १ श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष २ चक्षुरिन्द्रिय प्रत्यक्ष, ३ घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष, ४ जिव्हेन्द्रिय प्रत्यक्ष तथा ५ स्पर्शनेन्द्रिय प्रत्यक्ष। ये इंद्रिय प्रत्यक्ष के भेद हुए।

विवेचन–किसी से सुने बिना, कहीं पढ़े बिना और किसी चिन्ह संकेत आदि से अनुमान किये बिना, अपनी इन्द्रिय से पदार्थ विशेष को जानना–'इन्द्रिय प्रत्यक्ष' है।

जैसे–पर्वत की गुफा में रही अग्नि को अपनी आँख से देखना–इन्द्रिय प्रत्यक्ष है। यदि किसी ने कहा कि–'पर्वत में अग्नि है' और अग्नि को जाना, तो यह ज्ञान सुनने से उत्पन्न हुआ, अतः प्रत्यक्ष नहीं है, परोक्ष है। अथवा किसी स्थान पर पढ़ा कि 'पर्वत की गुफा में आग लग गई', इस प्रकार अग्नि को जाना, तो यह ज्ञान पढ़ने से हुआ है, अतएव प्रत्यक्ष नहीं है-परोक्ष है। अथवा पर्वत में धूंआ उठ रहा था, उसे देखकर अनुमान हुआ कि–'धूआं अग्नि के होने पर ही होता है। यहाँ धूआं है, अतएव यहाँ अग्नि होनी चाहिए'। इस प्रकार यदि

अग्नि को जाना, तो वह ज्ञान अनुमान से हुआ है। अतः प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष है।

भेद—इंद्रिय प्रत्यक्ष के पाँच भेद हैं। वे इस प्रकार हैं—
१ श्रोत्र इंद्रिय प्रत्यक्ष—अपने कान से सुनकर शब्द जानना।
२ चक्षु इंद्रिय प्रत्यक्ष—अपनी आँख से देखकर रूप जानना।
३ घ्राण इंद्रिय प्रत्यक्ष—अपनी नाक से सूँघकर गन्ध जानना।
४ जिव्हा इंद्रिय प्रत्यक्ष—अपनी जीभ से चखकर रस जानना।
५ स्पर्शन इंद्रिय प्रत्यक्ष—अपनी स्पर्शन इंद्रिय से छूकर स्पर्श जानना।

अपेक्षा—शरीर में जो श्रोत्र आदि पाँच द्रव्य इंद्रियाँ दिखाई देती हैं, जिनकी सहायता से आत्मा शब्द आदि का ज्ञान करती है, परमार्थ से—वास्तव में वे इंद्रियाँ जीव की अपनी नहीं है, परन्तु पर हैं, क्योंकि वे जीव से विरुद्ध अजीव पुद्गल द्रव्यों से निर्मित हैं। अतएव आत्मा जो इन द्रव्य इंद्रियों की सहायता से शब्दादि को जानता है, वह परमार्थ से प्रत्यक्ष नहीं है—स्वतः जन्य ज्ञान नहीं है। परन्तु व्यवहार में कर्म संयोग के कारण आत्मा के साथ सम्बद्ध श्रोत्रादि इंद्रियाँ, 'पर' होते हुए भी 'स्व' मानी जाती है। अतएव उनकी सहायता से होनेवाला ज्ञान, व्यवहार में 'प्रत्यक्ष' माना जाता है। उस व्यवहार नय का ज्ञान करने के लिए शास्त्रकार ने यहाँ इंद्रियजन्य ज्ञान को 'प्रत्यक्ष' कह दिया है। आगे परोक्ष वर्णन में परमार्थ-नय का ज्ञान कराते हुए शास्त्रकार इन्द्रियजन्य ज्ञान को 'परोक्ष' बतलाएँगे।

विशेष–श्रोत्र आदि इंद्रियों के दो प्रकार हैं–१ द्रव्य इंद्रिय और २ भाव इंद्रिय।

१ द्रव्य इंद्रिय के दो भेद हैं–१ निर्वृत्ति-द्रव्य-इंद्रिय और २ उपकरण-द्रव्य-इन्द्रिय। शुभ नाम-कर्म के द्वारा निर्मित पुद्गल द्रव्य की कर्ण-पर्पटी आदि बाह्य और कर्णपट आदि आभ्यन्तर पौद्गलिक रचना विशेष को 'निर्वृत्ति-द्रव्य-इन्द्रिय' कहते हैं। तथा शुभ नाम कर्म के द्वारा निर्मित पुद्गल द्रव्य की कर्णपट आदि आभ्यन्तर पौद्गलिक रचना विशेष, निहित दर्पण के समान अत्यन्त स्वच्छ, वज्र के समान अत्यन्त सारभूत और खड्ग धार के समान अत्यन्त शक्तिशाली पुद्गल स्कंध विशेष को–"उपकरण-द्रव्य-इंद्रिय" कहते हैं। इनके नष्ट हो जाने पर भाव इन्द्रिय अपने विषय को जान नहीं सकती।

२ भाव इंद्रिय के दो भेद हैं–१ लब्धि भाव इंद्रिय और २ उपयोग भाव इंद्रिय। मति-श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से प्रकट, उपकरण-द्रव्य-इंद्रिय की सहायता से, विषय को ग्रहण कर जानने वाली आत्मा की ज्ञान शक्ति विशेष को 'लब्धि भाव इंद्रिय' कहते हैं। तथा २ मति-श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से प्रकट, उपकरण द्रव्य इंद्रिय की सहायता से विषय को ग्रहण कर जाननेवाली आत्मा की ज्ञान शक्ति विशेष के व्यापार को–'उपयोग भाव इंद्रिय' कहते है। आत्मा की मन्द विकसित चेतना की अवस्था विशेष ही भाव इंद्रिय है।

अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष

से किं तं नोइंदियपच्चक्खं ? नोइंदियपच्चक्खं

तिविहं पण्णत्तं, तं जहा—१ ओहिनाणपच्चक्खं २ मण-पज्जवनाणपच्चक्खं ३ केवलनाणपच्चक्खं ॥५॥

प्रश्न—अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष क्या है ?

उत्तर—अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं—१ अवधिज्ञान प्रत्यक्ष २ मन.पर्यवज्ञान प्रत्यक्ष और ३ केवलज्ञान प्रत्यक्ष ।

विवेचन—किसी से सुने बिना, कहीं पढ़े बिना, किसी चिन्ह संकेत आदि से अनुमान किये बिना और यहाँ तक की अपनी इंद्रियों की सहायता के बिना ही मात्र आत्मा से पदार्थ विशेष को जानना 'अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष' है ।

जैसे सूर्य उदय को मात्र आत्मा से जानना कि सूर्य उदय हो गया है, अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष है । यदि किसी से सुना कि 'सूर्य उदय हो गया' अथवा कहीं पढ़ा कि—'सूर्य उदय हो गया है' और उससे सूर्योदय जाना, तो वह 'परोक्ष' है । अथवा सूर्य की किरणों को देखकर उसके अनुमान से सूर्योदय को जाना, तो वह भी परोक्ष है । यहाँ तक कि अपनी आँखों से सूर्योदय को जानना भी परोक्ष है । परन्तु मात्र आत्मा से सूर्योदय जाना गया, तो वही पारमार्थिक प्रत्यक्ष है ।

अपेक्षा—परमार्थतः प्रत्येक की अपनी आत्मा ही अपनी है, शेष सब परायी वस्तुएँ हैं । अतएव अपनी आत्मा से होनेवाला ज्ञान ही स्वतःजन्य ज्ञान है और वही परमार्थ से प्रत्यक्ष है—बिना सहायता से होने वाला ज्ञान है ।

अब जिज्ञासु, अवधिज्ञान के स्वरूप को विस्तार से जानने के लिए पूछता है;—

अवधिज्ञान

से किं तं ओहिनाणपच्चक्खं ? ओहिनाणपच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–१ भवपच्चइयं च २ खाओवसमियं च ॥६॥

प्रश्न–वह अवधिज्ञान प्रत्यक्ष क्या है ?

उत्तर–अवधिज्ञान प्रत्यक्ष के दो भेद हैं। यथा–१ भवप्रत्ययिक और २ क्षायोपशमिक ।

विवेचन–अवधि का अर्थ–'मर्यादा' है । अतएव जो मर्यादित अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान है, वह 'अवधिज्ञान' है ।

लोक में छह द्रव्य हैं–१ धर्म २ अधर्म ३ आकाश ४ जीव ५ पुद्गल और ६ काल । इसमें पुद्गल रूपी है और वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श से युक्त है । शेष पाँच द्रव्य अरूपी–वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श से रहित हैं । अवधिज्ञान इन छहों द्रव्यों में मात्र रूपी पुद्गल द्रव्य को ही जानता है । यह अवधिज्ञान की अवधि है–मर्यादा है ।

अथवा–अवधिज्ञान से अमुक परिमाण में काल जानने पर, अमुक परिमाणवाला क्षेत्र, अमुक परिमाण वाले द्रव्य और अमुक परिमाणवाली पर्यायें ही जानी जा सकती हैं । यह अवधिज्ञान की अवधि है ।

अब सूत्रकार, शिष्य की जिज्ञासा की पूर्ति के लिए अवधिज्ञान के विषय में तीन बातें बतायेंगे । १ अवधिज्ञान किन्हें होता है, २ अवधिज्ञान के कितने भेद हैं और ३ अवधिज्ञान से कितने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को जाना जाता है, इसे

क्रमशः १ 'स्वामी द्वार' २ 'भेद द्वार' और ३ 'विषय द्वार' कहते हैं। इसके पश्चात् सूत्रकार, अवधिज्ञान के सम्बन्ध में कुछ परिशेष उपयोगी बातें भी बतायेंगे। उसे '४ चूलिका द्वार' कहते हैं।

अवधिज्ञान के दो भेद हैं। यथा—१ भव-प्रत्यय-जन्म के निमित्त से होने वाला अवधिज्ञान और २ क्षायोपशमिक-क्षयोपशम के निमित्त से होने वाला अवधिज्ञान।

अब सूत्रकार कौनसा अवधिज्ञान किसे होता है ? यह बताते हैं।

से किं तं भवपच्चइयं ? भवपच्चइयं दुण्हं, तं जहा—देवाण य नेरइयाण य ॥७॥

प्रश्न—वह भव-प्रत्यय अवधिज्ञान क्या है ?

उत्तर—भव-प्रत्ययिक, देव और नारक, इन दो को होता है।

विवेचन—'भव' जन्म को कहते हैं, तथा 'प्रत्यय' कारण को कहते हैं। जो अवधिज्ञान, जन्म के कारण उत्पन्न हो, उसे 'भव-प्रत्यय' अवधिज्ञान कहते हैं।

अपेक्षा—अवधिज्ञान जो उत्पन्न होता है, वह परमार्थ से अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के कारण ही उत्पन्न होता है, भव के कारण नहीं। परन्तु जैसे पक्षियों को आकाश में उड़ने की शक्ति, पक्षी-जन्म में अवश्य प्राप्त होती है, वैसे ही देवों को देव-भव में और नारकों को नारक-भव में अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम अवश्य होता ही है। इसलिए देवों को और नारकों जो अवधिज्ञान या अज्ञान (विभंग ज्ञान)

उत्पन्न होता है उसे उपचार नय से 'भवप्रत्यय' कहते हैं।

से किं तं खाओवसमियं ? खाओवसमियं दुण्हं, तं जहा–मणुसाण य पंचेंदियतिरिक्खजोणियाण य।

प्रश्न–वह क्षायोपशमिक अवधिज्ञान क्या है ?

उत्तर–क्षायोपशमिक अवधिज्ञान, मनुष्य और तिर्यञ्च योनि के पञ्चेन्द्रिय–इन दो को होता है।

विवेचन–'क्षय' का अर्थ 'नाश' है, 'उपशम का अर्थ दबना है, तथा 'प्रत्यय' कारण को कहते हैं। अतएव जो अवधिज्ञान, अपने को ढँकनेवाले अवधिज्ञानावरणीय कर्म-दलिकों के क्षय तथा उपशम के कारण उत्पन्न होता है, उसे 'क्षायोपशमिक'–क्षयोपशम प्रत्यय, अवधिज्ञान कहते हैं।

स्वामी–क्षायोपशमिक अवधिज्ञान–१ मनुष्यों को–संख्येय वर्ष की आयुष्यवाले, कर्म-भूमि के कुछ गर्भज मनुष्य, मनुष्य-णियों और नपुंसकों को और २ पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों को–पर्याप्त संख्येय वर्ष की आयुष्यवाले कर्म-भूमि के कुछ गर्भज तिर्यञ्च योनि के पुरुषों को, स्त्रियों को और नपुंसकों को होता है।

अपेक्षा–देवों और नैरयिकों को होनेवाला भवप्रत्यय अवधिज्ञान तथा मनुष्यों और तिर्यञ्चों को होने वाला क्षयोप-शम प्रत्ययं अवधिज्ञान, दोनों परमार्थ में क्षायोपशमिक ही है। अतएव दोनों एक समान हैं। परन्तु देवों और नारकों को अवधिज्ञान अवश्य होता ही है, किंतु मनुष्यों और तिर्यञ्चों को अवश्य नहीं होता। इस कारण देवों और नारकों के भव-

प्रत्यय अवधिज्ञान से मनुष्यों और तिर्यंचों का अवधिज्ञान या अज्ञान भिन्न माना गया है।

अब सूत्रकार स्वयं 'क्षायोपशमिक' अवधिज्ञान की उत्पत्ति का कारण बतलाते हैं।

को हेऊ खाओवसमियं ? खाओवसमियं तयावरणिज्जाणं कम्माणं उदिण्णाणं खएणं अणुदिण्णाणं उवसमेणं ओहिनाणं समुपज्जइ ॥सू० ८॥

अर्थ–प्रश्न–क्षायोपशमिक अवधिज्ञान की उत्पत्ति का हेतु क्या है ?

उत्तर–अवधिज्ञान को ढँकनेवाले तदावरणीय (–अवधिज्ञानावरणीय) कर्म, जो उदय में आये हुए हैं–उदय आवलिका में प्रविष्ट हो चुके हैं, उनके क्षय से तथा जो उदय में नहीं आये हैं–उदय आवलिका में प्रविष्ट नहीं हुए हैं, उनके उपशम से–विपाक उदय की रुकावट से, क्षायोपशमिक अवधि ज्ञान उत्पन्न होता है।

विवेचन–उदयावलिका–एक मुहूर्त (४८ मिनिट) के, १, ६७, ७७, २१६ वें भाग को, 'आवलिका' कहते हैं, तथा वर्त्तमान उदय समय से आरंभ करके आगामी एक आवलिका काल को 'उदयावलिका' कहते हैं।

विशेष–अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के समय अवधिज्ञानावरणीय कर्म के सभी दलिकों का–प्रदेशों का सर्वथा क्षयोपशम नहीं होता, पर कुछ दलिकों का क्षयोपशम होता है और कुछ दलिकों का मन्द विपाकोदय होता है।

जैसे अवधिज्ञान, अपने आवरणीय कर्म के क्षयोपशम से होता है, वैसे ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्याय ज्ञान भी अपने अपने आवरणीय कर्मों के क्षयोपशम से होते हैं, यह समझ लेना चाहिए।

अब सूत्रकार स्वामी द्वार समाप्ति के पूर्व, अवधिज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम कब होता है, यह बताते हैं।

अहवा गुणपडिवण्णस्स अणगारस्स ओहिनाणं समुपज्जइ, तं समासओ छव्विहं पण्णत्तं, तंजहा--आणुगामियं, अणाणुगामियं, वड्ढमाणयं, हीयमाणयं, पडिवाइयं, अपडिवाइयं ॥९॥

अर्थ—अथवा कषायों की मन्दता आदि गुण सम्पन्न अनगार को अवधिज्ञान उत्पन्न होता है। वह अवधिज्ञान सक्षेप से छह प्रकार का कहा गया है। यथा—१ आनुगामिक, २ अनानुगामिक, ३ हीयमान, ४ वर्द्धमान, ५ प्रतिपाति और ६ अप्रतिपाति।

विवेचन—१ गुण रहित अविरत सम्यग्दृष्टि को अवधिज्ञान उत्पन्न होता है, अथवा २ गुण-प्रतिपन्न देशविरत श्रावक को अवधिज्ञान उत्पन्न होता है अथवा ३ गुण-प्रतिपन्न सर्व-विरत अनगार को अवधिज्ञान उत्पन्न होता है।

यहाँ ज्ञानगुण, दर्शन गुण और चारित्रगुण में से चारित्रगुण को 'गुण' कहा गया है।

चारित्रगुण के दो प्रकार हैं—१ देश चारित्र गुण—श्रावक धर्म और २ सर्व चारित्र गुण—साधुधर्म। चौथे गुणस्थान वाला

अविरत सम्यग्दृष्टि जीव, चारित्र गुण से रहित होता है। पांचवें गुणस्थानवाला देशविरत श्रावक, देशचारित्रगुण प्रतिपन्न होता है और छठे आदि गुणस्थानवाला सर्वविरत साधु, सर्व चारित्र गुण प्रतिपन्न होता है।

अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम, विशिष्ट प्रकार के चारित्रगुण को धारण करने पर उसके निमित्त से ही होता है, ऐसी एकान्त बात नहीं है। चारित्र गुण धारण किये बिना भी तथाविध शुभ अध्यवसाय के आने पर, उसी के निमित्त से भी अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम हो सकता है और चारित्र गुण स्वीकार करने पर तथाविध प्रशस्त अध्यवसाय के आने पर, उसके निमित्त से भी अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम हो सकता है।

विशिष्ट गुण प्रतिपत्ति के पश्चात् भी अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता ही है, ऐसा एकान्त नहीं हैं। अनन्त सिद्ध ऐसे हैं, जिन्होंने संसार अवस्था में सातवें आदि गुणस्थानों पर चढ़ते हुए भी, अवधिज्ञान को पाये बिना ही सीधे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया है।

दृष्टांत–जैसे सूर्य पर आये हुए बादल, तेज वायु के चलने पर ही दूर होते हों, ऐमी एकान्त बात नहीं है। कभी विस्रसा परिणाम से–अन्य प्रयोग के बिना ही, सूर्य पर से बादल दूर हो जाते हैं और कभी मन्द वायु के चलने से भी दूर होते हैं और कभी तेज वायु के चलने से भी दूर होते हैं।

इसी प्रकार अवधिज्ञान रूपी प्रकाशवाली इस आत्मा पर

अवधिज्ञानरूपी प्रकाश को ढँकनेवाले, अवधिज्ञानावरणीय रूपी बादल, मिथ्यात्व आदि कारण से मँडरा गये हैं, वे चारित्रगुण रूपी वायु के बिना तथाविध शुभ अध्यवसाय से भी दूर हो जाते हैं और चारित्र गुण प्रतिपन्नता रूपी वायुके बहने से भी तथाविध प्रशस्त अध्यवसाय से दूर होते हैं।

जैसे अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम, गुण प्रतिपन्नता और गुणप्रतिपन्नता के बिना-दोनों प्रकार से होता है और उससे अवधिज्ञान उत्पन्न होता है, वैसे ही मतिज्ञानावरणीय कर्म का और श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम भी गुण प्रतिपन्नता से और गुण प्रतिपन्नता के बिना भी-दोनों प्रकार से होता है, तथा मतिज्ञान और श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है।

यहाँ यह समझ लेना भी श्रेयस्कर होगा कि-उत्कृष्ट या उत्कृष्ट के निकट के अवधिज्ञान, श्रुतज्ञान और मतिज्ञान, जिन से उत्पन्न होते हैं-ऐसे अवधिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय और मतिज्ञानावरणीय कर्म का तीव्रतर क्षयोपशम तो सर्व चारित्र गुण पालनेवाले अनगार को ही होते हैं, चारित्र गुण रहित अविरत सम्यग्दृष्टि को या देश चारित्र गुण सम्पन्न श्रावक को उत्पन्न नहीं होते।

इस प्रकार अवधिज्ञान का पहला स्वामी द्वार' समाप्त हुआ।

२ भेद द्वार-अब सूत्रकार 'अवधिज्ञान के कितने भेद हैं?' यह बतलानेवाला अवधिज्ञान का दूसरा 'भेद-द्वार' आरंभ करते हैं।

१ आनुगामिक = साथ चलनेवाला।
२ अनानुगामिक = साथ नहीं चलनेवाला।
३ वर्द्धमान = (पूर्व की अपेक्षा) बढ़ता हुआ।
४ हीयमान = (पूर्व की अपेक्षा) घटता हुआ।
५ प्रतिपाति = (एक ही क्षण में) गिरने वाला।
६ अप्रतिपाति = नहीं गिरने वाला।

शंका—अवधिज्ञान के आनुगामिक और अनानुगामिक, इन दो भेदों में ही शेष वर्द्धमान आदि चारों भेद समाविष्ट किये जा सकते हैं, तब उनको पृथक् क्यों कहा गया?

समाधान—समाविष्ट तो किये जा सकते हैं, परन्तु ऐसा करने से अवधिज्ञान के वर्द्धमान आदि शेष चार विशेष भेदों का ज्ञान नहीं हो सकता। महान् पुरुषों के शास्त्रारंभ का प्रयास विशेष ज्ञान कराने के लिए होता है। अतएव शास्त्रकार ने विशेष ज्ञान कराने के लिए वर्द्धमान आदि शेष भेदों को पृथक् भेद के रूप में उपस्थित किया है।

अब सूत्रकार आनुगामिक अवधिज्ञान के उत्तर-भेद प्रभेदों को प्रस्तुत करते हैं।

से किं तं आणुगामियं? आणुगामियं ओहिनाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा—अंतगयं च मज्झगयं च॥

प्रश्न—वह आनुगामिक अवधिज्ञान क्या है?

उत्तर—आनुगामिक के दो भेद हैं—१ अंतगत और २ मध्यगत।

विवेचन—'अनुगम' का अर्थ है—साथ चलना। अतएव जिस

अवधिज्ञान का स्वभाव ऐसा हो कि वह अपने स्वामी को जिस क्षेत्र मे उत्पन्न हुआ है, उससे अन्य क्षेत्र में जाते हुए भी अपने स्वामी के साथ ही जाए। अतएव उसे 'आनुगामिक अवधिज्ञान' कहते हैं।

दृष्टांत–जैसे आँखें, अपने स्वामी के साथ ही जाती है, वैसे ही आनुगामिक अवधिज्ञान भी अपने स्वामी के साथ ही जाता है।

जिस प्रकार आँखों का स्वामी किसी एक क्षेत्र में रहकर भी अपनी आँखों से, जितने द्रव्य आदि देखे जा सकते हैं, उन्हें देख सकता है और उस क्षेत्र से अन्यत्र जाकर भी उतने द्रव्यादि देख सकता है, (क्योंकि आँखें उसके साथ ही रहती हैं) उसी प्रकार आनुगामिक अवधिज्ञान का स्वामी भी, उसे जिस क्षेत्र में अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है, उस क्षेत्र में रहकर भी जितने द्रव्यादि जान सकता है और अन्यत्र जाकर भी उतने द्रव्यादि जान सकता है, क्योंकि आनुगामिक अवधिज्ञान का क्षयोपशम उत्पत्ति क्षेत्र से अन्य क्षेत्र में जाने पर भी विद्यमान रहता है।

भेद–आनुगामिक अवधिज्ञान के दो भेद हैं। यथा;– १ अन्तगत–जिससे एक दिशा के रूपी पदार्थ जाने जायँ, और २ मध्यगत–जिससे सभी दिशा के रूपी पदार्थ जाने जायँ।

अब सूत्रकार अन्तगत अवधिज्ञान के भेद बताते हैं।

से किं तं अंतगयं ? अंतगयं तिविहं पण्णत्तं तं जहा– पुरओ अंतगयं, मग्गओ अंतगयं, पासओ अंतगयं।

प्रश्न–वह अन्गत अवधिज्ञान क्या है ?

उत्तर–अंतगत के तीन भेद हैं ? १ पुरतःअन्तगत २ मार्गतः अन्तगत और ३ पार्श्वतःअन्तगत ।

विवेचन–जिस अवधिज्ञान से किसी एक ही दिशा के रूपी पदार्थ जाने जा सकते हैं, उसे 'अन्तगत अवधिज्ञान' कहते हैं।

संज्ञा हेतु–इस अवधिज्ञान का स्वामी, अपने अवधिज्ञान से जिस दिशा का जितना क्षेत्र प्रकाशित है, उस क्षेत्र के 'अन्त में' 'गत'–रहता है, अतएव इस अवधिज्ञान को 'अन्तगत अवधिज्ञान' कहते हैं।

दृष्टान्त–जिस प्रकार किसी दीपक पर पूरा आवरण लगा दिया हो और फिर एक ही दिशा से उस पर से आवरण हटा दिया हो. तो उस दीपक से एक ही दिशा–क्षेत्र के पदार्थ देखे जा सकेंगे, अन्य दिशा के नहीं। क्योंकि वह अब तक पाँच दिशाओं से आवृत्त है और एक दिशा से ही अनावृत्त बना है। उसी प्रकार अन्तगत अवधिज्ञान से किसी एक ही दिशा के पदार्थ जाने जा सकते हैं, अन्य दिशाओं के पदार्थ नहीं जाने जा सकते। क्योंकि अन्तगत अवधिज्ञान की उत्पत्ति में अवधिज्ञान के आवरक कर्मों का ऐसा ही विचित्र क्षयोपशम होता है; अन्य दिशा के नहीं।

भेद–अन्तगत अवधिज्ञान के तीन भेद इस प्रकार हैं– १ पुरतःअन्तगत–जिससे सामने की एक ही दिशा के रूपी पदार्थ जाने जा सकें। २ मार्गतःअन्तगत–जिससे पीठ पीछे की एक ही दिशा के रूपी पदार्थ जाने जा सके। ३ पार्श्वतः अन्तगत–जिससे दक्षिणी पार्श्व के या वामपार्श्व के एक दिशा के रूपी

पदार्थ जाने जा सके ।

से किं तं पुरओ अंतगयं ? पुरओ अंतगयं–से जहा णामए केइ पुरिसे उक्कं वा चडुलियं वा अलायं वा मणिं वा पईवं वा जोइं वा पुरओ काउं पणुल्लेमाणे पणुल्लेमाणे गच्छेज्जा, से त्तं पुरओ अंतगयं ।

प्रश्न–वह पुरतः अन्तगत अवधिज्ञान क्या है ?

उत्तर–**दृष्टान्त**–जैसे किसी नामवाला कोई पुरुष है, वह अंधकार में कहीं जा रहा है । उस समय यदि वह प्रकाश के लिए उल्का–मशाल, चटुलिका–अग्रभाग से जलती हुई घास की पूली, अलात–अग्रभाग से जलती हुई लकड़ी, प्रकाशमान मणि, प्रदीप, या अग्नि को अपने हाथ में ले और उसे अपने सामने रखकर आगे आगे ही बढ़ाता चले, तो उसे अपने मुंह के सामने की एक ही दिशा के पदार्थ दिखाई देंगे, अन्य दिशा के नहीं । इसी प्रकार पुरतः अन्तगत अवधिज्ञान से मुंह के सामने की एक ही दिशा के पुद्गल पदार्थ जाने जाते हैं, अन्य दिशा के नहीं ।

विवेचन–जिस अवधिज्ञान से अवधिज्ञान का स्वामी अपने मुंह की सामने वाली एक दिशा में रहे हुए जो रूपी द्रव्य हैं, उन्हें ही जान सके, अन्य दिशा में रहे हुए रूपी पदार्थ न जान सके, उसे 'पुरतः अन्तगत अवधिज्ञान' कहते हैं । यह पुरतः अन्तगत है ।

से किं तं मग्गओ अंतगयं ? मग्गओ अंतगयं से

जहा णामए केइ पुरिसे उक्कं वा चडुलियं वा अलायं वा मणिं वा पईवं वा जोइं वा मग्गओ काउं अणुकड्ढेमाणे अणुकड्ढेमाणे गच्छिज्जा, से त्तं मग्गओ अंतगयं।

प्रश्न–वह मार्गतः अन्तगत अवधिज्ञान क्या है ?

उत्तर–जैसे किसी नामवाला कोई पुरुष है। वह अंधकार में कहीं जा रहा है। उस समय यदि वह प्रकाश के लिए उल्का, चटुलिका, अलात, मणि, प्रदीप या अग्नि को अपने हाथ में ले और उसे पीठ के पीछे करके पीछे पीछे खींचता हुआ चले, तो उसे अपनी पीठ पीछे की एक ही दिशा के पदार्थ दिखाई देंगे। इसी प्रकार मार्गतः अन्तगत अवधिज्ञान से पीठ के पीछे की एक ही दिशा के रूपी पुद्गल पदार्थ जाने जाते हैं, अन्य दिशा के नहीं।

विवेचन–जिस अवधिज्ञान से अवधिज्ञानी, अपनी पीठ पीछे की एक दिशा में रहे हुए जो पुद्गल द्रव्य हैं, उन्हें ही जान सके और अन्य दिशा में रहे हुए रूपी पदार्थ नहीं जान सके, उसे 'मार्गतः अन्तगत अवधिज्ञान' कहते हैं। यह मार्गतः अन्तगत अवधिज्ञान है।

से किं तं पासओ अंतगयं ? पासओ अंतगयं से जहा–नामए केइ पुरिसे उक्कं वा चडुलियं वा अलायं वा मणिं वा पईवं वा जोइं वा पासओ काउं परिकड्ढेमाणे परिकड्ढेमाणे गच्छिज्जा से त्तं पासओ अंतगयं। से त्तं अंतगयं।

प्रश्न–वह पार्श्वत: अन्तगत अवधिज्ञान क्या है ?

उत्तर–जैसे किसी नामवाला कोई पुरुष है। वह अंधकार में कहीं जा रहा है। उस समय यदि वह प्रकाश के लिए उल्का, चटुलिका, अलात, मणि, प्रदीप या अग्नि को अपने हाथ में ले और उसे दक्षिणीपार्श्व या वामपार्श्व में रखकर साथ लेता चले, तो उसे दक्षिणी पार्श्व या वामपार्श्व की एक ही दिशा के पदार्थ दिखाई देंगे, अन्य दिशा के नहीं। इसी प्रकार पार्श्वत: अन्तगत अवधिज्ञान से, दक्षिणपार्श्व या वामपार्श्व की एक ही दिशा के रूपी पदार्थ जाने जाते हैं, अन्य दिशा के नहीं।

विवेचन–जिस अवधिज्ञान से अवधिज्ञानी, अपने दक्षिण पार्श्व की–दाहिनी बगल की, या वामपार्श्व की–बायीं बगल की दिशा में रहे हुए रूपी द्रव्य को ही जान सके, अन्य दिशा में रहे हुए रूपी पदार्थ नहीं जान सके, उसे 'पार्श्वत: अन्तगत अवधिज्ञान' कहते हैं।

विशेष–जैसे अन्तगत अवधिज्ञान के पुरत: अन्तगत आदि भेद हैं, वैसे ही 'ऊर्ध्व अन्तगत' तथा 'अधो अन्तगत'–ये भेद भी हैं। उन्हें उपलक्षण से समझ लेने चाहिए। उनके अर्थ आदि इस प्रकार है–

जिस अवधिज्ञान से अवधिज्ञान का स्वामी, अपने मस्तक के ऊपरवाली एक ही दिशा में रहे हुए जो पुद्गल द्रव्य है, उन्हें ही जान सके, अन्य दिशा में रहे हुए रूपी पुद्गल नहीं जान सके, उसे 'ऊर्ध्व अन्तगत' अवधिज्ञान कहते हैं। जैसे कोई अन्धकार में जाता हुआ पुरुष, बैटरी के मुंह को ऊपरी दिशा

है, तथा पार्श्वतः अन्तगत अवधिज्ञान से अवधिज्ञानी, पार्श्व (बगल) के ही संख्यात या असंख्यात योजन रूपी पदार्थ जानता देखता है। परन्तु मध्यगत अवधिज्ञान से अवधिज्ञानी, सभी दिशाओं के संख्यात या असंख्यात योजन के रूपी पदार्थ जानता देखता है। यह दोनों में अन्तर है।

विशेष—परन्तु दोनों में सर्वथा अन्तर हो—ऐसी बात नहीं। जैसे तीनों प्रकार के अन्तगत अवधिज्ञान से, एक दिशा के संख्यात योजन क्षेत्र में रहे रूपी पदार्थ जाने जाते हैं, वैसे ही मध्यगत अवधिज्ञान से भी सभी दिशाओं के मात्र संख्यात योजन क्षेत्र में रहे हुए रूपी पदार्थ जाने जा सकें। तथा जैसे मध्यगत अवधिज्ञान ऐसा भी है कि जिससे सभी दिशा के असंख्यात योजन क्षेत्र में रहे हुए रूपी पदार्थ जाने जाते हैं, वैसे ही तीनों अन्तगत अवधिज्ञान भी इस प्रकार के हैं कि एक दिशा के असंख्य योजन क्षेत्र में रहे हुए रूपी पदार्थ जाने जा सकें। यह आनुगामिक अवधिज्ञान है।

अब सूत्रकार, अवधिज्ञान के अनानुगामिक नमक भेद का स्वरूप बताते हैं।

अनानुगामिक अवधिज्ञान

से किं तं अणाणुगामियं ओहिनाणं ? अणाणुगामियं ओहिनाणं से जहानामए केइ पुरिसे एगं महंतं जोइट्ठाणं काउं तस्सेव जोइट्ठाणस्स परिपेरंतेहिं परिपेरंतेहिं, परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे तमेव जोईट्ठाणं

पासइ, अन्नत्थगए न जाणइ न पासइ। एवामेव अणाणुगामियं ओहिनाणं जत्थेव समुप्पज्जइ तत्थेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा संबद्धाणि वा असंबद्धाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, अन्नत्थगए ण पासइ। से त्तं अणाणुगामियं ओहिनाणं ॥११॥

प्रश्न—वह अनानुगामिक अवधिज्ञान क्या है ?

उत्तर—जैसे किसी नामवाला कोई पुरुष है। उसने अंधकार में प्रकाश के लिए, किसी एक स्थान पर सैंकड़ों ज्वाला युक्त एक महा अग्नि जलाई। अब यदि वह पुरुष, उस ज्योति स्थान के निकट या कुछ दूर तक चारों ओर चक्कर लगाता है, तो वह उस ज्योति से प्रकाशित क्षेत्र में रहे हुए पदार्थों को देख सकता है, परन्तु उस क्षेत्र से बहुत दूर जाकर वह उस प्रकाशित क्षेत्र के पदार्थों को नहीं देख सकता और उस क्षेत्र से भी अन्य क्षेत्र के पदार्थों को नहीं देख सकता। क्योंकि वह ज्योति स्थिर है, वह पुरुष का अनुगमन नहीं करती। वैसे ही अनानुगामिक अवधिज्ञान जहाँ उत्पन्न हुआ है, वहाँ रहकर या उसके कुछ दूर जाकर ही उसका स्वामी उस अवधिज्ञान से जितना क्षेत्र प्रकाशित है, उस प्रकाशित क्षेत्र के पदार्थों को ही देख सकता है, परन्तु वह अन्यत्र जाकर उस क्षेत्र के पदार्थों को नहीं देख सकता, तथा अन्य क्षेत्र के पदार्थों को भी नहीं देख सकता। क्योंकि अनानुगामिक अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम क्षेत्र सापेक्ष है। अतः वह उस क्षेत्र पर ही बना रहता है, अन्यत्र साथ साथ अनुगमन नहीं करता।

('क्षेत्र सापेक्ष है' यह वचन व्यावहारिक समझना चाहिए। परमार्थ में वह मन्द विशुद्धि जन्य है, अतः साथ में अनुगमन नहीं करता।)

विवेचन-'अन्अनुगम' का अर्थ है-साथ न चलना। अतएव जिस अवधिज्ञान का ऐसा स्वभाव हो कि वह अपने स्वामी को जिस क्षेत्र में उत्पन्न हुआ है, उससे अन्य क्षेत्र में जाते हुए अपने स्वामी के साथ न जाये, उसे 'अनानुगामिक अवधि-ज्ञान' कहते हैं।

विषय-जैसे अन्तगत और मध्यगत आनुगामिक अवधिज्ञान से अवधिज्ञानी संख्येय या असंख्येय योजन क्षेत्र में रहे रूपी पदार्थों को जान सकते हैं, वैसे ही अनानुगामिक अवधिज्ञान से भी अवधि-ज्ञानी अपने क्षेत्र में ही रहकर उस अवधिज्ञान से प्रकाशित संख्येय या असंख्येय योजन क्षेत्र में रहे रूपी पदार्थों को देख सकते हैं।

प्रकार-वह संख्येय या असंख्येय योजन क्षेत्र दो प्रकार से जाना जाता है-१ कोई अवधिज्ञानी क्षयोपशम के अनुसार जहाँ खड़े हैं, वहाँ से संबद्ध-निरन्तर-(बीच में कहीं भी रुका-वट रहित) संख्येय या असंख्येय योजन क्षेत्र जानते हैं, तथा कोई अवधिज्ञानी विचित्र क्षयोपशम के अनुसार जहाँ खड़े हैं, वहाँ से संख्येय या असंख्येय योजन क्षेत्र तो जानते हैं, परन्तु असंबद्ध जानते हैं,-मध्य में कुछ योजन नहीं जानते हैं, फिर संख्येय या असंख्येय योजन जानते हैं। जैसे उक्त ज्योति स्थान से कुछ दूर खड़ा पुरुष, ज्योति से दूरी के कारण जहाँ खड़ा है, वहाँ से कुछ क्षेत्र को छोड़कर उस ज्योति से प्रकाशित

क्षेत्र को देखता है। *

विशेष—जैसे अनानुगामिक अवधिज्ञान में सम्बद्ध असम्बद्ध ये दो भेद बनते हैं, वैसे ही आनुगामिक अवधिज्ञान में भी बनते हैं।

जो अवधिज्ञान, आनुगामिक मध्यगत और सम्बद्ध होता है, उसे 'आभ्यन्तर अवधि' कहते हैं। तथा शेष अवधिज्ञानों को 'बाह्य अवधि' कहते हैं।

जैसे कोई अवधिज्ञान आनुगामिक होता है, तथा कोई अनानुगामिक होता है, वैसे ही कोई अवधिज्ञान आनुगामिक+अनानुगामिक=मिश्र भी होता है।

जिस अवधिज्ञान का स्वभाव ऐसा हो कि वह अपने स्वामी को जिस क्षेत्र में उत्पन्न हुआ है, उससे अन्य क्षेत्र में जाते हुए अपने स्वामी के साथ देशतः जाये और देशतः न जाये, उसे 'आनुगामिक+अनानुगामिक मिश्र अवधिज्ञान' कहते हैं।

दृष्टान्त—जैसे किसी को १०० योजन क्षेत्र जाना जा सके—ऐसा मिश्र अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ, तो वह जिस क्षेत्र में उत्पन्न हुआ है, उस क्षेत्र में रहते हुए तो उसका स्वामी पूरे सौ योजन क्षेत्र को जान सकेगा, परन्तु वहाँ से अन्य क्षेत्र में चले

---

* स्पष्टता—अवधिज्ञान रूपी द्रव्य को ही जानता है, अतएव जहां कहीं 'अवधिज्ञान अमुक क्षेत्र को जानता है, या अमुक काल को जानता है'—ऐसे वाक्य आवें, वहां ऐसा समझना चाहिए कि 'अवधिज्ञान अमुक क्षेत्र में रहे रूपी द्रव्यों को देखता है, तथा रूपी द्रव्यों की अमुक काल में होने वाली पर्यायों को जानता है।' क्योंकि क्षेत्र अर्थात् आकाशास्तिकाय और काल ये दोनों अरूपी द्रव्य हैं।

वर्णन के प्रसंग में जघन्य अवधिक्षेत्र बताते हैं।

जावइआ तिसमयाहारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स।
ओगाहणा जहन्ना ओहीखित्तं जहन्नं तु ॥५५॥

प्रश्न—वह जघन्य अवधिक्षेत्र क्या है?

उत्तर—सूक्ष्म पनक जीव का शरीर, तीन समय आहार लेने पर जितना क्षेत्र अवगाहित करता—रोकता है, उतना क्षेत्र अवधिज्ञान का जघन्य विषय क्षेत्र है।

विवेचन—जघन्य अवधिज्ञानवाला अपने उस जघन्य अवधिज्ञान से जितना क्षेत्र जानता है, उतने क्षेत्र को 'जघन्य अवधिक्षेत्र' कहते हैं।

परिमाण—जघन्य अवधिज्ञानवाला अंगुल का असंख्येय भाग क्षेत्र जानता है।

उपमान—अवधिज्ञान से ज्ञेय वह जघन्य क्षेत्र, उत्पत्ति समय से जिसने तीन समय का आहार ग्रहण किया है, ऐसे सूक्ष्म नामकर्म के उदयवाले सूक्ष्म पनक जीव के शरीर की जितनी अवगाहना होती है, अन्यूनाधिक उतने ही प्रमाणवाला क्षेत्र समझना चाहिए।

इसकी विशेष स्पष्टता इस प्रकार है—एक उत्कृष्ट अवगाहनावाला मत्स्य है। वह सहस्र योजन परिमाणवाला है। वह मत्स्य अपने ही शरीर के बाहर संलग्न प्रदेश में सूक्ष्म पनक शरीरधारी जीव के रूप में तीन समय में उत्पन्न होनेवाला है। वह सूक्ष्म पनक शरीर के उचित आत्मप्रदेश की अवगाहना बनाने के लिए प्रथम समय में अपने मत्स्य शरीर से सम्बद्ध

ऊँचे नीचे आत्म प्रदेशों की सैंकड़ों योजनों की मोटाई का संहरण करता है और अंगुल के असंख्येय भाग मात्र मोटाई वाला, तथा अपने शरीर की जितनी लम्बाई चौड़ाई है, उस परिमाणवाला आत्म प्रदेशों का प्रतर बनाता है। दूसरे समय में तिरछे सैंकड़ों योजनों की चौड़ाईवाले आत्मप्रदेशों का संहरण करता है और अंगुल के असंख्येय भाग मात्र मोटाई चौड़ाईवाली तथा अपने शरीर की जितनी लम्बाई है, उतने परिमाणवाली आत्मप्रदेशों की सूचि बनाता है। तीसरे समय में सैंकड़ो योजनों की लम्बाईवाले आत्मप्रदेशों का संहरण करके शरीर की जिस दिशा में पनक के रूप में उत्पन्न होता है, उस दिशा के अन्त में अंगुल के असंख्यातवें भाग मोटाई चौड़ाई लम्बाईवाला वृत्त बनाता है। फिर चौथे समय के पूर्व, मत्स्य अपने शरीर को छोड़कर पनक रूप में उत्पन्न होता है। वहाँ वह पनकभव की अपेक्षा पहले दूसरे और तीसरे समय में आहार लेकर जितनी बड़ी शरीर अवगाहना बनाता है, उतने ही—न कम न अधिक परिमाणवाला अवधिज्ञान का ज्ञेय सर्व जघन्य क्षेत्र है।

संस्थान—अवधिज्ञान के इस जघन्य क्षेत्र का संस्थान लड्डू के समान सभी दिशाओं से घनवृत्त—पूर्ण गोल समझना चाहिए, क्योंकि पूर्वोक्त पनक जीव का तथा प्रकार का शरीर घनवृत्त होता है।

अन्य ज्ञेय—सर्वजघन्य अवधिज्ञान का स्वामी काल की अपेक्षा अतीत अनागत आवलिका का असंख्यातवाँ भाग जानता है।

द्रव्य की अपेक्षा अनन्त द्रव्य जानता है। वे द्रव्य, नियम से अनन्त प्रदेशी ही होते हैं। वह अप्रदेशी परमाणु, संख्यप्रदेशी, और असंख्यप्रदेशी द्रव्य नहीं जानता।

पुद्गल द्रव्य दो प्रकार के हैं—१ गुरुलघु (—अष्टस्पर्शी) और २ अगुरुलघु (चतुःस्पर्शी) १ औदारिक, २ वैक्रिय, ३ आहारक और ४ तैजस् वर्गणाएँ गुरुलघु हैं। तथा १ भाषा २ मन एवं ३ कार्मण वर्गणा अगुरुलघु हैं। ये सभी वर्गणाएँ क्रम से उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं

जघन्य अवधिज्ञानवाला तैजस् के उत्तरवर्ती, तैजस् के अयोग्य गुरुलघु द्रव्य जानता है। या भाषावर्गणा के पूर्ववर्ती भाषा के अयोग्य अगुरुलघु द्रव्य जानता है।

पर्याय की अपेक्षा जघन्य अवधिज्ञानवाला, प्रत्येक द्रव्य की मात्र चार पर्याय जानता है। अनन्त द्रव्यों की, प्रति द्रव्य चार पर्याय की गणना से सब अनन्त पर्याय जानता है। इति जघन्य अवधि-क्षेत्र प्ररूपणा।

किसी के अवधिज्ञान की वृद्धि, उत्कृष्ट अवधि क्षेत्र तक भी होती है। अतएव अब सूत्रकार वर्द्धमान अवधिज्ञान के स्वरूप वर्णन के प्रसंग में उत्कृष्ट—परम अवधि क्षेत्र बतलाते हैं।

सव्वबहु अगणिजीवा, निरंतरं जत्तियं भरिज्जंसु।
खित्तं सव्वदिसागं परमोही खेत्तनिद्दिट्ठो ॥५६॥

प्रश्न—वह उत्कृष्ट अवधि क्षेत्र क्या है ?

उत्तर—सभी सूक्ष्म बादर अग्निकाय जीवों के कुल आत्म प्रदेश, एक एक कर यदि निरन्तर आकाश प्रदेशों पर रक्खें

जायँ, तो जितना क्षेत्र रुकेगा, उतना ही क्षेत्र अवधिज्ञान का 'उत्कृष्ट विषय क्षेत्र' है।

विवेचन–उत्कृष्ट अवधिज्ञानवाला अपने उस उत्कृष्ट अवधिज्ञान से जितना क्षेत्र जानता है, उतने क्षेत्र को 'उत्कृष्ट अवधि क्षेत्र' कहते हैं।

उत्कृष्ट अवधिज्ञानवाला, समस्तलोक और अलोक में लोक-प्रमाण असंख्य खण्ड क्षेत्र जानता है। "अलोक में, अवधिज्ञान में दृश्य कोई रूपी पदार्थ नहीं है, अतएव 'अवधिज्ञानी अलोक में लोकप्रमाण असंख्य खण्ड क्षेत्र जानता है"–यह कथन सामर्थ्य मात्र की अपेक्षा समझना चाहिए।

उपमान–अग्निकाय के जीव सूक्ष्म और बादर के रूप में अधिक से अधिक जितने उत्पन्न हो सकते हैं, उतने कभी उत्पन्न हुए हों, उस समय यदि असत् कल्पना से उन जीवों को उत्कृष्ट अवधिज्ञानी के शरीर से आरम्भ करके पूर्व दिशा में उनके अपने अपने शरीर परिमित क्षेत्र में उन्हें सूचि (सूई) के आकार स्थापित किये गये हों, फिर वह सूचि जो लोक और अलोक में पूर्व दिशा में असंख्य योजनों तक गयी है, उसे सभी दिशाओं में सब ओर घुमाई गई हो, तो उस सूचि से जितना क्षेत्र स्पृष्ट होगा, उतना क्षेत्र 'उत्कृष्ट अवधि क्षेत्र' है।

संस्थान–अवधिज्ञान के इस उत्कृष्ट क्षेत्र का संस्थान लड्डू के समान सभी दिशाओं में घनवृत्त समझना चाहिए, क्योंकि पूर्वोक्त सूचि से स्पृष्ट क्षेत्र घनवृत्त होता है। विशेष यह है कि ऊपर नीचे में परमावधिज्ञानी के शरीर प्रमाण ऊँचाई

निचाई अधिक है।

अन्य ज्ञेय—सर्व उत्कृष्ट अवधिज्ञानवाला काल की अपेक्षा अतीत अनागत असंख्य अवसर्पिणी और असंख्य उत्सर्पिणी काल को जानता है।

द्रव्य की अपेक्षा अनन्त द्रव्य जानता है। प्रदेश की अपेक्षा अप्रदेशी परमाणु से लेकर अनन्त प्रदेशी सभी प्रकार के द्रव्य जानता है। वर्गणा की अपेक्षा औदारिक वर्गणा से लेकर कार्मण वर्गणा तक के सभी गुरुलघु और अगुरुलघु द्रव्यों को जानता है।

पर्याय की अपेक्षा प्रति द्रव्य असंख्येय पर्याय जानता है। अनन्त द्रव्यों की प्रति द्रव्य असंख्य पर्याय की गणना से सब अनन्त पर्याय जानता है।

फल—उत्कृष्ट अवधिज्ञान के स्वामी, गुणप्रतिपन्न अनगार को नियम से उसी भव में—अन्तर्मुहूर्त मात्र में, केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है। जैसे उषा काल के प्रकाश के पश्चात् सर्व प्रकाशक सूर्य का नियम से उदय हो जाता है। इति उत्कृष्ट अवधिक्षेत्र प्ररूपणा।

अवधिज्ञान की वृद्धि होते होते कितने क्षेत्र का अवधिज्ञान होने पर, कितने भूत भविष्य काल का अवधिज्ञान होता है? इसे अब सूत्रकार वर्द्धमान अवधिज्ञान के स्वरूप वर्णन के प्रसंग में बतलाते हैं।

अंगुलमावलियाणं, भागमसंखिज्ज दोसु संखिज्जा।
अंगुलमावलियंतो, आवलिया अंगुलपुहुत्तं ॥५७॥

१ अंगुल के असंख्येय भाग को जाननेवाला आवलिका के भी असंख्येय भाग को जानता है। २ अंगुल के संख्येय भाग को जाननेवाला आवलिका के भी संख्येय भाग को जानता है। ३ एक प्रमाण अंगुल (भरतजी के अंगुल जितना क्षेत्र) जानने वाला, अन्तरावलिका–एक आवलिका अधूरी जानता है। ४ अंगुल पृथक्त्व (दो से लगाकर नौ अंगुल जाननेवाला, एक आवलिका पूरी जानता है।

हत्थम्मि मुहुत्तंतो, दिवसंतो गाऊयम्मि बोद्धव्वो।
जोयण दिवसपुहुत्तं, पक्खंतो पन्नवीसाओ।५८।

५ एक हाथ (२४ अंगुल) जाननेवाला अन्तर्मूहूर्त (एक अपूर्ण मुहूर्त) जानता है। ६ एक कोस (८, ००० हाथ) जाननेवाला अन्तर्दिवस (एक अपूर्ण दिन) जानता है। ७ एक योजन (चार कोस) जाननेवाला दिवस पृथक्त्व (दो दिन से लगाकर नौ दिन) जानता है। ८ पच्चीस योजन जाननेवाला, अन्तःपक्ष (एक अपूर्ण पखवाड़ा) जानता है।

भरहम्मि अद्धमासो, जम्बुद्दीवम्मि साहिआ मासा।
वासं च मणुयलोए, वासपुहुत्तं च रुयगम्मि।५९।

९ भरत क्षेत्र जाननेवाला, आधामास जनता है। १० जम्बूद्वीप (१ लाख योजन) जाननेवाला, साधिक मास (एक मास से अधिक) जानता है। ११ मनुष्य लोक (४५ लाख योजन) जानने वाला, एक वर्ष जानता है। १२ रूचक द्वीप (पन्द्रहवाँ द्वीप) जानने वाला, वर्षपृथक्त्व–अनेक वर्ष (पाठान्तर से एक सहस्र वर्ष) जानता है।

निचाई अधिक है ।

अन्य ज्ञेय–सर्व उत्कृष्ट अवधिज्ञानवाला काल की अपेक्षा अतीत अनागत असंख्य अवसर्पिणी और असंख्य उत्सर्पिणी काल को जानता है ।

द्रव्य की अपेक्षा अनन्त द्रव्य जानता है । प्रदेश की अपेक्षा अप्रदेशी परमाणु से लेकर अनन्त प्रदेशी सभी प्रकार के द्रव्य जानता है । वर्गणा की अपेक्षा औदारिक वर्गणा से लेकर कार्मण वर्गणा तक के सभी गुरुलघु और अगुरुलघु द्रव्यों को जानता है ।

पर्याय की अपेक्षा प्रति द्रव्य असंख्येय पर्याय जानता है । अनन्त द्रव्यों की प्रति द्रव्य असंख्य पर्याय की गणना से सब अनन्त पर्याय जानता है ।

फल–उत्कृष्ट अवधिज्ञान के स्वामी, गुणप्रतिपन्न अनगार को नियम से उसी भव में–अन्तर्मुहूर्त मात्र में, केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है । जैसे उषा काल के प्रकाश के पश्चात् सर्व प्रकाशक सूर्य का नियम से उदय हो जाता है । इति उत्कृष्ट अवधिक्षेत्र प्ररूपणा ।

अवधिज्ञान की वृद्धि होते होते कितने क्षेत्र का अवधिज्ञान होने पर, कितने भूत भविष्य काल का अवधिज्ञान होता है ? इसे अब सूत्रकार वर्द्धमान अवधिज्ञान के स्वरूप वर्णन के प्रसंग में बतलाते हैं ।

अंगुलमावलियाणं, भागमसंखिज्ज दोसु संखिज्जा ।
अंगुलमावलियंतो, आवलिया अंगुलपुहुत्तं ॥५७॥

१ अंगुल के असंख्येय भाग को जाननेवाला आवलिका के भी असंख्येय भाग को जानता है। २ अंगुल के संख्येय भाग को जाननेवाला आवलिका के भी संख्येय भाग को जानता है। ३ एक प्रमाण अंगुल (भरतजी के अंगुल जितना क्षेत्र) जानने वाला, अन्तरावलिका—एक आवलिका अधूरी जानता है। ४ अंगुल पृथक्त्व (दो से लगाकर नौ अंगुल जाननेवाला, एक आवलिका पूरी जानता है।

हत्थम्मि मुहुत्तंतो, दिवसंतो गाऊयम्मि बोद्धव्वो।
जोयण दिवसपुहुत्तं, पक्खंतो पन्नवीसाओ ।५८।

५ एक हाथ (२४ अंगुल) जाननेवाला अन्तर्मुहूर्त (एक अपूर्ण मुहूर्त) जानता है। ६ एक कोस (८, ००० हाथ) जाननेवाला अन्तर्दिवस (एक अपूर्ण दिन) जानता है। ७ एक योजन (चार कोस) जाननेवाला दिवस पृथक्त्व (दो दिन से लगाकर नौ दिन) जानता है। ८ पच्चीस योजन जाननेवाला, अन्त:पक्ष (एक अपूर्ण पखवाड़ा) जानता है।

भरहम्मि अद्धमासो, जम्बुद्दीवम्मि साहिआ मासा।
वासं च मणुयलोए, वासपुहुतं च रुयगम्मि ।५९।

९ भरत क्षेत्र जाननेवाला, आधामास जनता है। १० जम्बूद्वीप (१ लाख योजन) जाननेवाला, साधिक मास (एक मास से अधिक) जानता है। ११ मनुष्य लोक (४५ लाख योजन) जानने वाला, एक वर्ष जानता है। १२ रूचक द्वीप (पन्द्रहवाँ द्वीप) जानने वाला, वर्षपृथक्त्व—अनेक वर्ष (पाठान्तर से एक सहस्र वर्ष) जानता है।

संखिज्जम्मि उ काले, दीवसमुद्दावि हुंति संखिज्जा।
कालम्मि असंखिज्जे, दीवसमुद्दा उ भइयव्वा।६०।

१३ संख्यात द्वीप समुद्र जाननेवाला कोई संख्यात काल जानता है और कोई असंख्यात काल जानता है। (संख्यातकाल जानने वाला, कम द्वीप समुद्र जानता है और असंख्यात काल जानने वाला अधिक द्वीप समुद्र जानता है।) १४ जो असंख्यात द्वीप समुद्र जानता है, वह नियम से असंख्यातकाल जानता है। (पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग जानता है। और द्रव्य से भाषावर्गणा के अगुरुलघु द्रव्य भी जानता है।)

विशेष—लोक का एक संख्यातवाँ भाग जाननेवाला, पल्योपम का एक संख्यातवाँ भाग जानता है और द्रव्य से मनोवर्गणा के अगुरुलघु द्रव्य भी जानता है। लोक के अनेक संख्यातवें भाग जाननेवाला,पल्योपम के अनेक संख्यातवें भाग जानता है और द्रव्य से कार्मण-वर्गणा के अगुरुलघु द्रव्य भी जानता है। संपूर्ण लोक जाननेवाला देशोन (कुछ कम) पल्योपमकाल जानता है। इति वृद्धि अवधि प्ररूपणा।

अभी यह बताया गया कि 'अवधिज्ञान में इतने क्षेत्र की वृद्धि होने पर इतने काल की वृद्धि होती है,' तो क्या क्षेत्र वृद्धि में काल वृद्धि नियम से होती है अथवा भजना (विकल्प) से होती है? इसी प्रकार काल, द्रव्य और पर्यव वृद्धि में किसकी वृद्धि नियम से होती है और किसकी विकल्प से होती है? इसका समाधान सूत्रकार प्रस्तुत करते हैं।

कालेचउण्हवुड्ढी, कालो भइयव्वु खित्तवुड्ढीए ।
वुड्ढीए दव्वपज्जव, भइयव्वा खित्तकाला उ ।६१।

काल में चारों की वृद्धि होती है, अर्थात् जब अवधिज्ञान में काल विषयक ज्ञान की वृद्धि होती है, तब नियम से–१ काल विषयक २ क्षेत्र विषयक ३ द्रव्य विषयक और ४ पर्यव विषयक ज्ञान की वृद्धि होती है ।

क्षेत्र वृद्धि में काल वृद्धि भजनीय है, अर्थात् जब अवधि-ज्ञान में क्षेत्र विषयक ज्ञान की वृद्धि होती है, तब काल विषयक ज्ञान की वृद्धि कभी होती है, और कभी नहीं होती, पर द्रव्य विषयक ज्ञान की और पर्यव विषयक ज्ञान की नियम से वृद्धि होती है ।

द्रव्य वृद्धि में क्षेत्र और काल की वृद्धि भजनीय है । अर्थात् जब अवधिज्ञान में द्रव्य विषयक ज्ञान की वृद्धि होती है, तब क्षेत्र विषयक ज्ञान की वृद्धि कभी होती है, और कभी नहीं होती । यदि क्षेत्र विषयक ज्ञान की वृद्धि होती है, तो काल विषयक ज्ञान की वृद्धि कभी होती है और कभी नहीं होती, पर द्रव्य विषयक ज्ञान की वृद्धि में पर्याय विषयक ज्ञान की वृद्धि नियम से होती है ।

पर्यव वृद्धि में भी क्षेत्र और काल वृद्धि भजनीय है । अर्थात् अवधिज्ञान में पर्यव विषयक ज्ञान की वृद्धि होती है, तब द्रव्य विषयक ज्ञान की वृद्धि कभी होती है, कभी नहीं होती । जब होती है, तब क्षेत्र विषयक ज्ञान की वृद्धि कभी होती है, कभी नहीं होती, जब होती है. तब काल विषयक ज्ञान की वृद्धि कभी होती है और कभी नहीं होती ।

अवधिज्ञान की वृद्धि में किसी विषय में ज्ञान की वृद्धि होने पर किसी अन्य विषय में ज्ञान की वृद्धि नियम से क्यों होती है ? और किसी विषय में ज्ञान की वृद्धि भजना से (विकल्प से) क्यों होती है ? अब सूत्रकार इसका कारण बतलाते हैं।

सुहुमो य होइ कालो, तत्तो सुहुमयरं हवइ खित्तं।

अर्थ-काल सूक्ष्म होता है और काल से भी क्षेत्र अधिक सूक्ष्म होता है।

विवेचन-काल से क्षेत्र अधिक (असंख्यगुण) सूक्ष्म होता है। क्षेत्र से भी द्रव्य अधिक (अनंत गुण) सूक्ष्म होता है और द्रव्य से पर्यव अधिक (अनंतगुण) सूक्ष्म होता है।

पर्यव से द्रव्य कम सूक्ष्म होता है। द्रव्य से क्षेत्र कम सूक्ष्म होता है और क्षेत्र से काल कम सूक्ष्म होता है।

काल, क्षेत्र, द्रव्य और भाव-इन चारों में इस प्रकार अगले अगले में अधिक सूक्ष्मता का होना और पिछले पिछले में कम सूक्ष्मता होना, यही अवधिज्ञान की वृद्धि में (किसी विषय के ज्ञान की नियम से वृद्धि होने का और किसी विषय के ज्ञान की भजना से वृद्धि होने का) कारण है।

अब सूत्रकार कौन किससे क्यों अधिक सूक्ष्म है ? यह बताते हैं।

अंगुलसेढीमित्ते, ओसप्पिणिओ असंखिज्जा।६२।

अर्थ-'अंगुल श्रेणि मात्र में असंख्य उत्सर्पिणियाँ होती हैं'।

विवेचन-१ काल सबसे सूक्ष्म है। इसका प्रमाण यह है

कि यदि कोई पुरुष, कमल के सौ पत्तों को एक के ऊपर एक रखते हुए जमावे। फिर जिसका अग्रभाग अत्यंत तीक्ष्ण हो, ऐसे किसी शस्त्र के द्वारा कुशलता और बलपूर्वक उन पत्तों को छेदे, तो ऐसा लगेगा कि मानों वे सभी पत्र एक साथ एक समय में ही छिद गये। किंतु वह भ्रान्ति है। यदि विचार करें, तो स्पष्ट होगा कि वे कमल के पत्ते प्रत्येक भिन्न भिन्न काल में छेदे गये। यह तो हमारी बात हुई, यदि केवलियों के ज्ञान की अपेक्षा विचार किया जाय, तो उनमें से एक एक कमल के पत्ते के छिदने में भी असंख्य असंख्य समय लगे हैं। काल का सबसे छोटा विभाग–'समय' इतना सूक्ष्म है।

ऐसे सूक्ष्म काल से भी क्षेत्र अधिक सूक्ष्म है। इसका प्रमाण यह है कि 'एक समय मात्र में जीव या पुद्गल नीचे के लोकान्त से, १४ रज्जु परिमाण लोक क्षेत्र को पार कर ऊपरी लोकान्त में पहुँच जाता है। उस सम्पूर्ण लोकाकाश को एक ओर रखें और केवल उसकी एक अंगुल प्रमाण श्रेणि ही ग्रहण करें, तो उसमें भी इतने आकाश प्रदेश होते हैं कि प्रति समय उनमें से एक एक आकाश प्रदेश का अपहरण किया जाय, तो उन सभी आकाश प्रदेशों को अपहृत होने में असंख्य अवसर्पिणियाँ और असंख्य उत्सर्पिणियाँ बीत जायँगी। इस प्रकार काल के सबसे छोटे विभाग–'समय' से क्षेत्र का सबसे छोटा विभाग –'प्रदेश' इतना अधिक सुक्ष्म होता है।

ऐसे सूक्ष्म क्षेत्र से भी द्रव्य अधिक सूक्ष्म है। इसका प्रमाण यह है कि आकाश के एक एक प्रदेश में भी अनंत अनंत अगुरु-

लघु द्रव्य एक दूसरे को विना बाधा पहुँचाए, एक क्षेत्रावगाही होकर रहते है।

ऐसे सूक्ष्म द्रव्य से भी पर्यव अधिक सूक्ष्म हैं, इसका प्रमाण यह है कि प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक प्रदेश में अनन्त अनन्त पर्यायें हो सकती हैं।

यहां सूक्ष्म का अर्थ-'अवगाहना में छोटा' नहीं है, क्योंकि आकाश का एक प्रदेश, एक परमाणु और एक पर्यव, ये सभी अवगाहना में पूर्ण समान हैं। अवगाहना में कोई भी किसी से छोटा वड़ा नहीं है।

यहां सूक्ष्म का अर्थ है-'व्याघात न पानेवाला और व्याघात न देनेवाला'। एक आकाश प्रदेश में परमाणु से लेकर अनन्त प्रदेशी अनन्त अनन्त द्रव्य परस्पर व्याघात पाये पहुँचाये विना रहते हैं और प्रति परमाणु एवं स्कंध प्रदेश में अनन्त अनन्त पर्यायें परस्पर व्याघात पाये पहुँचाये विना रहती हैं। इति नियम भजना प्ररूपणा समाप्त।

से त्तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं ।१२।

अर्थ-यह वह वर्द्धमान अवधिज्ञान है।

हीयमान अवधिज्ञान

अव सूत्रकार अवधिज्ञान के चौथे भेद हीयमान का स्वरूप वतलाते हैं।

से किं तं हीयमाणयं ओहिनाणं ? हीयमाणयं ओहिनाणं अप्पसत्थेहिं अज्झवसायट्ठाणेहिं वट्टमाणस्स

वड्ढमाणचरित्तस्स संकिलिस्समाणस्स संकिलिस्समाण-चरित्तस्स सव्वओ समंता ओही परिहायइ, से त्तं हीय-माणयं ओहिनाणं ।१३।

प्रश्न–वह हीयमान अवधिज्ञान क्या है ?

उत्तर–अध्यवसायों–विचारों के अप्रशस्त होने पर तथा उनमें मलिनता आते रहने पर एवं पर्यायों की अपेक्षा चारित्र घटता हुआ होने पर तथा उसमें मलिनता आते रहने पर चारों ओर से हानि होती है । यह हीयमान अवधिज्ञान है ।

विवेचन–'हीयमान' का अर्थ है–'घटता हुआ' । अतएव जो अवधिज्ञान पूर्व अवस्था की अपेक्षा वर्त्तमान अवस्था में उत्तरोत्तर हीन हो रहा हो, उसे 'हीयमान अवधिज्ञान' कहते हैं ।

स्वामी–जिसके पूर्व अवस्था की अपेक्षा वर्त्तमान अवस्था में उत्तरोत्तर संक्लिष्ट–अप्रशस्त अध्यवसाय चल रहे हों तथा जिसके अवधिज्ञानावरणीय कर्म की मलिनता बढ़ रही हो, उस अविरत सम्यग्दृष्टि के अवधिज्ञान की हानि होती है ।

अथवा जिसके पूर्व अवस्था की अपेक्षा वर्त्तमान अवस्था में उत्तरोत्तर संक्लिष्ट अध्यवसायवाले चारित्र परिणाम चल रहे हों तथा जिसके चारित्रमोहनीय और अवधिज्ञानावरणीय कर्म में मलिनता बढ़ रही हो, उस सर्व-विरत साधु के, या श्रावक के अवधिज्ञान की हानि होती है ।

संक्लिष्ट अध्यवसाय–कृष्ण, नील और कापोत, इन तीन अशुभ लेश्याओं से रंगे हुए चित्त को 'संक्लिष्ट अध्यवसाय' कहते हैं ।

दृष्टान्त–जैसे इन्धन और वायु को पाकर प्रज्वलित वन्ही

हुई अग्नि की ज्वालाएँ, पीछे इन्धन और वायु की अल्पता से पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर घटती है, वैसे ही प्रशांत अध्यवसाय आदि रूप इन्धन और वायु को पाकर प्रज्वलित हुई अवधि-ज्ञान रूप ज्वालाएँ उत्तरोत्तर संक्लिष्ट अध्यवसाय आदि रूप हुई इन्धन और वायु की अल्पता से, पूर्व अवस्था की अपेक्षा वर्त्तमान अवस्था में उत्तरोत्तर हानि पाती है।

हानि का प्रकार—संक्लिष्ट अध्यवसाय तथा अवधिज्ञाना-वरणीय की मलिनता आदि की न्यूनता अधिकता के अनुसार किसी अवधिज्ञानी का अवधिज्ञान, एक दिशा में ही घटता है, किसी का अनेक दिशा में घटता है और किसी का सभी दिशाओं में, सभी ओर से घटता है।

अथवा किसी का अवधिज्ञान—१ पर्यव के विषय में, २ किसी का पर्यव और द्रव्य के विषय में, ३ किसी का पर्यव, द्रव्य और क्षेत्र के विषय में और ४ किसी का पर्यव, द्रव्य, क्षेत्र और काल—इन चारों के विषय में घटता है।

अवधिज्ञान के हानि क्षेत्र की मर्यादा—जो उत्कृष्ट अवधि-क्षेत्र देखते हैं, उससे उतरते उतरते अलोक का एक भी आकाश प्रदेश तक देखने की शक्ति रखते हैं, उनका अवधिज्ञान कभी भी हीयमान नहीं होता। जो जघन्य अवधिक्षेत्र देखते हैं, उनका अवधिज्ञान भी हीयमान नहीं होता, क्योंकि सर्व जघन्य में हानि हो ही नहीं सकती। इससे मध्य के जो जघन्य अंगुल के असंख्येय भाग से लेकर यावत् लोक तक जानते हैं, उनमें से किसी का अवधिज्ञान हीयमान भी होता है और किसी का हीयमान

नहीं भी होता। लोक तक जाननेवाला अवधिज्ञान घटते घटते जघन्य अवधि-क्षेत्र जाननेवाला तक बन सकता है।

विशेष–जैसे अवधिज्ञान वर्द्धमान भी होता है, हीयमान भी होता है, वैसे ही वर्द्धमान+हीयमान–मिश्र भी होता है, तथा वर्द्धमान–हीयमान–अनुभय भी होता है।

जो अवधिज्ञान वर्द्धमान हो, या हीयमान हो, या मिश्र हो, उसे 'अनवस्थित' अवधिज्ञान कहते हैं। तथा जो अवधिज्ञान न वर्द्धमान हो, न हीयमान हो, न मिश्र हो, उसे 'अवस्थित' अवधिज्ञान कहते हैं।

मिश्र अनवस्थित अवधिज्ञान में एक दिशा का ज्ञान वढ़ता है और अन्य दिशा का ज्ञान घटता है। यह हीयमानक अवधि-ज्ञान है।

प्रतिपाति अवधिज्ञान

अब सूत्रकार अवधिज्ञान के ५ वें भेद प्रतिपाति का स्वरूप वर्णन करते हैं।

से किं तं पडिवाइ ओहिनाणं? पडिवाइ ओहि-नाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं वा, संखिज्जइ-भागं वा बालग्गं वा बालग्गपुहुत्तं वा, लिक्खं वा लिक्खपुहुत्तं वा, जूयं वा जूयपुहुत्तं वा, जवं वा जवपुहुत्तं वा, अंगुलं वा अंगुलपुहुत्तं वा, पायं वा पायपुहुत्तं वा, विहत्थिं वा विहत्थिपुहुत्तं वा, रयणिं वा रयणिपुहुत्तं वा, कुच्छिं वा कुच्छिपुहुत्तं वा, धणुं वा धणुपुहुत्तं वा,

गाउयं वा गाउयपुहुत्तं वा, जोयणं वा जोयणपुहुत्तं वा, जोयणसयं वा जोयणसयपुहुत्तं वा, जोयणसहस्सं वा जोयणसहस्सपुहुत्तं वा, जोयणलक्खं वा जोयणलक्खपुहुत्तं वा [जोयणकोडिं वा जोयणकोडिपुहुत्तं वा, जोयणकोडाकोडिं वा जोयणकोडाकोडिपुहुत्तं वा, जोयणसंखिज्जं वा जोयणसंखिज्जपुहुत्तं वा, जोयण असंखेज्जं वा जोयण-असंखेज्जपुहुत्तं वा] उक्कोसेणं लोगं वा पासित्ताणं पडिवइज्जा। से त्तं पडिवाइ ओहिनाणं।१४।

प्रश्न—वह प्रतिपाति अवधिज्ञान क्या है ?

उत्तर—जघन्य से अंगुल का असंख्यातवाँ भाग (मध्य से) संख्यातवाँ भाग, बालाग्र या बालाग्र पृथक्त्व, लिक्षा—लींख, या लींख पृथक्त्व, जूका—जूँ, या जूका पृथक्त्व, यव—जौ या यव पृथक्त्व, अंगुल या अंगुल पृथक्त्व, पाद—पैर या पाद पृथक्त्व, वितस्ति—बेंत या वितस्ति पृथक्त्व, रत्नि—हाथ या रत्नि पृथक्त्व, कुक्षि—कूँख या कुक्षि पृथक्त्व, धनुष्य या धनुष्य पृथक्त्व, गव्यूत—कोश या गव्यूत पृथक्त्व, योजन या योजन पृथक्त्व, सौ योजन या सौ योजन पृथक्त्व, हजार योजन या हजार योजन पृथक्त्व, (करोड़ योजन या करोड़ योजन पृथक्त्व, करोड़ों-करोड़ योजन या करोड़ों-करोड़ योजन पृथक्त्व, संख्यात योजन या संख्यात योजन पृथक्त्व, असंख्यात योजन या असंख्यात योजन पृथक्त्व, तथा) उत्कृष्ट से सम्पूर्ण लोक को देखकर भी गिर सकता है। यह प्रतिपाति अवधिज्ञान का प्ररूपण हुआ।

विवेचन–'प्रतिपात' का अर्थ है–गिरना। अतएव जो उत्पन्न हुआ अवधिज्ञान, कुछ काल रहकर एक ही समय में सर्वथा नष्ट हो जाय(चला जाय) उसे 'प्रतिपाति अवधिज्ञान' कहते हैं।

दृष्टान्त–जैसे तेलादि सामग्री से युक्त जलता हुआ दीपक, तेल के अभाव से, या प्रतिकूल वायु से, सहसा एक ही क्षण में सर्वथा बुझ जाता है, वैसे ही प्रशस्त अध्यवसाय और अवधि-ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न हुआ अवधिज्ञान, तथा-विध संक्लिष्ट अध्यवसाय और अवधिज्ञानावरणीय कर्म के सर्व-घाति उदय से एक ही क्षण में सहसा सर्वथा नष्ट हो जाता है।

तथाविध संक्लिष्ट अध्यवसाय से–हास्य, भय, विस्मय, लोभ आदि समझने चाहिए (स्थानांग ५) यह 'प्रतिपाति अवधि ज्ञान' है।

अब सूत्रकार अवधिज्ञान के छठे भेद–अप्रतिपाति का स्व-रूप बतलाते हैं।

अप्रतिपाति अवधिज्ञान

से किं तं अपडिवाइ ओहिनाणं? अपडिवाइ ओहिनाणं जेणं अलोगस्स एगमवि आगासपएसं जाणइ पासइ तेण परं अपडिवाइ ओहिनाणं। से त्तं अपडिवाइ ओहिनाणं।१५।

प्रश्न–वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान क्या है?

उत्तर–जिससे अलोक का एक भी आकाश प्रदेश जान देख लेवे (सामर्थ्य प्राप्त होजावे) उसके बाद वह अप्रतिपाति

अवधिज्ञान है। यह अप्रतिपाति अवधिज्ञान का प्ररूपण हुआ।

विवेचन—'अप्रतिपात' का अर्थ है—नहीं गिरना। अतएव जो अवधिज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् केवलज्ञान की उत्पत्ति के एक क्षण पहले तक विद्यमान रहे, उसे 'अप्रतिपाति अवधिज्ञान' कहते हैं। अन्य स्थानों पर—जो अवधिज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् मृत्यु पर्यन्त विद्यमान रहे, उसे 'अप्रतिपाति अवधिज्ञान' कहा है।

अवधिज्ञानी, जिस अवधिज्ञान से अलोक का एक भी आकाश प्रदेश जानता है (जानने का सामर्थ्य रखता है,) वह अवधिज्ञान, नियम से केवलज्ञान की उत्पति के एक समय पूर्व तक विद्यमान रहता है। उससे उपरान्त यावत् उत्कृष्ट अलोक में लोक प्रमाण असंख्य खण्ड ज्ञेय तक जाननेवाले जितने अवधिज्ञान हैं, वे सभी नियम से अप्रतिपाति हैं। लोक या लोक के अन्दर तक के क्षेत्र को जाननेवाले अवधिज्ञानों में कोई प्रतिपाति होता है और कोई अप्रतिपाति भी होता है।

विशेष—जैसे अवधिज्ञान 'प्रतिपाति' भी होता है और अप्रतिपाति भी होता है, वैसे ही प्रतिपाति+अप्रतिपाति—मिश्र भी होता है।

इस मिश्र अवधिज्ञान में पूर्व में जितना ज्ञान था, उसका एक भाग, सर्वथा एक क्षण में नष्ट हो जाता है और एक भाग केवलज्ञान की उत्पत्ति के एक क्षण पूर्व तक विद्यमान रहता है। यह अप्रतिपाति अवधिज्ञान है।

अब सूत्रकार, अवधिज्ञान जघन्य से और उत्कृष्ट से कितने

द्रव्य, कितना क्षेत्र, कितना काल और कितने भाव-पर्यव जानता है, यह बतानेवाला तीसरा विषय द्वार आरम्भ करते हैं।

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा–१ दव्वओ, २ खित्तओ, ३ कालओ, ४ भावओ।

अर्थ–उस अवधिज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का है। वह इस प्रकार है–१ द्रव्य से २ क्षेत्र से ३ काल से और ४ भाव से।

तत्थ दव्वओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अणंताइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं सव्वाइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ।

अर्थ–वहाँ द्रव्य से अवधिज्ञानी, जघन्य से अनन्त रूपी द्रव्यों को जानते-देखते हैं और उत्कृष्ट से सभी रूपी द्रव्यों को जानते-देखते हैं।

विवेचन–जिन अवधिज्ञानियों को जघन्य अवधिज्ञान है, वे अपने जघन्य अवधिज्ञान से अनन्त रूपी द्रव्यों को जानते हैं और अवधिदर्शन से देखते हैं। वे अनन्त द्रव्य, उत्कृष्ट अवधिज्ञान से जितने द्रव्य जाने देखे जाते हैं, उनकी अपेक्षा अनन्तवें भाग मात्र समझना चाहिए।

जिन अवधिज्ञानियों को उत्कृष्ट अवधिज्ञान है, वे अपने उत्कृष्ट अवधिज्ञान से जितने भी रूपी द्रव्य हैं, उन सभी को जानते हैं और अवधिदर्शन से देखते हैं।

विशेष–जो मध्यम अवधिज्ञानी हैं, उनमें जघन्य अवधिज्ञान से जितने द्रव्य जाने जाते हैं उससे कोई १ अनन्तवें भाग अधिक

द्रव्य जानते हैं, कोई २ असंख्यातवें भाग अधिक द्रव्य जानते हैं, कोई ३ संख्यातवें भाग अधिक द्रव्य जानते हैं, कोई ४ संख्यात गुण अधिक द्रव्य जानते हैं, कोई ५ असंख्यात गुण अधिक द्रव्य जानते हैं और कोई ६ अनन्त गुण अधिक द्रव्य जानते हैं। (इस प्रकार छ प्रकार से 'षट् स्थान पतित' जानना कहलाता है।)

शंका-जानने में और देखने में क्या अन्तर है?

समाधान-जानना-'ज्ञान' कहलाता है, तथा देखना-'दर्शन' कहलाता है।

प्रत्येक द्रव्य, गुण और पर्याय में, अन्य द्रव्य गुण और पर्याय से कुछ न कुछ समानता और कुछ न कुछ विशेषता अवश्य रहती है। ज्ञान में विशेषता को जाना जाता है और दर्शन में समानता को देखा जाता है, यह दोनों में अन्तर है।

खित्तओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अंगुलस्स असंखिज्जय भागं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं असंखिज्जाइं अलोगे लोगप्पमाणमित्ताइं खंडाइं जाणइ पासइ।

अर्थ-क्षेत्र से अवधिज्ञानी, जघन्य अंगुल का असंख्येय भाग और उत्कृष्ट से (लोक और) अलोक में लोक प्रमाण असंख्य खण्ड जानते देखते हैं।

विवेचन-जिन अवधिज्ञानियों को जघन्य अवधिज्ञान हैं, वे अपने जघन्य अवधिज्ञान से 'त्रि समय आहारक सूक्ष्म पनक के शरीर तुल्य' अंगुल के असंख्येय भाग क्षेत्र को जानते हैं और जिन अवधिज्ञानियों को उत्कृष्ट अवधिज्ञान है, वे अपने उत्कृष्ट अवधिज्ञान से 'अग्नि-जीव सूचि भ्रमित' क्षेत्र तुल्य, समस्त लोक

और अलोक में लोकप्रमाण असंख्य खण्ड क्षेत्र को जानते हैं।

विशेष–जो मध्यम अवधिज्ञानी है, उनमें जघन्य अवधिज्ञान से जितना क्षेत्र जाना जाता है, उससे कोई एक आकाश प्रदेश अधिक जानते हैं, कोई दो आकाश प्रदेश अधिक जानते हैं, कोई तीन आकाश प्रदेश अधिक जानते हैं। यों एक एक आकाश प्रदेश की निरन्तर वृद्धि से यावत् कोई मध्यम अवधिज्ञानवाले, उत्कृष्ट अवधिज्ञान से जितना क्षेत्र जाना जाता है, उससे एक आकाश प्रदेश कम जानते हैं।

कालओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं आवलियाए असंखिज्जइ भागं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ अईयमणागयं च कालं जाणइ पासइ,

अर्थ–काल से अवधिज्ञानी जघन्य से आवलिका का असंख्यातवाँ भाग जानते देखते हैं और उत्कृष्ट से असंख्य उत्सर्पिणियाँ और अवसर्पिणियाँ बीती हुई और बीतनेवाली जानते हैं देखते हैं।

विवेचन–जिन अवधिज्ञानियों को जघन्य अवधिज्ञान है, वे अपने जघन्य अवधिज्ञान से आवलिका के असंख्यातवें भाग पहले तक 'रूपी द्रव्यों का क्या हुआ और पीछे तक क्या होगा,' मात्र इतना ही प्रत्यक्ष जानते हैं, परंतु जिन अवधिज्ञानियों को उत्कृष्ट अवधिज्ञान है, वे अपने उत्कृष्ट अवधिज्ञान से असंख्य उत्सर्पिणियाँ और असंख्य अवसर्पिणियाँ जो बीत चुकी हैं, उसमें समस्त पुद्गल द्रव्यों का उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य कैसे रहा

और आगे जो असंख्य उत्सर्पिणियाँ और अवसर्पिणियाँ बीतेगी, उसमें समस्त पुद्गल द्रव्यों का उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य कैसा रहेगा—इसे प्रत्यक्ष जानते हैं।

जो मध्यम अवधिज्ञानी हैं, उनमें जघन्य अवधिज्ञान से जितना काल जाना जाता है, उससे कोई एक समय अधिक जानते हैं, कोई दो समय अधिक जानते हैं, कोई तीन समय अधिक जानते हैं, यों एक एक समय की निरंतर वृद्धि से यावत् कोई मध्यम अवधिज्ञानवाले, उत्कृष्ट अवधिज्ञानी जितना काल जानते हैं, उससे एक समय कम काल जानने हैं।

भावओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अणंते भावे जाणइ पासइ, उक्कोसेण वि अणंते भावे जाणइ पासइ। सव्व-भावाणमणंतभागं जाणइ पासइ।

अर्थ—भाव से अवधिज्ञानी जघन्य से अनन्त भाव—अनन्त पर्यव, जानते देखते हैं और उत्कृष्ट से भी अनन्त भाव जानते देखते हैं। पर सर्व भावों के अनन्तवें भाग जानते देखते हैं।

विवेचन—जिन अवधिज्ञानियों को जघन्य अवधिज्ञान है, वे अपने जघन्य अवधिज्ञान के द्वारा प्रत्येक द्रव्य की तो चार चार पर्याय ही जानते हैं, पर अनन्त द्रव्यों को जानते हैं। अतएव प्रति द्रव्य चार पर्याय के परिमाण से अनन्त द्रव्यों की अपेक्षा अनन्त पर्याय जानते हैं। जिन अवधिज्ञानियों को उत्कृष्ट अवधिज्ञान है, वे अपने उत्कृष्ट अवधिज्ञान से भी प्रत्येक द्रव्य की असंख्य पर्यायें ही जानते हैं, पर समस्त अनन्त पुद्गल द्रव्यों को जानते हैं। अतएव प्रति द्रव्य असंख्य पर्याय के परिमाण से

अनन्त द्रव्यों की अपेक्षा अनन्त पर्याय जानते हैं। पुद्गल द्रव्य की जितनी स्व पर्यायें हैं, उनकी अपेक्षा तो वे अनन्तवें भाग जितनी ही पर्यायें जानते हैं, क्योंकि वे प्रत्येक रूपी द्रव्य की समस्त वर्त्तमान अनन्त पर्यायें और त्रैकालिक अनन्त पर्यायें नहीं जानते, मात्र कुछ काल की असंख्येय पर्यायें ही जानते हैं।

विशेष–जो मध्यम अवधिज्ञानी हैं, उनमें जघन्य अवधिज्ञान से जितनी पर्यायें जानी जाती है, उससे कोई १ अनन्तवें भाग अधिक पर्याये जानते हैं, कोई २ असंख्यातवें भाग अधिक पर्यायें जानते हैं, कोई ३ संख्यातवें भाग अधिक पर्यायें जानते हैं, कोई ४ संख्य गुण अधिक पर्यायें जानते हैं, कोई ५ असंख्य गुण अधिक पर्यायें जानते है और कोई ६ अनन्त गुण अधिक पर्यायें जानते हैं।

अब सूत्रकार अवधिज्ञान का चौथा चूलिका द्वार कहते हैं। उसमें अवधिज्ञान के स्वरूप के विषय में अबतक जो कुछ कहा गया, उसका कथन करते हैं।

ओही भवपच्चइओ गुणपच्चइओ य वण्णिओ दुविहो।
तस्स य बहू विगप्पा, दव्वे खित्ते य कालेय।६३।

अर्थ–भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय, यों दो प्रकार के अवधिज्ञान का वर्णन किया गया। अवधिज्ञान के बहुत से विकल्प–भेद, बतलाये गये और द्रव्य, क्षेत्र, काल, एवं भाव बतलाये गये।

विवेचन–१ अवधिज्ञान के प्रथम स्वामी द्वार में अवधिज्ञान के भव-प्रत्यय और गुण-प्रत्यय–क्षायोपशमिक, ये दो भेद बतलाकर उनके स्वामी बतलाये गये।

२ दूसरे भेद द्वार में अवधिज्ञान के आनुगामी, अनानुगामी, वर्द्धमान, हीयमान, प्रतिपाति और अप्रतिपाति—ये छह मूल भेद और अन्तगत, मध्यगत आदि कई उत्तर भेद बतलाये गये।

३ तीसरे विषय द्वार में अवधिज्ञानी, जघन्य से और उत्कृष्ट से कितने द्रव्य, कितना क्षेत्र, कितना काल और कितने भाव जानते हैं'—यह बतलाया गया।

अब सूत्रकार कुछ उक्त का और कुछ अनुक्त संग्रह कर बताते हैं।

नेरइयदेवतित्थंकरा य, ओहिस्सऽबाहिरा हुंति।
पासंति सव्वओ खलु, सेसा देसेण पासंति ॥६४॥
से त्तं ओहिनाणपच्चक्खं ॥१६॥

अर्थ—देव नारक और तीर्थंकर अवधि से अबाह्य होते हैं। वे सभी ओर देखते हैं, शेष देशतः देखते हैं। यह अवधिज्ञान प्रत्यक्ष है।

विवेचन—देव और नारकों को अवधिज्ञान अवश्य होता है अथवा उन्हें जन्म से ही अवधिज्ञान होता है अर्थात् भव-प्रत्यय अवधिज्ञान होता है। छद्मस्थ तीर्थंकरों को भी जन्म से ही अवधिज्ञान होता है। क्योंकि तीर्थंकर को भव के साथ अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नियम से होता है।

अथवा देव और नारकों को मृत्यु पर्यन्त अवधिज्ञान रहता है, अर्थात् उन्हें आमरण अप्रतिपाति अवधिज्ञान होता है। तीर्थंकरों को भी अप्रतिपाति अवधिज्ञान होता है, क्योंकि वह केवलज्ञान की उत्पत्ति के एक क्षण पूर्व तक निश्चित रूप से

विद्यमान होता है।

अथवा देव नारक और तीर्थंकरों को सम्बद्ध अवधिज्ञान होता है अर्थात् वे जिस क्षेत्र में रहते हैं, वहाँ से निरन्तर अपने अवधिज्ञान से जितना क्षेत्र जाना जा सकता है, उतना क्षेत्र जानते हैं।

अथवा देव नारक और तीर्थङ्करों को आनुगामिक अवधिज्ञान होता है।

देव नारक और तीर्थङ्कर सभी दिशाओं में जानते हैं। उन्हें मध्यगत अवधिज्ञान होता है।

शेष देश से देखते हैं, अर्थात् शेष मनुष्य और तिर्यञ्चों में किसी को अवधिज्ञान होता है और किसी को नहीं होता। मनुष्यों में किसी को गर्भ से अवधिज्ञान हो सकता है, किसी को पीछे पर्याप्त होने पर उत्पन्न हो सकता है। तिर्यञ्चों को नियम से पर्याप्त होने के पश्चात् ही अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है।

मनुष्यों में और तिर्यञ्चों में प्रतिपाति अप्रतिपाति दोनों प्रकार का अवधिज्ञान हो सकता है। मनुष्यों में आमरण अप्रतिपाति और आकेवल अप्रतिपाति—दोनों प्रकार का अप्रतिपाति अवधिज्ञान हो सकता है, परन्तु तिर्यञ्चों में आमरण अप्रतिपाति ही हो सकता है।

मनुष्यों और तिर्यञ्चों में सम्बद्ध और असम्बद्ध दोनों प्रकार का अवधिज्ञान हो सकता है। आनुगामिक और अनानुगामिक, इन दो प्रकारों का भी हो सकता है। अन्तगत और मध्यगत—इन दोनों प्रकार का भी हो सकता है।

२ दूसरे भेद द्वार में अवधिज्ञान के आनुगामी, अनानुगामी, वर्द्धमान, हीयमान, प्रतिपाति और अप्रतिपाति–ये छह मूल भेद और अन्तगत, मध्यगत आदि कई उत्तर भेद बतलाये गये।

३ तीसरे विषय द्वार में अवधिज्ञानी, जघन्य से और उत्कृष्ट से कितने द्रव्य, कितना क्षेत्र, कितना काल और कितने भाव जानते हैं'–यह बतलाया गया।

अब सूत्रकार कुछ उक्त का और कुछ अनुक्त संग्रह कर बताते हैं।

नेरइयदेवतित्थंकरा य, ओहिस्सऽबाहिरा हुंति।
पासंति सव्वओ खलु, सेसा देसेण पासंति ॥६४॥
से त्तं ओहिनाणपच्चक्खं ॥१६॥

अर्थ–देव नारक और तीर्थंकर अवधि से अबाह्य होते हैं। वे सभी ओर देखते हैं, शेष देशतः देखते हैं। यह अवधिज्ञान प्रत्यक्ष है।

विवेचन–देव और नारकों को अवधिज्ञान अवश्य होता है अथवा उन्हें जन्म से ही अवधिज्ञान होता है अर्थात् भव-प्रत्यय अवधिज्ञान होता है। छद्मस्थ तीर्थंकरों को भी जन्म से ही अवधिज्ञान होता है। क्योंकि तीर्थंकर को भव के साथ अवधि-ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नियम से होता है।

अथवा देव और नारकों को मृत्यु पर्यन्त अवधिज्ञान रहता है, अर्थात् उन्हें आमरण अप्रतिपाति अवधिज्ञान होता है। तीर्थंकरों को भी अप्रतिपाति अवधिज्ञान होता है, क्योंकि वह केवलज्ञान की उत्पत्ति के एक क्षण पूर्व तक निश्चित रूप से

विद्यमान होता है।

अथवा देव नारक और तीर्थंकरों को सम्बद्ध अवधिज्ञान होता है अर्थात् वे जिस क्षेत्र में रहते हैं, वहाँ से निरन्तर अपने अवधिज्ञान से जितना क्षेत्र जाना जा सकता है, उतना क्षेत्र जानते हैं।

अथवा देव नारक और तीर्थङ्करों को आनुगामिक अवधिज्ञान होता है।

देव नारक और तीर्थङ्कर सभी दिशाओं में जानते हैं। उन्हें मध्यगत अवधिज्ञान होता है।

शेष देश से देखते हैं, अर्थात् शेष मनुष्य और तिर्यञ्चों में किसी को अवधिज्ञान होता है और किसी को नहीं होता। मनुष्यों में किसी को गर्भ से अवधिज्ञान हो सकता है, किसी को पीछे पर्याप्त होने पर उत्पन्न हो सकता है। तिर्यञ्चों को नियम से पर्याप्त होने के पश्चात् ही अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है।

मनुष्यों में और तिर्यञ्चों में प्रतिपाति अप्रतिपाति दोनों प्रकार का अवधिज्ञान हो सकता है। मनुष्यों में आमरण अप्रतिपाति और आकेवल अप्रतिपाति—दोनों प्रकार का अप्रतिपाति अवधिज्ञान हो सकता है, परन्तु तिर्यञ्चों में आमरण अप्रतिपाति ही हो सकता है।

मनुष्यों और तिर्यञ्चों में सम्बद्ध और असम्बद्ध दोनों प्रकार का अवधिज्ञान हो सकता है। आनुगामिक और अनानुगामिक, इन दो प्रकारों का भी हो सकता है। अन्तगत और मध्यगत—इन दोनों प्रकार का भी हो सकता है।

विशेष—देव और नारक, अवस्थित अवधिज्ञानवाले होते हैं। तीर्थङ्कर अवस्थित या वर्द्धमान अवधिज्ञानवाले होते हैं। मनुष्य और तिर्यञ्च अवस्थित वर्द्धमान, हीयमान या तदुभय अवधिज्ञानवाले भी हो सकते हैं (प्रज्ञापना ३३)

१ द्रव्य की अपेक्षा—नारक और तिर्यञ्च १ औदारिक २ वैक्रिय ३ आहारक और ४ तैजस् वर्गणा के गुरुलघु पुद्गल ही देख सकते हैं। मनुष्य और देव अभी कहे हुए ये चार तथा ५ भाषा ६ मन एवं ७ कार्मण वर्गणा के अगुरुलघु पुद्गल भी देख सकते हैं। मनुष्य, परमाणु संख्य प्रदेशी, असंख्य प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी पुद्गल देख सकते हैं। शेष नारक, तिर्यञ्च और देव, अनन्त प्रदेशी पुद्गल ही देख सकते हैं।

२ क्षेत्र की अपेक्षा—नारक, जघन्य आधा कोस उत्कृष्ट चार कोस देखते हैं। तिर्यञ्च जघन्य, जघन्य अवधिक्षेत्र और उत्कृष्ट असंख्य द्वीप समुद्र देख सकते हैं। मनुष्य जघन्य, 'जघन्य अवधि-क्षेत्र' और उत्कृष्ट 'उत्कृष्ट अवधिक्षेत्र' देख सकते हैं। देव जघन्य अंगुल के असंख्येय भाग को देखते हैं। (यह जघन्य अवधिक्षेत्र की अपेक्षा बड़ा क्षेत्र है।) उत्कृष्ट, लोक की देशोन त्रसनाल देखते हैं।

३ काल की अपेक्षा—नारक जघन्य अन्तर्दिवस और उत्कृष्ट अनेक दिवस भूत भविष्य काल को जानते हैं। तिर्यञ्च जघन्य आवलिका का असंख्येय भाग, उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग भूत भविष्य काल जानते हैं। मनुष्य जघन्य आवलिका का असंख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट असंख्य कालचक्र भूत भविष्य

काल को जानते हैं। देव, जघन्य आवलिका का असंख्येय भाग और उत्कृष्ट लोक के अनेक संख्येय भाग क्षेत्र को जानते हैं।

४ पर्याय की अपेक्षा–चारों गति के जीव भी जघन्य से भी और उत्कृष्ट से भी रूपी द्रव्य के अनन्त पर्यव जानते हैं।

अवधिज्ञान की स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट ६६ सागर है। अवधिज्ञान और विभंगज्ञान दोनों की मिलाकर स्थिति दो छासठ सागर है। (प्रज्ञापना १८, १०)

से त्तं ओहिनाणपच्चक्खं ।१६।

। यह वह अवधिज्ञान प्रत्यक्ष है।

अब जिज्ञासु मनःपर्याय ज्ञान के स्वरूप को जानने के लिए पूछता है;–

मनःपर्यव ज्ञान

से किं तं मणपज्जवनाणं ? मणपज्जवनाणे णं भंते ! किं मणुस्साणं उप्पज्जइ अमणुस्साणं ? गोयमा ! मणुस्साणं, नो अमणुस्साणं ।

प्रश्न–वह मनःपर्यायज्ञान क्या है ?

हे भगवन् ! मनःपर्यायज्ञान क्या मनुष्यों को उत्पन्न होता है, या अमनुष्यों को (उत्पन्न होता है)?

उत्तर–हे गौतम ! मनःपर्यायज्ञान मनुष्यों को उत्पन्न होता है, अमनुष्यों को नहीं।

विवेचन–जिस ज्ञान के द्वारा पर के मन की पर्यायें जानी जाय, उसे 'मनःपर्यायज्ञान' कहते हैं।

मन दो प्रकार का है—१ द्रव्य मन और २ भाव मन। आत्मा में ज्ञानावरणीय कर्म के तथाविध क्षयोपशम से जो मनन करने की लब्धि होती है, तथा मनन रूप उपयोग चलता है, ये दोनों 'भावमन' कहलाते हैं। तथा उस मनन क्रिया में निमित्तभूत जो मनःपर्याप्ति के द्वारा मनोवर्गणा के पुद्‌ल ग्रहण कर मन रूप में परिणत किये जाते हैं, वे 'द्रव्य मन' हैं।

भाव मन आत्मा है और अरूपी है तथा द्रव्य मन पुद्‌गल मय है और रूपी है।

मनःपर्यायज्ञान, केवल रूपी द्रव्य को ही जानने वाला है, अतः मनःपर्यायज्ञानी, मनःपर्यायज्ञान के द्वारा केवल द्रव्य मन को ही साक्षात् जानते हैं, परन्तु अरूपी भाव मन को नहीं जानते।

भाव मन में जिस प्रकार मनन होता है—विचार धाराएँ चलती है, उसी के अनुसार द्रव्य मन भी होता है। यदि भाव मन प्रशस्त हुआ, तो द्रव्य मन भी प्रशस्त वर्ण, प्रशस्त गंध, प्रशस्त रस, प्रशस्त स्पर्श और प्रशस्त संस्थान वाला होता है। यदि भाव मन अप्रशस्त हुआ, तो द्रव्य मन भी अप्रशस्त वर्ण. अप्रशस्त गंध, अप्रशस्त रस, अप्रशस्त स्पर्श और अप्रशस्त संस्थानवाला होता है।

मनःपर्यायज्ञानी, द्रव्य मन के वर्णादि पर्यायों को जानकर अनुमान से यह निश्चय करते हैं कि 'अमुक संज्ञी जीव के अमुक विचार होने चाहिए', क्योंकि द्रव्य मन की ऐसी वर्णादि पर्यायें तभी हो सकती हैं जब कि अमुक प्रकार का भाव मन हो।

जैसे मन को जाननेवाले मानस-शास्त्री, मन को साक्षात् नहीं देखते। वे मन के अनुरूप मुख पर आनेवाली भाव भंगिमाओं को ही देखते हैं और वे मुख पर आई भाव भंगिमाओं को साक्षात् देखकर अनुमान से यह निश्चय करते हैं कि–'इसके अमुक विचार होने चाहिए,' क्योंकि मुख पर ऐसी भाव भंगिमाएँ तभी उत्पन्न हो सकती हैं जब कि इसके मन में अमुक प्रकार का भाव हो।

अब सूत्रकार, शिष्य की जिज्ञासा पूर्ति के लिए अवधिज्ञान के समान मन:पर्यायज्ञान के विषय में भी तीन बातें बतायेंगे– १ मन:पर्यायज्ञान किन्हें होता है, २ मन:पर्यायज्ञान के कितने भेद हैं और ३ मन:पर्यायज्ञान से कितने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव जाने जाते हैं। सर्व प्रथम 'मन:पर्यायज्ञान किसे होता है', यह बतलानेवाला पहला 'स्वामी द्वार' कहते हैं।

मन:पर्यायज्ञान–१ मनुष्यों को उत्पन्न होता है (मनुष्य पुरुष, मनुष्य स्त्री और मनुष्य नपुंसक को उत्पन्न होता है (भगवती ८,२) क्योंकि इनमें सर्व-विरत साधु होते हैं (भगवती २५-६)

२ अमनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता, नारक, तिर्यञ्च और देवों को उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि इनमें सर्व-विरत साधु नहीं होते।

जइमणुस्साणं किं संमुच्छिममणुस्साणं गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ? गोयमा ! नोसंमुच्छिममणुस्साणं, गब्भ-वक्कंतियमणुस्साणं उप्पज्जई ॥

प्रश्न–यदि मनुष्यों को उत्पन्न होता है, तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों को होता है, या गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को उत्पन्न होता है ?

उत्तर–गौतम ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता, किन्तु गर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है।

विवेचन–सम्मुर्च्छिम मनुष्य–जो मनुष्य, माता पिता के संयोग के बिना उत्पन्न होते हैं, उन्हें 'सम्मूर्च्छिम मनुष्य' कहते हैं। ये मनुष्य के मलमूत्र आदि चौदह स्थानों में उत्पन्न होते हैं। ये अंगुल के असंख्येय भाग की अवगाहनावाले, अन्तर्मुहूर्त की स्थितिवाले, मनुष्य की ही आकृतिवाले और मन रहित होते हैं।

गर्भ-व्युत्क्रान्तिक–जो मनुष्य माता पिता के संयोग से, माता के गर्भाशय में उत्पन्न होते हैं, या माता के गर्भ से बाहर निकलते होते हैं और मनवाले होते हैं, उन्हें 'गर्भ व्युत्क्रान्तिक' कहते हैं। (प्रज्ञापना १)

मनःपर्यायज्ञान, सम्मूर्च्छिम मनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि उनमें कोई सर्व-विरत साधु नहीं बन सकता, यह ज्ञान केवल गर्भ-व्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को ही उत्पन्न हो सकता है, क्योंकि उन्ही में कोई सर्व-विरत साधु बनते हैं।

जइ गब्भवक्कंतियमणुस्साणं किं कम्मभूमिय-गब्भ-वक्कंतिय-मणुस्साणं, अकम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, अन्तरदीवगगब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ? गोयमा ! कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो

अकम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो अंतरदी-वग-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

प्रश्न–यदि गर्भ-व्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को ही मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न होता है, तो क्या कर्म-भूमिज गर्भ-व्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को उत्पन्न होता है, या अकर्म-भूमिज मनुष्यों को उत्पन्न होता है, या अन्तर्द्वीपज मनुष्यों को उत्पन्न होता है ?

उत्तर–गौतम ! कर्मभूमिज गर्भोत्पन्न मनुष्यों को ही मनः-पर्यायज्ञान उत्पन्न होता है, अकर्म-भूमि और अन्तर्द्वीप के गर्भज मनुष्यों को नहीं होता ।

विवेचन–कर्म भूमिज–जिस भूमि में सदा या किसी समय भी राज्य, वाणिज्य, कृषि आदि लौकिक कर्म, या सम्यक् चारित्र सम्यक् तपादि लोकोत्तर कर्म चलते हों, उसे 'कर्मभूमि' कहते हैं । पाँच भरत, पाँच ऐरवत और पाँच महाविदेह, ये १५ कर्म-भूमियाँ हैं । जो इनमें उत्पन्न होते हैं, उन्हें 'कर्मभूमिज' कहते हैं ।

अकर्मभूमिज–जिस क्षेत्र में किसी भी समय उपर्युक्त लौकिक या लोकोत्तर कर्म नहीं चलते, उसे 'अकर्मभूमि' कहते हैं । पाँच देवकुरु, पाँच उत्तरकुरु, पाँच हेमवत, पाँच हैरण्यवत, पाँच हरिवर्ष, पाँच रम्यक्वर्ष, ये ३० अकर्मभूमियाँ हैं । जो इनमें उत्पन्न होते हैं, उन्हें 'अकर्मभूमिज' कहते हैं ।

अन्तर्द्वीपज–लवणसमुद्र के अन्तर्गत एकोरुक आदि जो ५६ द्वीप हैं, उन्हें 'अन्तर्द्वीप' कहते हैं । ये भी लौकिक और लोकोत्तर कर्म रहित होते हैं । जो इनमें उत्पन्न होते हैं, वे अन्तर्द्वीपज कहलाते हैं । (प्रज्ञापना १)

कर्मभूमि के गर्भज मनुष्यों में से ही कोई सर्व-विरत साधु बनते हैं, परन्तु अकर्मभूमिज.....मनुष्य या अन्तर्द्वीपक......मनुष्य सर्व-विरत साधु नहीं बन सकता, इसलिए उन्हें मनःपर्यायज्ञान उत्पन्न नहीं होता।

जइ कम्मभूमियगब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं संखिज्जवासाउयकम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं असंखिज्जवासाउयकम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं? गोयमा! संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो असंखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ॥

प्रश्न—यदि कर्मभूमिज.......मनुष्यों को मनःपर्यायज्ञान उत्पन्न होता है, तो क्या संख्येय वर्ष की आयुवाले....मनुष्यों को उत्पन्न होता है, या असंख्येय वर्ष की आयुवाले......मनुष्यों को उत्पन्न होता है?

उत्तर—गौतम! संख्यात वर्ष की आयुवाले....मनुष्यों को उत्पन्न होता है, असंख्यात वर्ष की आयुवाले....मनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता।

विवेचन—संख्येय वर्ष की आयुष्यवाले—यह एक पारिभाषिक शब्द है। जो जघन्य अन्तर्मुहूर्त की आयुष्यवाले हैं, उनसे लेकर जो उत्कृष्ट एक पूर्वकोटि (७,०५,६०,००,००,००,००० सत्तर लाख छप्पन सहस्र क्रोड़) वर्ष आयुष्यवाले होते हैं, उन्हें सूत्र में 'संख्येय वर्ष की आयुष्यवाले' कहते हैं।

असंख्येय वर्ष की आयुष्यवाले–जो पूर्वकोटि वर्ष से एक समय भी अधिक आयुष्यवाले होते हैं, उन्हें. असंख्येय वर्ष की आयुष्यवाले कहते हैं। (भगवती २४, १)

जइ संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं किं पज्जत्तग-संखेज्जवासाउयकम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, अपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! पज्जत्तग - संखेज्जवासाउय - कम्मभूमिय - गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो अपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भ-वक्कंतियमणुस्साणं ।

अर्थ–प्रश्न–यदि संख्येय वर्ष की आयुष्यवाले . . . . मनुष्यों को उत्पन्न होता है, तो क्या पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले . . . . मनुष्यों को उत्पन्न होता है, या अपर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुष्यवाले . . . . मनुष्यों को उत्पन्न होता है ?

उत्तर–गौतम ! पर्याप्त . . . . मनुष्यों को उत्पन्न होता है, अपर्याप्त . . . .मनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता ।

विवेचन–पर्याप्त अपर्याप्त–१ आहार २ शरीर ३ इन्द्रिय ४ श्वासोच्छ्वास ५ भाषा और ६ मन, इन छहों को ग्रहण आदि करने की जिन्होंने पूर्ण शक्ति प्राप्त करली, उन्हें यहाँ 'पर्याप्त' कहा है, तथा जिन्होंने पूरी शक्ति प्राप्त नहीं की, या नहीं करेंगे. उन्हें 'अपर्याप्त' कहा है।

जइ पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भ-

वक्कंतियमणुस्साणं, किं सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्ज-वासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, मिच्छ-दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय - गब्भवक्कं-तियमणुस्साणं, सम्मामिच्छदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासा-उय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय - कम्मभूमिय-गब्भ-वक्कंतियमणुस्साणं, नो मिच्छदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्ज-वासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं,नो सम्मा-मिच्छदिट्ठि पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भ-वक्कंतियमणुस्साणं ।

अर्थ-प्रश्न-यदि पर्याप्त .... मनुष्यों को ही मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न होता है, तो क्या सम्यग्दृष्टि पर्याप्त .... मनुष्यों को होता है, या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त .... मनुष्यों को उत्पन्न होता है। या मिश्रदृष्टि पर्याप्त मनुष्यों को उत्पन्न होता है?

उत्तर-गौतम ! सम्यग्दृष्टि पर्याप्त .... मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है, परन्तु मिथ्यादृष्टि पर्याप्त .... मनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार मिश्रदृष्टि पर्याप्त .... मनुष्यों को भी नहीं हो सकता। (क्योंकि उनमें निश्चय ही सर्व-विरत साधुत्व नहीं हो सकता।)

जइ सम्मदिट्ठिपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्म-भूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं किं संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय - कम्मभूमिय - गब्भवक्कंतिय-

मणुस्साणं, असंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, संजयासंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! संजय सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग - संखेज्जवासाउय - कम्मभूमिय -गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो असंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो संजयासंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय - गब्भ-वक्कंतियमणुस्साणं ।

अर्थ—प्रश्न—यदि सम्यग्दृष्टि . . . . मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है, तो क्या संयत . . . . मनुष्यों को उत्पन्न होता है, या असंयत . . . . मनुष्यों को उत्पन्न होता है, या संयतासंयत मनुष्यों को उत्पन्न होता है ।

उत्तर—गौतम ! मनःपर्यायज्ञान संयत . . . . मनुष्यों को उत्पन्न होता है, असंयत . . . . या संयतासंयत . . . . मनुष्यों को नहीं ।

विवेचन—संयत पुरुष-साधु, स्त्रीसाध्वी, या नपुंसक साधु । असंयत—अविरत गृहस्थ । संयतासंयत--देशविरत श्रावक ।

जइ संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं पमत्तसंजय-सम्मदिट्ठिपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय- कम्मभूमिय - गब्भ-वक्कंतियमणुस्साणं, अपमत्तसंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-

संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! अपमत्तसंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्ज-वासाउय-कम्मभमिय गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो पमत्त-संजय-सम्मदिट्ठिपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय - कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

अर्थ–प्रश्न–यदि संयत . . . . मनुष्यों को उत्पन्न होता है, तो क्या प्रमत्त संयत . . . . मनुष्यों को उत्पन्न होता है, या अप्रमत्त संयत . . . . मनुष्यों को उत्पन्न होता है ?

उत्तर–गौतम ! अप्रमत्त संयत . . . . मनुष्यों को ही मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हो सकता है, प्रमत्तसंयत . . . . मनुष्यों को नहीं ।

विवेचन–प्रमत्तसंयत अप्रमत्तसंयत–जो संयम में (चारित्र में) शिथिलता उत्पन्न करें उसे 'प्रमाद' कहते हैं। १ मद २ विषय ३ कषाय ४ निद्रा और ५ विकथा, ये पाँच प्रमाद हैं। जो साधु, जिस समय इनमें प्रवृत्त हो, वह उस समय 'प्रमत्त संयत' कहलाता है, तथा जिस समय इनमें प्रवृत्त न हो, उस समय 'अप्रमत्त संयत' कहलाता है।

यहाँ अप्रमत्त संयत का अर्थ–सातवें गुणस्थान से बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव समझना चाहिए ।

मनःपर्यायज्ञान विशिष्ट गुण के कारण उत्पन्न होता है। वैसे गुण अप्रमत्त साधु में ही हो सकते हैं, प्रमादी साधु में नहीं।

जइ अपमत्त-संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्ज-वासाउय कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, किं इड्ढी-

पत्तअपमत्त संजय-सम्मदिट्ठिपज्जत्तग- संखेज्ज वासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अणिड्ढीपत्त अपमत्तसंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग - संखेज्जवासाउय - कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! इड्ढीपत्त-अपमत्तसंजयसम्मदिट्ठि-पज्जत्तग- संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, णो अणिड्ढीपत्त-अपमत्तसंजयसम्मदिट्ठि- पज्जत्तग - संखेज्जवासाउय - कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं-मणपज्जवनाणं समुप्पज्जइ ॥१७॥

अर्थ—प्रश्न—यदि अप्रमत्तसंयत .... मनुष्यों को उत्पन्न होता है, तो क्या ऋद्धिप्राप्त अप्रमत्तसंयत .... मनुष्यों को उत्पन्न होता है, या ऋद्धि अप्राप्त संयत .... मनुष्यों को उत्पन्न होता है ?

उत्तर—गौतम ! मनःपर्यायज्ञान १ ऋद्धिप्राप्त २ अप्रमत्त ३ संयत ४ सम्यग्दृष्टि ५ पर्याप्तक ६ संख्येय वर्ष की आयुष्य-वाले ७ कर्मभूमिज ८ गर्भव्युत्क्रान्तिक ९ मनुष्यों को उत्पन्न होता है. ऋद्धि अप्राप्त .... मनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता।

विवेचन—ऋद्धि प्राप्त—धर्माचरण के द्वारा निर्जरा होकर या पुण्योदय होकर जो विशिष्ट शक्ति—लब्धि मिलती है, उसे यहाँ 'ऋद्धि' कहा है। ऐसी लब्धियाँ २८ हैं। उत्तरोत्तर अपूर्व अपूर्व अर्थ के प्रतिपादक विशिष्ट श्रुत में प्रवेश करते हुए उससे उत्पन्न तीव्र, तीव्रत्तर शुभ भावनाओं से ऋद्धियाँ उत्पन्न होती

हैं। जिन्हें ये ऋद्धियाँ प्राप्त हुई हैं, वे 'ऋद्धि प्राप्त' हैं, तथा जिन्हें प्राप्त नहीं हैं, वे ऋद्धि अप्राप्त' कहलाते हैं।

यहाँ मनःपर्यायज्ञान के साथ अविरोधी अवधिज्ञान-लब्धि, पूर्वधर-लब्धि, गणधर-लब्धि, औषधि-लब्धि, वचन-लब्धि चारण लब्धि, आदि लब्धियाँ ही ग्रहण करना चाहिए।

मनःपर्यायज्ञान, विशिष्ट विशुद्धि के कारण उत्पन्न होता है। वह विशिष्ट विशुद्धि, ऋद्धिप्राप्त में संभव है, ऋद्धि अप्राप्त में नहीं। क्योंकि ऋद्धि, विशुद्धि से ही प्राप्त होती है, बिना विशुद्धि के प्राप्त नहीं होती।

विशेष—मनःपर्यायज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् वह श्रमण छठे गुणस्थान में भी विद्यमान रह सकता है (प्रज्ञा. १७) इति मनःपर्याय ज्ञान का पहला स्वामी द्वार समाप्त।

भेद द्वार

अब सूत्रकार मनःपर्यायज्ञान के कितने भेद होते हैं? यह बतानेवाला दूसरा भेद द्वार कहते हैं।

तं च दुविहं उपज्जइ तंजहा—१ उज्जुमई य २ विउलमई य।

अर्थ—वह मनःपर्यायज्ञान दो प्रकार से उत्पन्न होता है, यथा—ऋजुमति और विपुलमति।

विवेचन—द्रव्य मन के जितने स्कंध, उसकी जितनी पर्यायें विपुलमति जानता है, उनकी अपेक्षा जो द्रव्य मन के स्कंध और उसकी पर्यायें अल्प जाने, उसे 'ऋजुमति' मनःपर्यायज्ञान कहते

हैं और २ द्रव्य-मन के जितने स्कंध और उसकी जितनी पर्यायें ऋजुमति जानता है, उनकी अपेक्षा जो द्रव्य-मन की विपुल पर्यायें जानता है, उसे 'विपुलमति' मनःपर्यायज्ञान कहते हैं।

दृष्टान्त–जैसे किसी संज्ञी जीव ने किसी घट के विषय में विपुल चिन्तन किया। उस चिन्तन के अनुरूप उसके द्रव्य मन की अनेक पर्यायें बनी। उन पर्यायों में ऋजुमति, 'इसने घट का चिन्तन किया'–मात्र इतना जानने में निमित्तभूत जो अल्प पर्यायें हैं, उन्हें ही जानेगा और उन पर्यायों को साक्षात् देखकर फिर अनुमान से यह जानेगा कि–'इस प्राणी ने घट का चिन्तन किया।'

परन्तु विपुलमति उन पर्यायों में–'इसने जिस घट का चिंतन किया वह घट, द्रव्य से सोने का बना हुआ है, क्षेत्र से पाटलीपुत्र नामक नगर में बना है, काल से वसन्त ऋतु में बना है, भाव से सिंहनी के दूध से युक्त है और फल से ढँका है, गुण से राजपुत्र को समर्पित करने योग्य है।' इत्यादि बातें जानने में निमित्तभूत जितनी विपुल पर्यायें हैं, उन सबको जानेगा और अनुमान से यह जानेगा कि 'उसने घट का चिंतन किया, जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण से, या वर्ण, गन्ध, रस,स्पर्श, शब्द, संस्थान आदि से इस प्रकार का है।'

विशेष–उत्कृष्ट ऋजुमति और विपुलमति, ये दोनों आनुगामिक होते हैं, अनानुगामिक नहीं। मध्यगत होते हैं, अन्तगत नहीं। सम्बद्ध होते हैं, असम्बद्ध नहीं। जघन्य ऋजुमति सब प्रकार का संभव है।

ऋजुमति वर्द्धमान होकर विपुलमति हो सकता है, पर विपुलमति हीयमान होकर ऋजुमति नहीं हो सकता।

ऋजुमति, केवलज्ञान की उत्पत्ति के पूर्व प्रत्तिपतित हो सकता है। ऋजुमति से और साधुत्व से गिर कर जीव, नरक निगोद में भी जा सकता है (भगवती २४, २१) परन्तु विपुलमति नियम से केवलज्ञान की उत्पत्ति के एक क्षण पूर्व तक विद्यमान रहता ही है।

मनःपर्यायज्ञान की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है (प्रज्ञापना १८, १०)। इति मनःपर्यायज्ञान का भेद द्वार समाप्त।

अब सूत्रकार 'मनःपर्यायज्ञान से कितने द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव का ज्ञान होता है,' यह बतलानेवाला तीसरा 'विषय द्वार' आरम्भ करते हैं।

तं समासओ चउव्विहं पन्नत्तं तंजहा–१ दव्वओ, २ खित्तओ, ३ कालओ, ४ भावओ।

अर्थ–उस मनःपर्याय ज्ञान का विषय संक्षेप से चार प्रकार का है। वह इस प्रकार है–१ द्रव्य से, २ क्षेत्र से, ३ काल से और ४ भाव से।

१ तत्थ दव्वओ णं उज्जुमई अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियंतराए विउलतराए विसुद्धतराए वितिमिरतराए जाणइ पासइ।

अर्थ–वहाँ १ द्रव्य से ऋजुमति अनन्त प्रदेशी, अनन्त स्कंध जानते देखते हैं, उन्हीं को विपुलमति अभ्यधिकता से, विपुलता से,

विशुद्धता से, वितिमिरता से जानते देखते हैं।

विवेचन–जिन मनःपर्यव ज्ञानियों को जघन्य ऋजुमति मनःपर्याय ज्ञान होता है, वे अपने जघन्य ऋजुमति मनःपर्याय ज्ञान के द्वारा संज्ञी जीव के मनरूप में परिणत मनोवर्गणा के अनन्त प्रदेशी अनन्त स्कंधों को जानते हैं। वे अनन्त स्कंध, उत्कृष्ट ऋजुमति से जितने स्कंध देखे जा सकते हैं, उनकी अपेक्षा अनन्तवें भाग समझना चाहिए। तथा जिन मनःपर्यवज्ञानियों को उत्कृष्ट ऋजुमति मनःपर्याय ज्ञान है, वे भी अपने ऋजुमति मनःपर्याय ज्ञान के द्वारा मन रूप में परिणत मनोवर्गणा के अनंत प्रदेशी अनन्त स्कंध ही जानते हैं, पर जघन्य मनःपर्याय ज्ञान से जितने जाने जाते हैं, उनसे अनन्तगुण जानते हैं।

विशेष–जो मध्यम ऋजुमति मनःपर्याय ज्ञानी हैं, वे जघन्य ऋजुमति की अपेक्षा १ कोई अनन्तवें भाग अधिक, २ कोई असंख्येय भाग अधिक, ३ कोई संख्येयभाग अधिक, ४ कोई संख्येयगुण अधिक, ५ कोई असंख्येय गुण अधिक और ६ कोई अनन्तगुण अधिक मनोवर्गणा के स्कंध द्रव्य जानते हैं।

तथा जो विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी हैं, वे ऋजुमति जितने स्कंध देखते हैं, उनकी अपेक्षा परिमाण में अधिकतर स्कंध देखते हैं, विपुलतर स्कंध देखते हैं, एवं स्पष्टता की अपेक्षा अधिक विशुद्धतर देखते हैं, वितिमिरतर–भ्रान्ति रहित देखते हैं।

शंका–जैसे अवधिज्ञानी, अवधिज्ञान से जानते हैं और अवधिदर्शन से देखते हैं? उसी प्रकार मनःपर्यवज्ञानी क्या मनःपर्याय ज्ञान से जानते हैं और मनःपर्याय दर्शन से देखते हैं?

समाधान–नहीं, क्योंकि मनःपर्याय ज्ञान ही होता है, दर्शन नहीं होता।

शंका–क्यों नहीं होता?

समाधान–छद्मस्थ जीवों का उपयोग तथा-स्वभाव से मन की पर्यायों की विशेषताओं को जानने की ओर ही लगता है, मन की पर्यायों की समानताओं को जानने की ओर नहीं लगता। अतएव मनःपर्यायज्ञान ही होता है, दर्शन नहीं होता।

शंका–तब 'मनःपर्यवज्ञानी देखते हैं'–इसका क्या अर्थ है?

समाधान–'मनःपर्यवज्ञानी, मनःपर्यायज्ञान से मन की पर्यायों को सक्षात् देख कर मनोनिमित्तक अचक्षुदर्शन के अनुमान द्वारा मनोभावों को देखते हैं'–यह अर्थ है। अथवा मन की पर्यायों को साक्षात् देखकर मनोनिमित्तक मतिज्ञान के अनुमान द्वारा मनोभावों को जानते हैं, उसे यहाँ 'देखना' कहा है। अथवा मन की कम पर्यायों को देखना–'देखना' है, तथा अधिक देखना जानना है। यह अर्थ सम्भव है।

२ खित्तओ णं उज्जुमई य जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जयभागं, उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्ले खुड्डगपयरे, उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिमतले, तिरियं जाव अन्तोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमिसु तीसाए अकम्मभूमिसु छपन्नाए अंतरदीवगेसु सन्निपंचेंदियाणं पज्जत्तयाणं मणोगए भावे जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अड्ढाई-

ज्जेहिमंगुलेहिं अब्भहियत्तरं विउलतरं विसुद्धतरं विति-मिरतरागं खेत्तं जाणइ पासइ।

अर्थ–क्षेत्र से ऋजुमति, जघन्य से अंगुल का असंख्यातवां भाग जानते देखते हैं, तथा उत्कृष्ट से नीचे इस रत्नप्रभा पृथ्वी के उपरिम अधस्तन क्षुद्र प्रतर तक जानते देखते हैं ऊपर ज्योतिषियों के उपरीतल तक जानते देखते हैं। तिरछे मनुष्य क्षेत्र तक जानते देखते हैं। मनुष्य क्षेत्र में अढ़ाई द्वीप हैं, दो समुद्र हैं। अढ़ाई द्वीप में पन्द्रह कर्मभूमि और तीस अकर्मभूमियाँ है, पहले लवण समुद्र में छप्पन अन्तर्दीप हैं। इन सब में जितने १ संज्ञी २ पञ्चेन्द्रिय ३ पर्याप्त हैं, उनके मनोगत भावों को जानते-देखते हैं।

उसी क्षेत्र को विपुलमति एक दिशा से भी अढ़ाई अंगुल अधिकतर और सभी दिशाओं में भी ढ़ाई अंगुल विपुलतर जानते देखते हैं। तथा उन क्षेत्र-गत मनोद्रव्यों को विशुद्धतर तथा वितिमिरतर जानते देखते हैं।

विवेचन–जिन मनःपर्यवज्ञानियों को जघन्य ऋजुमति मनःपर्यायज्ञान है, वे अपने जघन्य ऋजुमति मनःपर्याय ज्ञान द्वारा मात्र अंगुल के असंख्येय भाग में ही रहे हुए द्रव्य मन के रूपी स्कंध जानते देखते हैं। तथा जो उत्कृष्ट ऋजुमति मनःपर्यायज्ञानी हैं, वे अपने उत्कृष्ट ऋजुमति मनःपर्याय ज्ञान द्वारा अढ़ाई अढ़ाई अंगुल कम सहस्र १००० योजन गहरे ९०० योजन ऊँचे (१९०० योजन मोटे) ४५ लाख योजन लम्बे-चौड़े क्षेत्र में रहे हुए संज्ञी जीवों के द्रव्य मन की पर्यायों को जानते हैं। जो मनःपर्यवज्ञानी, मध्यम ऋजुमति मनःपर्यायज्ञानवाले हैं, वे

जघन्य ऋजुमति मन:पर्यवज्ञानी की अपेक्षा कोई १ असंख्येय भाग अधिक क्षेत्र, कोई २ संख्येयभाग अधिक क्षेत्र, कोई ३ संख्येय गुण अधिक क्षेत्र और कोई ४ असंख्येयगुण अधिक क्षेत्र जानते हैं।] विपुलमति मन:पर्यवज्ञानी भी इसी क्षेत्र को जानते हैं, पर अढ़ाई अढ़ाई अंगुल क्षेत्र अधिक–विपुल जानते हैं।

३ कालओ णं उज्जुमई जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखिज्जयभागं, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखिज्जयभागं अतीयमणागयं वा कालं जाणइ, पासइ तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ।

अर्थ–काल से ऋजुमति जघन्य से पल्योपम का असंख्येय भाग बीता हुआ और बीतनेवाला जानते देखते हैं और उत्कृष्ट से भी पल्योपम का असंख्येय भाग बीता हुआ और बीतनेवाला जानते देखते हैं। उसी काल को विपुलमति अधिकता से, विपुलता से, विशुद्धता से और वितिमिरता से जानते-देखते हैं।

विवेचन–जो मन:पर्यवज्ञानी, जघन्य ऋजुमति मन:पर्याय ज्ञानवाले हैं, वे अपने जघन्य ऋजुमति मन:पर्यायज्ञान के द्वारा उक्त क्षेत्र में किस संज्ञी जीव की बीते हुए पल्योपम के असंख्येय भाग में द्रव्यमन की कैसी पर्यायें रही, और बीतनेवाले पल्योपम के असंख्येय भाग में द्रव्यमन की कैसी पर्यायें रहेगी–यह प्रत्यक्ष जानते हैं और उस पर अनुमान लगा कर बीते हुए

पल्योपम के असंख्येय भाग में उक्त क्षेत्र में किस संज्ञी जीव के कैसे मनोभाव रहे और बीतनेवाले पल्योपम के असंख्येय भाग में कैसे मनोभाव रहेंगे, यह परोक्ष देखते हैं।

जिन ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानियों को उत्कृष्ट ऋजुमति-मनःपर्याय ज्ञान हैं, वे भी इतने ही काल आगे पीछे के मनोभावों को जानते हैं। परन्तु जघन्य ऋजुमति मनःपर्याय ज्ञानवाले जिस पल्योपम का असंख्येय भाग देखते हैं, वह वहुत छोटा समझना चाहिए। संभव है वह आवलिका का असंख्यातवाँ भाग ही हो। तथा उत्कृष्ट ऋजुमति मनःपर्याय ज्ञानवाले जिस पल्योपम के असंख्येय भाग को जानते हैं, वह बहुत वड़ा समझना चाहिए। क्योंकि उसमें असंख्येय वर्ष हैं। जिन मनःपर्यव ज्ञानियों को मध्यम ऋजुमति मनःपर्यायज्ञान है, वे जघन्य ऋजुमति मनःपर्यायज्ञान की अपेक्षा कोई १ असंख्येय भाग अधिक काल, कोई २ संख्येय भाग अधिक काल, कोई ३ संख्येय गुण अधिक काल और कोई ४ असंख्येय गुण अधिक काल जानते हैं।

४ भावओ णं उज्जुमई अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ।

अर्थ—भाव से ऋजुमति अनन्त भावों को जानते देखते हैं, सर्वभावों के अनन्तवें भाग जानते देखते हैं। उन्हीं को विपुलमति अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर और वितिमिरतर जानते हैं।

विवेचन—जिन मनःपर्यव ज्ञानियों को जघन्य ऋजुमति

मन:पर्यायज्ञान है, वे अपने जघन्य ऋजुमति मन:पर्याय से द्रव्य मन के प्रत्येक स्कंध के संख्य पर्याय ही जानते हैं, पर अनन्त मनोद्रव्य स्कंध जानते हैं, उसकी अपेक्षा अनन्त पर्यायें जानते हैं। वे पर्यायें, उत्कृष्ट ऋजुमति मन:पर्याय ज्ञानी जितनी पर्यायें जानते हैं, उसकी अपेक्षा अनन्तवें भाग मात्र हैं।

जो मन:पर्यवज्ञानी, उत्कृष्ट ऋजुमति मन:पर्यायज्ञानी हैं, वे अपने उस ज्ञान के द्वारा द्रव्य-मन के प्रत्येक स्कंध की असंख्य पर्यायें जानते हैं, परन्तु द्रव्य-मन के अनन्त स्कंध जानते हैं; उनकी अपेक्षा अनन्त पर्यायें जानते हैं। वे पर्यायें जघन्य ऋजुमति से जितनी जानी जाती हैं, उनकी अपेक्षा तो अनंत गुण हैं, परन्तु द्रव्यमन की जितनी पर्यायें होती हैं, उनका अनंतवाँ भाग मात्र जानते हैं। क्योंकि वे प्रत्येक मनोद्रव्य स्कंध की वर्त्तमान अनन्त पर्यायों को और कालिक अनंत पर्यायों को नहीं जानते। मात्र कुछ काल की असंख्येय पर्यायें ही जानते हैं।

जो मन:पर्यव ज्ञानी, मध्यम ऋजुमति मन:पर्याय ज्ञानवाले हैं, उनमें जघन्य मन:पर्याय ज्ञान द्वारा जितनी पर्यायें जानी जाती हैं, उससे १ कोई अनन्तवें भाग अधिक, २ कोई असंख्येय भाग अधिक, ३ कोई संख्येय भाग अधिक, ४ कोई संख्येय गुण अधिक, ५ कोई असंख्येय गुण अधिक और ६ कोई अनन्त गुण अधिक पर्यायें जानते हैं। (प्रज्ञापना ५)। इति तीसरा विषय द्वार समाप्त।

अब सूत्रकार, मन:पर्यायज्ञान का चौथा 'चूलिका द्वार' कहते हैं। उसमें मन:पर्यव ज्ञान के विषय में अबतक जो कहा, उसका

कुछ संग्रह करते हुए अवधिज्ञान से उसका अन्तर बतलाते हैं।

मणपज्जवनाणं पुण, जणमणपरिचिंतियत्थपागडणं।
माणुसखित्तनिबद्धं, गुणपच्चइयं चरित्तवओ ॥६५॥

अर्थ—मनःपर्याय ज्ञान १ (रूपी द्रव्यमन को साक्षात् जानता है और (उस पर अन्यथा अनुपपत्ति अनुमान से) जन-मन के परिचिन्तित पदार्थ को प्रकट करता है। २ मनुष्य क्षेत्र को जानता है। ३ गुणप्रत्यय होता है और ४ चारित्रवान् साधुओं को ही उत्पन्न होता है।

विवेचन—(१) द्रव्य से अन्तर—अवधिज्ञान जघन्य तेजो वर्गणा के उत्तरवर्त्ती तैजस के अयोग्य गुरुलघु द्रव्यों को जानता है, अथवा भाषा के पूर्ववर्ती, भाषा के अयोग्य अगुरुलघु द्रव्य को जानता है, तथा उत्कृष्ट से परमाणु संख्य प्रदेशी, असंख्य प्रदेशी, अनन्त प्रदेशी, गुरुलघु, अगुरुलघु, औदारिक वर्गणा यावत् कर्म वर्गणा सभी प्रकार के समस्त रूपी पुद्गल द्रव्यों को जानता है।

किन्तु मनःपर्याय ज्ञान, जघन्य से भी और उत्कृष्ट से भी मनोवर्गणा के अगुरुलघु सूक्ष्म रूपी द्रव्य को जानता है।

(२) क्षेत्र से अन्तर—अवधिज्ञान जघन्य से अंगुल के असंख्येय भाग को और उत्कृष्ट लोक एवं अलोक में लोक प्रमाण असंख्य खण्ड क्षेत्र को जानता है, किन्तु मनःपर्यायज्ञानी जघन्य अंगुल के असंख्येय भाग को और उत्कृष्ट मनुष्य क्षेत्र को जानता है।

(३) प्रत्यय से अन्तर—अवधिज्ञान कोई भवप्रत्यय भी होता है, तथा कोई गुणप्रत्यय भी होता है, पर सभी मनः-

पर्याय ज्ञान नियम से गुणप्रत्यय ही होते हैं।

(४) स्वामी से अन्तर–अवधिज्ञान, चारों गति के जीवों को हो सकता है, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत श्रावक और सर्वविरत साधु को भी हो सकता है। यदि अज्ञान–विभंग ज्ञान की अपेक्षा लें, तो प्रथम गुणस्थानवाले को भी उत्पन्न हो सकता है, परंतु मनःपर्यायज्ञान तो नियम से मनुष्यगति वाले को ही हो सकता है, तथा उसमें भी ऋद्धि प्राप्त अप्रमत्त संयत को ही हो सकता है, अन्य को नहीं।

से त्तं मणपज्जवनाणं ॥१८॥

अर्थ–यह मनःपर्यवज्ञान प्रत्यक्ष है ॥१८॥

केवलज्ञान

अब जिज्ञासु केवलज्ञान के स्वरूप को जानने के लिए पूछता है।

से किं तं केवलनाणं ? केवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–भवत्थकेवलनाणं च सिद्धकेवलनाणं च।

अर्थ–प्रश्न–वह केवलज्ञान क्या है ?

उत्तर–केवलज्ञान के दो भेद हैं–१ भवस्थ केवलज्ञान तथा २ सिद्ध केवलज्ञान।

विवेचन–'केवल' का अर्थ है–सम्पूर्ण, अतएव जो सर्व द्रव्य, सर्व क्षेत्र, सर्व काल और सर्व भाव को जाने, वह 'केवलज्ञान' है।

अथवा 'केवल' का अर्थ है–शुद्ध। अतएव जो ज्ञानावरणीय

कर्ममल के सर्वथा क्षय से आत्मा को उत्पन्न हो, उसे 'केवलज्ञान' कहते हैं।

अथवा 'केवल' का अर्थ है-असहाय। अतएव जिस ज्ञान के रहते अन्य कोई ज्ञान सहायक न रहे, उसे 'केवलज्ञान' कहते हैं। जिस प्रकार मणि पर लगे हुए मल की न्यूनता अधिकता और विचित्रता से मणि के प्रकाश में न्यूनता अधिकता और विचित्रता आती है, पर मणि पर से लगा हुआ वह मल यदि दूर हो जाय, तो मणि के प्रकाश में रही हुई न्यूनता, अधिकता, विचित्रता आदि सभी मिटकर एक पूर्णता उत्पन्न हो जाती है और वही रहती है, उसी प्रकार आत्मा पर जबतक ज्ञानावरणीय कर्म मल रहता है और उसका न्यूनाधिक विचित्र क्षयोपशम होता है, तभी तक आत्मा में मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव आदि न्यूनाधिक क्षयोपशमवाले, क्षायोपशमिक विचित्र ज्ञान रहते हैं। परंतु ज्यों ही आत्मा पर लगा हुआ ज्ञानावरणीय कर्म-मल हट जाता है, त्यों ही आत्मा में से ये सभी विचित्र न्यूनाधिक क्षयोपशम वाले ज्ञान दूर होकर आत्मा में एक पूर्ण-केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और वही रहता है।

अथवा 'केवल' का अर्थ है एक। अतएव जो ज्ञान, भेद रहित हो, वह 'केवलज्ञान' है।

सूत्रकार शिष्य की जिज्ञासा पूर्ति के लिए केवलज्ञान के विषय में दो बातें बताते हैं-१ केवलज्ञान किसे होता है और केवलज्ञान कितने द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव देखता है। केवल-ज्ञान के भेद होते ही नहीं, अतएव उसके कितने भेद होते है ?

यह नहीं कहेंगे। सर्व प्रथम केवलज्ञान किसे होता है। यह बतानेवाला पहला स्वामी द्वार है। इसके स्वामी हैं–१ भवस्थ केवलज्ञानी और २ सिद्ध।

१ भवस्थ केवलज्ञान–मनुष्य भव में रहे हुए चार घाति-कर्म रहित जीवों का केवलज्ञान। २ सिद्ध केवलज्ञान–जो अष्ट कर्म क्षय कर मोक्ष-सिद्धि पा चुके, उनका केवलज्ञान।

भावार्थ–जीव के दो भेद हैं–१ सिद्ध और २ संसारी। उनमें सिद्धों को भी केवलज्ञान होता है और संसारियों में भी, जो मनुष्य ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय-ये चार घाति-कर्म क्षय कर चुके, उन्हें भी केवलज्ञान होता है।

से किं तं भवत्थकेवलनाणं? भवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–सजोगिभवत्थकेवलनाणं च अजोगिभवत्थकेवलनाणं च।

अर्थ–प्रश्न–वह भवस्थ केवलज्ञान क्या है?

उत्तर–भवस्थ केवलज्ञान के दो भेद हैं। वे इस प्रकार–१ सयोगी भवस्थ केवलज्ञान और २ अयोगी भवस्थ केवलज्ञान।

विवेचन–१ सयोगी भवस्थ केवलज्ञान–जो मन, वचन, काय, इन तीन योगों की प्रवृत्ति सहित हैं, ऐसे मनुष्य-भव में रहे हुए चार घाति-कर्म रहित संसारी जीवों का केवलज्ञान। २ अयोगी भवस्थ केवलज्ञान–जिन्होंने मन, वचन, काय, इन तीनों का निरोधकर शैलेशी अवस्था प्राप्त करली है, ऐसे मनुष्यभव में रहे हुए चार घाति-कर्म रहित संसारी (आसन्नमुक्त) जीवों

का केवलज्ञान।

चार घाति-कर्म क्षय करने के पश्चात् मनुष्यों में दो अवस्था रहती है–१ पहले सयोगी अवस्था रहती है २ पीछे अयोगी अवस्था प्राप्त होती है। इन दोनों ही अवस्थाओं में मनुष्यों को केवलज्ञान रहता है।

से किं तं सजोगिभवत्थकेवलनाणं ? सजोगिभवत्थ-केवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–पढमसमयसजोगि-भवत्थकेवलनाणं च अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च, अहवा चरमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च अचरम-समयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च। से त्तं सजोगिभवत्थ-केवलनाणं।

अर्थ–प्रश्न–वह सयोगी भवस्थ केवलज्ञान क्या है ?

उत्तर-सयोगी भवस्थ केवलज्ञान के दो भेद हैं १ प्रथम समय की सयोगी भवस्थ अवस्था का केवलज्ञान और २ अप्रथम समय की सयोगी भवस्थ अवस्था का केवलज्ञान। अथवा–१ चरम समय की सयोगी भवस्थ अवस्था का केवलज्ञान तथा २ अचरम समय की सयोगी भवस्थ अवस्था का केवलज्ञान। ये सयोगी भवस्थ केवलज्ञान के भेद हुए।

विवेचन–१ प्रथम समय सयोगी भवस्थ केवलज्ञान–जिन्हें चार घाति-कर्म क्षय किये पहला समय है, ऐसे सयोगी मनुष्य भव में रहे हुए संसारस्थ जीवों का केवलज्ञान और २ अप्रथम समय सयोगी भवस्थ केवलज्ञान–जिन्हें चार घाति-कर्म क्षय किये पहला समय बीत गया है, ऐसे सयोगी मनुष्य भव में रहे

हुए संसारस्थ जीवों का केवलज्ञान। अथवा १ चरम समय सयोगी भवस्थ केवलज्ञान–जिनकी सयोगी अवस्था का वर्त्तमान समय अन्तिम समय है, ऐसे मनुष्यभव में रहे हुए संसारी जीवों का केवलज्ञान और २ अचरम समय सयोगी भवस्थ केवलज्ञान, जिनका सयोगी अवस्था का वर्त्तमान समय में अन्तिम समय नहीं आया है, ऐसे मनुष्य भव में रहे हुए संसारी जीवों का केवलज्ञान।

चार घाति-कर्मों का जिस समय क्षय अर्थात् सर्वांश निर्जरा होती है, उसी समय मनुष्य को केवलज्ञान उत्पन्न होता है। चार घाति-कर्मों के क्षय का समय और केवलज्ञान की उत्पत्ति का समय, दोनों का समय एक ही है।

चार घाति-कर्म क्षय का जो पहला समय है, उस समय तो केवलज्ञान उत्पन्न होकर विद्यमान रहता ही है, पश्चात् दूसरे तीसरे आदि समय में भी विद्यमान रहता है। अथवा सयोगी अवस्था का अन्तिम समय आ जाय, तो भी विद्यमान रहता है और उसमें दो तीन आदि समय शेष हों, तो भी विद्यमान रहता है। यह सयोगी भवस्थ केवलज्ञान है।

से किं तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं ? अजोगिभवत्थकेवलनाणं दुविहं पन्नत्तं तं जहा—पढमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च अपढमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च अहवा चरमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च अचरमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च। से त्तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं। से त्तं भवत्थकेवलनाणं ॥१६॥

अर्थ-प्रश्न-वह अयोगी भवस्थ केवलज्ञान क्या है ?

उत्तर-अयोगी भवस्थ केवलज्ञान के दो भेद हैं-१ प्रथम समय की अयोगी भवस्थ अवस्था का केवलज्ञान तथा २ अप्रथम समय की अयोगी भवस्थ अवस्था का केवलज्ञान। अथवा १ चरम समय की अयोगी भवस्थ अवस्था का केवलज्ञान तथा २ अचरम समय की सयोगी भवस्थ अवस्था का केवलज्ञान। ये अयोगी भवस्थ केवलज्ञान के भेद हुए। यह भवस्थ केवलज्ञान का प्ररूपण हुआ।

विवेचन-१ प्रथम समय अयोगी भवस्थ केवलज्ञान, जिन्हें अयोगी अवस्था प्राप्त हुए पहला समय ही है, ऐसे मनुष्य-भव में रहे हुए संसारस्थ जीव का केवलज्ञान और २ अप्रथम समय अयोगी भवस्थ केवलज्ञान, जिन्हें अयोगी अवस्था प्राप्त किये पहला समय बीत गया है, ऐसे मनुष्य भव में रहे हुए संसारस्थ जीवों का केवलज्ञान। अथवा १ चरम समय अयोगी भवस्थ केवलज्ञान-जिन्हें अयोगी अवस्था का वर्त्तमान समय अन्तिम समय है, ऐसे मनुष्यभव में रहे हुए संसारस्थ जीवों का केवलज्ञान और २ अचरम समय अयोगी भवस्थ केवलज्ञान-जिन्हें अयोगी अवस्था का वर्त्तमान समय में अन्तिम समय नहीं आया है, ऐसे मनुष्यभव में रहे हुए संसारस्थ जीवों का केवलज्ञान।

सयोगी अवस्था में उत्पन्न हुआ केवलज्ञान, अयोगी अवस्था प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी बना रहता है। चाहे अयोगी अवस्था का पहला समय हो, या दूसरे तीसरे आदि समय हो, अथवा अन्तिम समय हो, या उससे पूर्व के दूसरे तीसरे आदि समय हो,

केवलज्ञान विद्यमान रहता है, नष्ट नहीं होता। यह अयोगी भवस्थ केवलज्ञान है। यह भवस्थ केवलज्ञान है।

से किं तं सिद्धकेवलनाणं ? सिद्धकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—अणंतरसिद्धकेवलनाणं च परंपरसिद्ध-केवलनाणं च ॥२०॥

अर्थ—प्रश्न—वह सिद्ध केवलज्ञान क्या है ?

उत्तर—सिद्ध केवलज्ञान के दो भेद हैं। वे इस प्रकार हैं—१ अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान और २ परम्पर सिद्ध केवलज्ञान।

विवेचन—१ अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान—जिन्हें सिद्ध हुए एक समय का भी अन्तर नहीं हुआ, एक समय भी नहीं बीता, जिन्हें सिद्धत्व का पहला समय है, जो वर्त्तमान समय में सिद्ध हो रहे हैं, उनका केवलज्ञान और २ परम्पर सिद्ध केवलज्ञान—जिन्हें सिद्ध हुए समयों की 'एक दो' यों परम्परा आरंभ हो चुकी है, जिन्हें सिद्धत्व प्राप्ति का पहला समय बीत गया है, उनका केवलज्ञान।

संसारी अवस्था में प्राप्त केवलज्ञान, सिद्ध दशा में भी विद्यमान रहता है, चाहे सिद्धत्व का प्रथम समय हो, चाहे दूसरे, तीसरे आदि समय हों।

सिद्धत्व दशा का कभी अन्त नहीं आता। अतएव इसमें 'चरम अचरम' ये भेद नहीं किये गये। सिद्ध सदा अचरम ही होते हैं।

से किं तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं ? अणंतरसिद्ध-केवलनाणं पन्नरसविहं पण्णत्तं, तंजहा—१ तित्थसिद्धा, २ अतित्थसिद्धा, ३ तित्थयरसिद्धा, ४ अतित्थयरसिद्धा,

५ सयंबुद्धसिद्धा, ६ पत्तेयबुद्धसिद्धा, ७ बुद्धबोहियसिद्धा, ८ इत्थिलिंगसिद्धा, ९ पुरिसलिंगसिद्धा, १० नपुंसगलिंग-सिद्धा, ११ सलिंगसिद्धा, १२ अण्णलिंगसिद्धा, १३ गिहि-लिंगसिद्धा, १४ एगसिद्धा, १५ अणेगसिद्धा। से त्तं अणं-तरसिद्धकेवलनाणं ॥२१॥

अर्थ—प्रश्न—वह अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान क्या है ?

उत्तर—अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान के पन्द्रह भेद हैं—१ तीर्थ-सिद्ध २ अतीर्थ सिद्ध ३ तीर्थकर सिद्ध ४ अतीर्थकर सिद्ध ५ स्वयं-बुद्ध सिद्ध ६ प्रत्येकबुद्ध सिद्ध ७ बुद्ध-बोधित सिद्ध ८ स्त्री-लिंग सिद्ध ९ पुरुष-लिंग सिद्ध १० नपुंसक-लिंग सिद्ध ११ स्व-लिंग सिद्ध १२ अन्य-लिंग सिद्ध १३ गृहस्थ-लिंग सिद्ध १४ एक सिद्ध तथा १५ अनेक सिद्ध हुए। ये अनंतर सिद्ध केवलज्ञान के भेद हुए।

विवेचन—तीर्थसिद्ध—जिससे संसार समुद्र तिरा जाय, उसे 'तीर्थ' कहते हैं। अर्थात् जीवादि पदार्थों की सम्यक् प्ररूपणा करनेवाले तीर्थङ्करों के वचन, या प्रथम गणधर या तीर्थाधार संघ को तीर्थ कहते हैं। उसकी विद्यमानता में जो सिद्ध हुए, वे 'तीर्थ सिद्ध' हैं।

अतीर्थ सिद्ध—जो तीर्थ उत्पत्ति के पहले, या तीर्थ विच्छेद के पश्चात्, जातिस्मरणादि से बोध प्राप्त कर सिद्ध हुए, वे 'अतीर्थ सिद्ध' हैं।

तीर्थङ्कर सिद्ध—जो तीर्थङ्कर नाम-कर्म के उदयवाले हैं, ३४ अतिशय सम्पन्न हैं, चार घाति-कर्म क्षय कर, अर्थरूप से प्रवचन प्रकट कर, गणधरादि चतुर्विध संघ की स्थापना करते

हैं, ऐसे अर्हन्त को 'तीर्थङ्कर' कहते हैं। जो तीर्थङ्कर बनकर सिद्ध हुए वे 'तीर्थङ्कर सिद्ध' हैं।

अतीर्थङ्कर सिद्ध—जो तीर्थङ्करत्व रहित सामान्य केवली बनकर सिद्ध हुए, वे 'अतीर्थङ्कर सिद्ध' हैं।

स्वयं बुद्ध सिद्ध—जिन्होंने गुरु उपदेश और बाह्य निमित्त के बिना, स्वयं बोध प्राप्त किया, उन्हें 'स्वयं बुद्ध' कहते हैं। जो स्वयं बुद्ध होकर सिद्ध हुए, वे 'स्वयंबुद्ध' सिद्ध हैं।

प्रत्येक बुद्ध सिद्ध—जिन्होंने गुरु के उपदेश के बिना किसी बाह्य निमित्त से बोध प्राप्त किया, उन्हें 'प्रत्येक बुद्ध' कहते हैं। जो प्रत्येक बुद्ध होकर सिद्ध हुए, उन्हें 'प्रत्येक बुद्ध सिद्ध' कहते हैं।

बुद्ध बोधित सिद्ध—जिन्होंने स्वयं या किसी बाह्य निमित्त से नहीं, परंतु गुरु से बोध पाया, उन्हें 'बुद्ध बोधित' कहते हैं, जो बुद्ध से बोधित होकर सिद्ध हुए, उन्हें 'बुद्ध बोधित सिद्ध' कहते हैं।

स्त्रीलिंग सिद्ध—जो स्त्री शरीराकृति में रहते हुए सिद्ध हुई, उन्हें 'स्त्रीलिंग सिद्ध' कहते हैं। लिंग तीन प्रकार का मना गया है—१ वेद—मैथुनेच्छा, २ शरीर आकृति—योनि, मेहन आदि, ३ वेश—नेपथ्य। वेद रहते हुए मोक्ष हो ही नहीं सकता और वेश अप्रमाण है। अतएव यहाँ लिंग से तथाविध शरीर आकृति ही ग्रहण करना चाहिए।

पुरुषलिंग सिद्ध—जो पुरुष शरीर आकृति में सिद्ध हुए, उन्हें 'पुरुषलिंग सिद्ध' कहते हैं।

नपुंसक लिंग सिद्ध—जो नपुंसक शरीर आकृति के रहते हुए सिद्ध हुए उन्हें 'नपुंसक लिंग सिद्ध' कहते हैं।

स्वलिंग सिद्ध—जैन साधुओं का जो अपना लिंग है वह 'स्वलिंग' है। स्वलिंग के दो प्रकार हैं—१ द्रव्यलिंग-रजोहरण और मुखवस्त्रिका. ये साधुओं के अपने बाहरी लिंग, 'द्रव्यलिंग' है। २ भावलिंग-अर्हन्त कथित सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप, ये जैनों के अपने भीतरी 'भावलिंग' हैं। भावलिंग आये विना तो कोई भी सिद्ध होता ही नहीं। अतएव यहाँ द्रव्य लिंग से प्रयोजन है। फलित यह हुआ कि जो जैन साधुत्व प्रदर्शक रजोहरण—मुखवस्त्रिका रूप लिंग—वेश, चिन्ह के रहते सिद्ध हुए, वे 'स्वलिंग सिद्ध' हैं।

अन्यलिंग सिद्ध—जो (भाव लिंग की अपेक्षा जैन लिंग से, किंतु द्रव्यलिंग की अपेक्षा) जैन से इतर—अन्य मत के कषाय वस्त्र, कमण्डलु, त्रिशूल आदि लिंग (वेश) में रहते हुए सिद्ध हुए, वे 'अन्यलिंग सिद्ध' हैं।

गृहस्थलिंग सिद्ध—जो (भावलिंग की अपेक्षा भाव जैन साधुत्वलिंग से, किंतु द्रव्य लिंग की अपेक्षा) गृहस्थ लिंग (गृहस्थ वेश) में रहते हुए सिद्ध हुए, वे गृहस्थलिंग सिद्ध' हैं।

एक सिद्ध—जो अपने सिद्ध होने के समय में अकेले सिद्ध हुए, वे 'एक सिद्ध' है।

अनेकसिद्ध—जो अपने सिद्ध होने के समय में अनेक - जघन्य दो उत्कृष्ट एक सौ आठ, सिद्ध हुए, वे अनेक सिद्ध'।

इन पन्द्रह भेदों से सिद्ध जीवों का केवलज्ञान ही अनन्त

का तीसरा समय है) ३ चतुः समय सिद्ध यावत् ९ दश समय सिद्ध १० संख्येय समय सिद्ध ११ असंख्येय समय सिद्ध १२ अनंत समय सिद्ध। उन सभी सिद्धों का केवलज्ञान, परम्पर सिद्ध केवलज्ञान है। यह परम्पर सिद्ध केवलज्ञान है। यह सिद्ध केवलज्ञान है।

विवेचन–केवलज्ञान किसे उत्पन्न होता है और कब तक रहता है ? इस विषय में दार्शनिकों में बहुत मत-भेद रहा है। कोई अनादिसिद्ध–एक ईश्वर में ही अनादि से केवलज्ञान होना मानते हैं, किंतु सामान्य जीव में केवलज्ञान होना नहीं मानते। जो मानते हैं, उनमें कोई संसार अवस्था में केवलज्ञान उत्पन्न होना मानते है, पर फिर सिद्ध अवस्था में नष्ट हो जाता है–ऐसा मानते हैं। कोई संसार अवस्था में केवलज्ञान होना नहीं मानते, सिद्ध अवस्था के साथ ही केवलज्ञान की उत्पत्ति मानते हैं। कोई सयोगी अवस्था में केवलज्ञान होना नहीं मानते, अयोगी अवस्था में होना मानते हैं, इत्यादि कई मत रहे हैं। उन सब का निराकरण करने के लिए भगवान् ने जो यथार्थ मत था, उसे विस्तार से प्रकट किया है। इति पहला स्वामी द्वार समाप्त।

विषयद्वार–'केवलज्ञान भेद रहित है। अतएव केवलज्ञान विषयक दूसरा भेद द्वार नहीं बनता'–यह पहले बता चुके हैं। अब सूत्रकार केवलज्ञान कितने 'द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव जानता है,' यह बतानेवाला तीसरा विषय द्वार आरम्भ करते हैं।

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा–दव्वओ,

खित्तओ, कालओ, भावओ ।

अर्थ-केवलज्ञान का विषय, संक्षेप से चार प्रकार का है। यथा-१ द्रव्य से २ क्षेत्र से ३ काल से और ४ भाव से।

तत्थ दव्वओ णं केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ ।

अर्थ-द्रव्य से केवलज्ञानी, सभी द्रव्यों को जानते देखते हैं।

विवेचन-केवलज्ञानी केवलज्ञान से-१ धर्म २ अधर्म ३ आकाश ४ जीव ५ पुद्गल ६ और काल, इन छहों द्रव्यों में, जो द्रव्य, द्रव्य से जितने परिमाण हैं और उनके जितने प्रदेश हैं, उन सभी द्रव्यों को और उनके उन सभी प्रदेशों को प्रत्यक्ष जानते हैं और केवलदर्शन से प्रत्यक्ष देखते हैं।

खित्तओ णं केवलनाणी सव्वं खित्तं जाणइ पासइ ।

अर्थ-क्षेत्र से केवलज्ञानी, सभी क्षेत्र को-सर्व लोकाकाश और सर्व अलोकाकाश को जानते देखते हैं।

विवेचन-'क्षेत्र' का अर्थ है-'आकाश द्रव्य।' वह छह द्रव्यों में सम्मिलित है। अतएव केवलज्ञानी सभी द्रव्यों को जानते हैं। इसमें 'सब क्षेत्र' अर्थात् लोकाकाश और अलोकाकाश भी जानते हैं-यह भाव भी आ जाता है। परन्तु लोक में द्रव्य से क्षेत्र को पृथक् कहने का व्यवहार है, अतएव शास्त्रकार ने 'केवलज्ञानी सर्व क्षेत्र को जानते हैं'-यह पृथक् से कहा है।

अथवा-छहों द्रव्यों में जो द्रव्य, जितने क्षेत्र प्रमाण है, उसे केवलज्ञानी, अपने केवलज्ञान से को उतने क्षेत्र प्रमाण जानते हैं

और केवलदर्शन से देखते हैं।

कालओ णं केवलनाणी सव्वं कालं जाणइ पासइ।

अर्थ—काल से केवलज्ञानी, सभी काल (सर्व भूत, सर्व वर्तमान और सर्व भविष्य) को जानते देखते हैं।

विवेचन—काल भी छहों द्रव्यों में सम्मिलित है, पर व्यवहार में जैसे—द्रव्य से क्षेत्र को पृथक् कहने का व्यवहार है, वैसे ही, द्रव्य से काल को भी पृथक् कहने का व्यवहार है। अतएव सूत्रकार ने केवलज्ञानी केवलज्ञान से सब काल को जानते हैं। यह पृथक् से कहा है।

अथवा जो द्रव्य, जितने काल परिमाण है, केवलज्ञानी केवलज्ञान से उस द्रव्य को उतने काल परिमाण जानते हैं और केवल दर्शन से देखते हैं।

भावओ णं केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ।

अर्थ—भाव से केवलज्ञानी, सभी भावों (औदयिक आदि छहों भावों) को जानते हैं।

विवेचन—किस द्रव्य के किस प्रदेश में, किस क्षेत्र में, किस काल में, किस गुण की क्या पर्याय हुई, क्या पर्याय होरही है और क्या पर्याय होगी,—यह सब केवलज्ञानी, केवलज्ञान से जानते हैं और केवल दर्शन से देखते हैं। इति तीसरा विषय द्वार समाप्त।

अब सूत्रकार केवलज्ञान का चूलिका द्वार कहते हैं। उसमें केवलज्ञान के विषय में अबतक जो कहा, उसका कुछ संग्रह करते

हुए अवधिज्ञान और मन:पर्यव ज्ञान से अन्तर बताते हैं।

अह सव्वदव्वपरिणाम, भावविण्णत्तिकारणमणंतं।
सासयमप्पडिवाइ, एगविहं केवलं नाणं ॥६६॥

अर्थ–केवलज्ञान, सभी द्रव्यों, उनके सभी गुणों तथा सभी पर्यायों को प्रकट करता है। वह अनंत है, शाश्वत है, अप्रतिपाति है तथा एक ही भेदवाला है।

विवेचन–केवलज्ञान–१ सभी द्रव्यों और उनके जितने भी परिणाम हैं–विस्रसा और प्रयोग जन्य, उत्पाद आदि पर्याय हैं, उनके भाव का, स्वरूप का, अस्तित्व का विज्ञान कराता है। परिपूर्ण ज्ञान कराता है।

२ अनन्त है–ज्ञेय पदार्थ अनन्त होने से केवलज्ञान अनन्त है।

३ शाश्वत है–लब्धि की अपेक्षा प्रति क्षण स्थायी है, अन्तर रहित–निरन्तर विद्यमान रहता है।

४ अप्रतिपाति है–लब्धि की अपेक्षा त्रिकाल स्थायी है, अन्तररहित अनन्तकाल विद्यमान रहता है।

५ एक विध है–जघन्य उत्कृष्ट मध्यम आदि भेद रहित है,

६ केवल है–ज्ञानावरणीयकर्म के सम्पूर्ण क्षय से उत्पन्न पूर्ण शुद्ध ज्ञान है।

१ अवधि और मन:पर्यव दोनों प्रत्यक्ष ज्ञान हैं, परन्तु वे छहों द्रव्य में मात्र एक रूपी पुद्गल द्रव्य ही जानते हैं और उसकी असर्वपर्यायें (अपूर्ण पर्यायें) जानते हैं, परन्तु केवलज्ञान सभी द्रव्यों को और उनकी सभी पर्यायों को जानता है।

२ अवधिज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, इन चारों क्षेत्रों की अपेक्षा 'अवधि' युक्त है और मनःपर्याय ज्ञान तो उससे भी अधिक सीमित अवधिवाला है, परन्तु केवलज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव–इन चारों ज्ञेयों की अपेक्षा अनन्त है, अवधि रहित है।

३ अवधि और मनःपर्याय ज्ञान–दोनों क्षायोपशमिक होने से अशाश्वत हैं। केवलज्ञान की उत्पत्ति के पश्चात् ये दोनों क्षायोपशमिक ज्ञान स्थायी नहीं रहते, परंतु केवलज्ञान क्षायिक होने से शाश्वत–स्थायी रहता है।

४ अवधि और मनःपर्यायज्ञान, प्रतिपाति भी है और अप्रतिपाति भी हैं, परन्तु केवलज्ञान तो मात्र अप्रतिपाति ही होता है।

५ अवधि और मनःपर्यव, इन दोनों में कई भेद, प्रभेद और उपभेद हैं, परन्तु केवलज्ञान भेद रहित है।

६ अवधिज्ञान और मनःपर्यायज्ञान, क्षायोपशमिक हैं, पर केवलज्ञान क्षायिक है।

अब सूत्रकार, केवलज्ञानियों में श्रुतज्ञान होने की भ्रान्ति को दूर करते हैं।

केवलनाणेणऽत्थे, नाउं जे तत्थ पण्णवणजोगे।
ते भासइ तित्थयरो,वइ जोगसुयं हवइ सेसं ॥६७॥

अर्थ–केवलज्ञान द्वारा (सम्पूर्ण) भावों को जानकर, उनमें जो भाव प्रज्ञापना योग्य होते हैं, उन्हें ही तीर्थङ्कर प्रकाशित करते हैं। उनकी वाणी शेष श्रुत–द्रव्यश्रुत रूप होती है।

विवेचन-केवलज्ञान से अर्थ (पदार्थ) जानकर, उनमें जो प्रज्ञापनीय होते हैं (कहे जा सकते हैं, या कहने योग्य होते हैं) और शिष्य की ग्रहण धारण आदि शक्ति के अनुसार होते हैं, उन्हें ही तीर्थंकर भाषते हैं। वह उनके लिए वचन योग होता है और श्रोताओं के लिए द्रव्यश्रुत होता है।

केवलज्ञानी, श्रुतज्ञान को प्रकट करते हैं।' 'इस कारण केवलियों में श्रुतज्ञान होता होगा'—ऐसी धारणा बनाना यथार्थ नहीं है। क्योंकि केवलज्ञानी, श्रुतज्ञान से पदार्थ नहीं जानते, वे केवलज्ञान से जानते हैं।

केवलज्ञानी, केवलज्ञान से जितना जानते हैं, उस ज्ञान का अनन्तवाँ भाग ही शब्द द्वारा प्रकट किया जा सकता है। शेष अनन्त गुण ज्ञान ऐसा है जो शब्द द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता, क्योंकि अक्षर और अक्षर संयोग सीमित है।

केवलज्ञान का जितना ज्ञानांश, शब्द द्वारा प्रकट किया जा सकता है, उसका अल्प अंग ही कहने योग्य होता है, अर्थात् भव्यों की आत्मोन्नति के लिए प्रकट करने योग्य होता है।

जितना प्रकट करने योग्य होता है, उसका अल्प अंश ही तीर्थङ्करादि प्रकट कर सकते हैं, क्योंकि प्रकट करने योग्य अधिक है और उनकी आयु सीमित होती है।

जितना प्रकट कर सकते हैं, उसमें भी उनके समक्ष जैसा पात्र होता है, वह जितना ग्रहण धारण कर सकता है, उतना ही वे प्रकट करते हैं। अधिक नहीं।

तीर्थङ्करादि जो प्रकट करते हैं, वह उनकी अपेक्षा तो

वचनयोग ही होता है। वह उनकी अपेक्षा द्रव्यश्रुत नहीं होता, क्योंकि वह भावश्रुत से जानकर प्रकट नहीं किया जाता, परन्तु केवलज्ञान से जान कर प्रकट किया जाता है।

तीर्थङ्करादि जो प्रकट करते हैं, वह श्रोताओं के लिए 'द्रव्यश्रुत' होता है, क्योंकि उसे सुनकर वे भावश्रुत ज्ञान को प्राप्त करते हैं। इति चूलिका द्वार समाप्त।

से त्तं केवलनाणं। से त्तं नोइंदियपच्चक्खं। से त्तं पच्चक्खनाणं ॥२३॥

अर्थ-यह केवलज्ञान है। यह अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष है। यह प्रत्यक्ष ज्ञान है।

सूत्रकार, ज्ञान के प्रत्यक्ष विभाग का स्वरूप वर्णन करने के पश्चात् अब परोक्ष विभाग का स्वरूप वर्णन करते हैं।

मति ज्ञान

से किं त्तं परोक्खनाणं? परोक्खनाणं दुविहं पन्नत्तं, तं जहा-आभिणिबोहियनाणपरोक्खं च, सुयनाणपरोक्खं च।

अर्थ-प्रश्न-वह परोक्ष ज्ञान क्या है?

उत्तर-परोक्ष ज्ञान के दो भेद इस प्रकार हैं-१ आभिनिबोधिक ज्ञान और २ श्रुतज्ञान।

विवेचन-द्रव्य इन्द्रिय, द्रव्य मन, द्रव्य श्रुत श्रवण, द्रव्य श्रुत पठन, आदि की सहायता से रूपी, अरूपी, द्रव्य, गुण, पर्याय

विशेष को जानना-'परोक्ष ज्ञान' है।

सर्व प्रथम सूत्रकार 'इन दोनों का क्षयोपशम एक साथ होता है-यह बताते हैं।

जत्थ आभिणिबोहियनाणं तत्थ सुयनाणं, जत्थ सुयनाणं तत्थाभिणिबोहियाणं, दोऽवि एयाइं अण्णमण्णमणुगयाइं, तहवि पुण इत्थ आयरिया नाणत्तं पण्णवयंति, अभिनिबुज्झइत्ति आभिणिबोहियनाणं, सुणेइत्ति सुयं, मइपुव्वं जेण सुयं, न मई सुयपुव्विया ॥२४॥

अर्थ-जहाँ आभिनिबोधिक ज्ञान होता है, वहाँ श्रुत ज्ञान होता है और जहाँ श्रुत ज्ञान होता है, वहाँ आभिनिबोधिक ज्ञान होता है। ये दोनों ज्ञान अन्योन्य अनुगत हैं, तथापि आचार्य इन दोनों में नानात्व (भेद) बतलाते हैं।

जिससे 'आभिनिबोधिक' हो, वह आत्मा का ज्ञानोपयोग परिणाम-'आभिनिबोधिक ज्ञान' है, तथा जिससे 'सुना जाय' वह आत्मा का ज्ञान उपयोग परिणाम-'श्रुत ज्ञान' है।

श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है, पर मति, श्रुतपूर्वक नहीं होती, इस कारण मति और श्रुत दोनों भिन्न भिन्न हैं।

विवेचन-जिस जीव को आभिनिबोधिक ज्ञान होता है, उसे नियम से श्रुत ज्ञान होता है और जिस जीव को श्रुतज्ञान होता है, उसे नियम से आभिनिबोधिक ज्ञान होता है। इस प्रकार ये दोनों ज्ञान जिस जीव में होते हैं, वहाँ नियम से एक के होने पर दूसरा अवश्य होता है।

यह कथन ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के निमित्त से

आत्मा में उत्पन्न ज्ञानलब्धि की अपेक्षा समझना चाहिए, क्योंकि लब्धि की अपेक्षा ही एक जीव में एक समय में, एक से अधिक ज्ञान पाये जाते हैं। परन्तु यह कथन ज्ञान के उपयोग की अपेक्षा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि एक जीव में एक समय में एक से अधिक ज्ञान का या दर्शन का उपयोग नहीं पाया जाता।

आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुत ज्ञान—ये दोनों यद्यपि एक जीव में एक साथ नियम से पाये जाते हैं, फिर भी ये दोनों सर्वथा एक नहीं हैं। इन दोनों में अन्तर है। इसलिए धर्म के आदि आचार्य तीर्थंकर गणधर आदि, इन दोनों में भिन्नता बतलाते हैं।

आभिनिबोधिक ज्ञान—यहां 'अभि' का अर्थ है—अभिमुख, 'नि' का अर्थ है—नियत और 'बोध' का अर्थ है—जानना। अतएव द्रव्य इन्द्रिय और द्रव्य मन के निमित्त से, द्रव्य इन्द्रियों और द्रव्य मन ग्रहण कर सकें, ऐसे योग्य क्षेत्र में रहे हुए रूपी अरूपी द्रव्यों को आत्मा नियत रूप से जिस ज्ञान उपयोग परिणाम विशेष से जानती है, उसे 'आभिनिबोधिक ज्ञान' कहते हैं।

श्रुतज्ञान—यहां सुनने का अर्थ है—रूपी अरूपी पदार्थों के वाचक शब्द को मतिज्ञान से सुनकर, पढ़कर, या स्मरण कर, उसे और उससे वाच्य अर्थ को, उस वाचक शब्द और उससे वाच्य अर्थ में जो परस्पर वाच्य-वाचक संबंध रहा हुआ है, उसकी पर्यालोचना पूर्वक शब्दोल्लेख सहित जानना।

इसी प्रकार रूपी अरूपी पदार्थ को मतिज्ञान से ग्रहण कर

या स्मरण कर उसे और उसके वाचक शब्द को, उस वाच्य अर्थ और उसके वाचक शब्द में जो परस्पर वाच्य-वाचक संबंध रहा हुआ है, उसकी पर्यालोचना पूर्वक शब्द उल्लेख सहित जानना।

अतएव द्रव्य इन्द्रिय और द्रव्यमन के निमित्त से वाचक शब्द, या वाच्य से रूपी अरूपी अर्थ को मतिज्ञान से ग्रहण कर या स्मरण कर उस वाचक शब्द और उससे वाच्य अर्थ में जो परस्पर वाच्य-वाचक संबंध रहा हुआ है, उसकी पर्यालोचना पूर्वक शब्द उल्लेख सहित, शब्द व अर्थ को आत्मा जिस ज्ञान उपयोग परिणाम विशेष से जानती है, उसे 'श्रुतज्ञान' कहते हैं। जैसे 'घट' पदार्थ के वाचक 'घट' शब्द को सुन कर वह 'घट' पदार्थ का वाचक है और 'घट' पदार्थ 'घट' शब्द से वाच्य है, इस प्रकार जो 'घट' शब्द में 'घट' पदार्थ की वाचकता है और 'घट' पदार्थ में 'घट' शब्द से वाच्यता है, उस परस्पर में घट पदार्थ वाचकत्व, घट शब्द वाच्यत्व रूप रहे हुए सम्बन्ध की पर्यालोचना पूर्वक 'घट' शब्द व 'घट' पदार्थ को जानना 'घट' विषयक श्रुतज्ञान है।

श्रुतज्ञान में वाच्य पदार्थ और वाचक शब्द के परस्पर सम्बन्ध का ज्ञान नियम से और मुख्य रूप से रहता है तथा शब्द उल्लेख भी नियम से होता है।

परन्तु मतिज्ञान में जो रूपी अरूपी ज्ञान होता है, उसका अनन्त गुण भाग ऐसा है, जिसका वाचक शब्द, लोक में होता ही नहीं, वह मात्र स्वसंवेदन गम्य होता है। अतएव उसमें तो वाच्य

वाचक सम्बन्ध की पर्यालोचना हो ही नहीं सकती।

शेष रूपी अरूपी पदार्थ का अनन्तवाँ भाग ज्ञान जो ऐसा है, जिसमें वाच्य वाचक सम्बन्ध सम्भव है। परन्तु मतिज्ञान द्वारा उसमें वाच्य अर्थ या वाचक शब्द का ज्ञान मुख्य होता है, शब्दार्थ गत परस्पर वाच्य वाचक के सम्बन्ध की पर्यालोचना बहुत गौण होती है।

इसी प्रकार शब्द उल्लेख भी मतिज्ञान में अनिवार्य नहीं है। यह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में अन्तर है।

शङ्का—जब श्रुतज्ञान, श्रोत्रइन्द्रिय के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों से भी संभव है, तब श्रुतज्ञान में सुनने की और श्रोत्र इन्द्रिय की मुख्यता क्यों है ?

समाधान—यद्यपि श्रुतज्ञान अन्य सभी इन्द्रियों से संभव है, पर सुनना और श्रोत्रेन्द्रिय, ये दोनों श्रुतज्ञान की उत्पत्ति में प्रमुख निमित्त है। अतएव इसको मुख्यता दी गई है।

शङ्का—क्या एकेन्द्रियों में भी श्रुतज्ञान (अज्ञान) होता है ? हां, तो किस रूप में ?

समाधान—हां, वह आहार संज्ञा आदि के समय होता है, पर वह अत्यन्त मन्द रूप होता है—मन्द ईहा अवाय के समान। अतएव वह शब्द द्वारा प्रकट करना कठिन है।

पहले जीव, वाचक शब्द को ग्रहण करता है या वाच्य पदार्थ को ग्रहण करता है। फिर उन दोनों में जो वाच्य वाचक संबन्ध है उसकी पर्यालोचना पूर्वक शब्द व अर्थ को जानता है। परन्तु वाच्य पदार्थ या वाचक शब्द को ग्रहण किये बिना वाच्य

वाचक संबंध, पर्यालोचनापूर्वक शब्द व अर्थ को नहीं जानता।

वाच्य पदार्थ या वाचक शब्द को ग्रहण करना–मतिज्ञान है और वाच्य वाचक सम्बन्ध पर्यालोचना पूर्वक शब्द व अर्थ को जानना–श्रुतज्ञान है।

इस प्रकार श्रुतज्ञान होने के लिए, पहले मति ज्ञान का होना अनिवार्य है। अतएव मतिज्ञान, श्रुतज्ञान का कारण है, परन्तु मतिज्ञान होने के लिए, पहले श्रुतज्ञान का होना अनिवार्य नहीं है। अतएव श्रुतज्ञान, मतिज्ञान का कारण नहीं है।

अथवा यदि किसी को श्रुतज्ञान तीव्र करना है, तो उसे मतिज्ञान तीव्र होना आवश्यक है। यदि उसका मतिज्ञान तीव्र नहीं हुआ, तो उसका श्रुतज्ञान मन्द रहेगा।

इस प्रकार श्रुतज्ञान की तीव्रता मन्दता में मतिज्ञान की तीव्रता मन्दता सहायक है। अतएव मतिज्ञान, श्रुतज्ञान की तीव्रता मन्दता का कारण है, पर श्रुतज्ञान, मतिज्ञान की तीव्रता मन्दता का एकान्त कारण नहीं है, क्योंकि कइयों में श्रुतज्ञान तीव्र न होते हुए भी मतिज्ञान तीव्र पाया जाता है।

अथवा यदि किसी को श्रुतज्ञान का विकास करना है, तो उसमें मतिज्ञान का विकास होना आवश्यक है। अनुप्रेक्षा, चिन्तन, तर्कणा शक्ति का विकसित होना आवश्यक है। यदि उसमें मतिज्ञान विकसित न हुआ, तो उसका श्रुतज्ञान विकसित नहीं होगा।

इस प्रकार श्रुतज्ञान के विकास में मतिज्ञान का विकास सहायक है। अतएव मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के विकास का कारण

वाचक सम्बन्ध की पर्यालोचना हो ही नहीं सकती।

शेष रूपी अरूपी पदार्थ का अनन्तवाँ भाग ज्ञान जो ऐसा है, जिसमें वाच्य वाचक सम्बन्ध सम्भव है। परन्तु मतिज्ञान द्वारा उसमें वाच्य अर्थ या वाचक शब्द का ज्ञान मुख्य होता है, शब्दार्थ गत परस्पर वाच्य वाचक के सम्बन्ध की पर्यालोचना बहुत गौण होती है।

इसी प्रकार शब्द उल्लेख भी मतिज्ञान में अनिवार्य नहीं है। यह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में अन्तर है।

शङ्का—जब श्रुतज्ञान, श्रोत्रइन्द्रिय के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों से भी संभव है, तब श्रुतज्ञान में सुनने की और श्रोत्र इन्द्रिय की मुख्यता क्यों है ?

समाधान—यद्यपि श्रुतज्ञान अन्य सभी इन्द्रियों से संभव है, पर सुनना और श्रोत्रेन्द्रिय, ये दोनों श्रुतज्ञान की उत्पत्ति में प्रमुख निमित्त है। अतएव इसको मुख्यता दी गई है।

शङ्का—क्या एकेन्द्रियों में भी श्रुतज्ञान (अज्ञान) होता है ? हां, तो किस रूप में ?

समाधान—हां, वह आहार संज्ञा आदि के समय होता है, पर वह अत्यन्त मन्द रूप होता है—मन्द ईहा अवाय के समान। अतएव वह शब्द द्वारा प्रकट करना कठिन है।

पहले जीव, वाचक शब्द को ग्रहण करता है या वाच्य पदार्थ को ग्रहण करता है। फिर उन दोनों में जो वाच्य वाचक संबन्ध है उसकी पर्यालोचना पूर्वक शब्द व अर्थ को जानता है। परन्तु वाच्य पदार्थ या वाचक शब्द को ग्रहण किये बिना वाच्य

वाचक संबंध, पर्यालोचनापूर्वक शब्द व अर्थ को नहीं जानता।

वाच्य पदार्थ या वाचक शब्द को ग्रहण करना—मतिज्ञान है और वाच्य वाचक सम्बन्ध पर्यालोचना पूर्वक शब्द व अर्थ को जानना—श्रुतज्ञान है।

इस प्रकार श्रुतज्ञान होने के लिए, पहले मति ज्ञान का होना अनिवार्य है। अतएव मतिज्ञान, श्रुतज्ञान का कारण है, परन्तु मतिज्ञान होने के लिए, पहले श्रुतज्ञान का होना अनिवार्य नहीं है। अतएव श्रुतज्ञान, मतिज्ञान का कारण नहीं है।

अथवा यदि किसी को श्रुतज्ञान तीव्र करना है, तो उसे मतिज्ञान तीव्र होना आवश्यक है। यदि उसका मतिज्ञान तीव्र नहीं हुआ, तो उसका श्रुतज्ञान मन्द रहेगा।

इस प्रकार श्रुतज्ञान की तीव्रता मन्दता में मतिज्ञान की तीव्रता मन्दता सहायक है। अतएव मतिज्ञान, श्रुतज्ञान की तीव्रता मन्दता का कारण है, पर श्रुतज्ञान, मतिज्ञान की तीव्रता मन्दता का एकान्त कारण नहीं है, क्योंकि कइयों में श्रुतज्ञान तीव्र न होते हुए भी मतिज्ञान तीव्र पाया जाता है।

अथवा यदि किसी को श्रुतज्ञान का विकास करना है, तो उसमें मतिज्ञान का विकास होना आवश्यक है। अनुप्रेक्षा, चिन्तन, तर्कणा शक्ति का विकसित होना आवश्यक है। यदि उसमें मतिज्ञान विकसित न हुआ, तो उसका श्रुतज्ञान विकसित नहीं होगा।

इस प्रकार श्रुतज्ञान के विकास में मतिज्ञान का विकास सहायक है। अतएव मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के विकास का कारण

है, पर श्रुतज्ञान, मतिज्ञान के विकास का एकान्त कारण नहीं, क्योंकि कइयों में श्रुतज्ञान विकसित न होते हुए भी मतिज्ञान में विकास पाया जाता है।

अथवा–यदि किसी को प्राप्त श्रुतज्ञान टिकाना है, तो उसमें स्मृतिरूप मतिज्ञान होना आवश्यक है। यदि उसमें स्मृति रूप मतिज्ञान नहीं हुआ, तो श्रुतज्ञान टिक नहीं सकता।

इस प्रकार श्रुतज्ञान के टिकाव में मतिज्ञान सहायक है। अतएव मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के टिकाव का कारण है, पर श्रुतज्ञान, मतिज्ञान के टिकाव का कारण नहीं है, क्योंकि मतिज्ञान स्वतः टिकता है, श्रुतज्ञान के कारण नहीं।

यों श्रुतज्ञान के ग्रहण में, प्रगति में, विकास में और टिकाव में मतिज्ञान पूर्व सहायक है। अतएव श्रुतज्ञान, मतिपूर्वक है। पर मतिज्ञान के ग्रहण में और टिकाव में श्रुतज्ञान किंचित् भी सहायक नहीं है और प्रगति और विकास में भी एकान्त सहायक नहीं है। अतएव मतिज्ञान, श्रुतपूर्वक नहीं है। इस कारण मति और श्रुत, ये दोनों ज्ञान भिन्न भिन्न हैं, एक नहीं।

अब सूत्रकार मति मति में भी अन्तर बताते हैं।

अविसेसिया मई, मइनाणं च मइअन्नाणं च। विसेसिया सम्मदिट्ठिस्स मई मइनाणं, मिच्छदिट्ठिस्स मई मइअन्नाणं। अविसेसियं सुयं सुयनाणं च सुयअन्नाणं च। विसेसियं सुयं सम्मदिट्ठिस्स सुयं सुयनाणं, मिच्छदिट्ठिस्स सुयं सुयअन्नाणं ॥२५॥

अर्थ–अविशेषित मति, मतिज्ञान भी हो सकती है और मति अज्ञान भी हो सकती है, परन्तु विशेषित होने पर सम्यग्दृष्टि की मति 'मतिज्ञान' ही होगी और मिथ्यादृष्टि की मति, 'मति अज्ञान' ही होगी। विशेषित न होने पर श्रुत, श्रुतज्ञान भी हो सकता है और श्रुतअज्ञान भी हो सकता है, परन्तु विशेषित होने पर सम्यग्दृष्टि का श्रुत, 'श्रुतज्ञान' ही होगा और मिथ्यादृष्टि का श्रुत, 'श्रुतअज्ञान' ही होगा।

विवेचन–विशेषित मति, जैसे–सम्यग्दृष्टि की मति, मतिज्ञान ही होगी। क्योंकि वह सम्यग्दृष्टित्व के स्पर्श से पवित्र हुई है, जिनागम के अभ्यास से असाधारण हुई है, स्वरूप से अधिक यथार्थ हुई है, आदि से अन्त तक विरोध रहित–एक समान है। सम्यक् अनेकान्तवाद युक्त है, सम संवेगादि में प्रवृत्त करती है, अहिंसादि चारित्र को उत्पन्न करती है, भव विच्छेद में निमित्त बनती है और कर्म क्षय कर मोक्ष प्राप्ति में कारणभूत बनती है।

मिथ्यादृष्टि की मति, मतिअज्ञान ही होगी, क्योंकि वह मिथ्यादृष्टित्व के स्पर्श से मलिन है, कुशास्त्र के अभ्यास से तुच्छ है, स्वरूप से प्रायः अयथार्थ है, पूर्वापर विरोध युक्त है, एकान्तवाद अथवा दूषित अनेकान्त वाद युक्त है, संसार रुचि उत्पन्न करती है, हिंसादि में प्रवृत्त करती है, भव वृद्धि का कारण बनती है और संसार परिभ्रमण में निमित्तभूत होती है।

उपलक्षण से–अवधि अवधि में भी अन्तर समझना चाहिए, वह इस प्रकार है।

अविशेषित अवधि, अवधिज्ञान भी हो सकता है और अवधि अज्ञान (विभंग ज्ञान) भी। पर विशेषित अवधि,–सम्यग् दृष्टि की अवधि, अवधिज्ञान ही होगी और मिथ्यादृष्टि की अवधि, अवधिअज्ञान (विभंग ज्ञान) ही होगी।

पांच ज्ञानों में मति श्रुत और अवधि–ये तीनों ही ज्ञान और अज्ञान–यों दोनों रूप में हो सकते हैं। क्योंकि ये तीनों, सम्यग्-दृष्टि और मिथ्यादृष्टि–दोनों में पाये जाते हैं। पर मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान, ये दोनों ज्ञान रूप ही होते हैं, क्योंकि ये दोनों सम्यग्दृष्टि में ही पाये जाते हैं, मिथ्यादृष्टि में नहीं।

अब जिज्ञासु मति ज्ञान के स्वरूप को जानने के लिए पूछता है।

से किं तं आभिणिबोहियनाणं ? आभिणिबोहियनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा– सुयनिस्सियं च, अस्सुयनिस्सियं च।

प्रश्न–वह आभिनिबोधिक ज्ञान क्या है?

उत्तर–आभिनिबोधिक ज्ञान के दो भेद हैं। वे इस प्रकार हैं–१ श्रुत निश्रित और २ अश्रुत निश्रित।

विवेचन–द्रव्य इन्द्रिय और द्रव्य मन के निमित्त से, नियत रूप से, रूपी अरूपी पदार्थ को जानना–आभिनिबोधिक ज्ञान है।

मतिश्रुत का अन्तर बताते समय ऊपर बताया गया है कि 'मतिज्ञान के स्वामी चारों गति के सम्यग्दृष्टि जीव हैं', अतएव अब सूत्रकार, शिष्य की जिज्ञासा पूर्ति के लिए मतिज्ञान के कितने भेद हैं, तथा मतिज्ञान कितने द्रव्य, क्षेत्र, काल और

भाव को ज़ानता है, ये दो बातें बतायेंगे।

अश्रुत-निश्रित मतिज्ञान का वर्णन और भेद अल्प होने से सूत्रकार पहले उसका वर्णन करते हैं।

से किं तं अस्सुयनिस्सियं ? अस्सुयनिस्सियं चउविहं पण्णत्तं, तं जहा–

उप्पत्तिया १ वेणइया २, कम्मया ३, परिणामिया ४।
बुद्धी चउव्विहा वुत्ता, पंचमा नोवलब्भइ ॥ ६८ ॥

अर्थ–प्रश्न–वह अश्रुत निश्रित आभिनिबोधिक ज्ञान क्या है ?

उत्तर–अश्रुतनिश्रित के चार भेद हैं। यथा–१ औत्पातिकी २ वैनेयिकी ३ कार्मिकी तथा ४ पारिणामिकी। अश्रुतनिश्रित के ये चार ही भेद हैं, क्योंकि पाँचवा भेद नहीं मिलता।

विवेचन–जिस मतिज्ञान का श्रुतज्ञान से सम्बन्ध नहीं हो, जिस मति ज्ञान में सीखा हुआ श्रुत ज्ञान काम नहीं आता हो, जिस मतिज्ञान पर पहले सीखे हुए श्रुत ज्ञान का प्रभाव नहीं हो, उस मतिज्ञान को 'अश्रुत-निश्रित आभिनिबोधिक ज्ञान' कहते हैं। इसका दूसरा नाम 'बुद्धि' है।

भेद–अश्रुत-निश्रित मतिज्ञान के चार भेद हैं। वे इस प्रकार हैं।

१ औत्पातिकी–जिसमें गुरु-विनय, काम का अनुभव, लम्बे काल का पूर्वापर विचार–ये कारण नहीं हों और जो केवल क्षयोपशम मात्र से उत्पन्न हो, उसे 'औत्पातिकी बुद्धि' कहते हैं।

२ वैनेयिकी–वंदनीय पुरुषों के प्रति विनय वैयावृत्य आरा-

धना आदि से जो बुद्धि उत्पन्न होती है, या बुद्धि में विशेषता आती है, उसे 'वैनेयिकी बुद्धि' कहते हैं।

३ कार्मिकी—सुनार आदि के काम करते रहने से उस विषयक जो बुद्धि उत्पन्न होती है, या बुद्धि में विशेषता आती हैं, वह 'कार्मिकी बुद्धि' है।

४ पारिणामिकी—लम्बे काल तक पहले पीछे के पर्यालोचन से आत्मा में परिणमन होकर जो बुद्धि विशेष उत्पन्न होती है, वह 'पारिणामिकी बुद्धि' है।

बुद्धि के ये चार भेद इसलिये हैं कि—इन चारों में समाविष्ट न हो सके, ऐसी पाँचवीं बुद्धि, केवलज्ञान में भी उपलब्ध नहीं होती।

अब सूत्रकार स्वयं औत्पातिकी बुद्धि के लक्षण प्रस्तुत करते हैं।

पुव्वमदिट्ठमस्सुय-मवेइय,-तक्खणविसुद्धगहियत्था।
अव्वाहयफलजोगा, बुद्धी उप्पत्तिया नाम ॥६९॥

अर्थ—जो विषय, पहले कभी देखने में नहीं आया, सुनने और सोचने में भी नहीं आया, ऐसा विषय उपस्थित होने पर, जो बुद्धि तत्काल सही हल खोज निकाले, वह 'औत्पातिकी' बुद्धि है।

विवेचन—जो बुद्धि अन्य किसी भी कारण के विना तथाविध पटु क्षयोपशम से स्वतः उत्पन्न हो, वह 'औत्पातिकी' बुद्धि है। उसके द्वारा जिसे पहले कभी घटित होते हुए आँख से देखा नहीं, कभी किसी जानकार से उस विषय में कुछ

सुना भी नहीं और मन से भी कभी उस विषय पर विचार नहीं किया। वह विषय भी तत्क्षण–बिना विलम्ब के तत्काल, समझ में आजाता है और वह भी विशुद्ध रूप में समझ में आ जाता है।

औत्पत्तिकी बुद्धि से जो काम किया जाता है, उसकी सफलता में कभी बाधा नहीं आती। यदि आ भी जाय, तो बाधा नष्ट हो जाती है और काम में सफलता जुड़कर रहती है।

अब सूत्रकार औत्पत्तिकी बुद्धि किसे कहते हैं?–यह सरलता से समझ में आ जाय, अतएव औत्पत्तिकी बुद्धि विषयक २७ दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं–

भरहसिल पणिय रुक्खे, खुड्डुग पड सरड काय उच्चारे।
गय घयण गोल खंभे, खुड्डुग मग्गि त्थि पइ पुत्ते ॥७०॥

अर्थ–१ भरत शिला, २ पणित–होड़, ३ वृक्ष ४ खुड्डुग–अंगूठी, ५ पट–वस्त्र, ६ शरट–गिरगिट, ७ काक, ८ उच्चार–विष्ठा, ९ गज, १० घयण–भाण्ड, ११ गोल, १२ स्तंभ, १३ क्षुल्लक–वाल परिवाज्रक, १४ मार्ग, १५ स्त्री, १६ पति, १७ पुत्र।

अव सूत्रकार उनका संग्रह करनेवाली गाथा कहते हैं।

भरहसिल मिंढ कुक्कुड तिल वालुय हत्थि वगड वणसंडे।
पायस अइया पत्ते, खाडहिला पंच पिअरो य ॥७१॥

अर्थ–१ भरतपुत्र रोहक, २ शिला, ३ मेढ़ा, ४ कुर्कुट, ५ तिल, ६ वालुका, ७ हस्ति, ८ अगड–कुआँ, ९ वनखण्ड,

१० पायस–खीर, ११ अतिग–विलक्षण प्रस्थान, या १२ अजिका–बकरी १३ पत्र, १४ गिलहरी और १५ पाँच पिता।

ये कथाएँ इस प्रकार हैं;–

१ रोहक का माता से बदला लेना

उज्जयिनी नगरी के पास नटों का एक गांव था। उसमें भरत नाम का एक नट रहता था। वह अपनी पत्नी के साथ आनन्द पूर्वक समय व्यतीत करता था। कुछ समय के बाद उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रोहक रक्खा गया। जब रोहक छोटा ही था तभी उसकी माता का देहान्त हो गया। पुत्र की उम्र छोटी देख कर उसका पालन पोषण करने के लिए और अपनी सेवा करने के लिए भरत ने दूसरा विवाह कर लिया। रोहक उस सौतेली माँ के आश्रय में रहने लगा, किन्तु वह रोहक के साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार नहीं करती थी। उसके कठोर व्यवहार से बालक रोहक बहुत दुखी हो गया। एक दिन रोहक ने अपनी सौतेली माँ से कहा कि–"माँ! तू मेरे साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार नहीं करती है, यह अच्छा नहीं है"। माँ ने उसकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया। उसने उपेक्षापूर्वक कहा–'अरे रोहक! यदि मैं तेरे साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती हूँ, तो तू मेरा क्या कर लेगा"? रोहक ने कहा-'माँ! मैं ऐसा कार्य करूँगा कि जिससे तुझे मेरे पैरों पर गिरना पड़ेगा"। माँ ने कहा–'अरे रोहक! तू अभी बच्चा है। छोटे मुंह बड़ी बात बनाता है? अच्छा! मैं देखती

हूँ कि तू मेरा क्या कर लेगा" ? यह कह कर वह सदा की भाँति अपने कार्य में लग गई।

रोहक अपनी बात को पूरी करने का अवसर देखने लगा। एक दिन रात के समय वह अपने पिता के साथ बाहर सोया हुआ था। उसकी माँ मकान में सोई हुई थी। आधी रात के समय रोहक एक दम चिल्लाने लगा–"पिताजी ! उठिये। घर में से निकल कर कोई पुरुष भागा जा रहा है।" रोहक के चिल्लाने से भरत एकदम उठा और उससे पूछने लगा– "किधर ? किधर ?" बालक ने कहा–"पिताजी ! वह अभी इधर से भाग गया है।" बालक की उपरोक्त बात सुन कर भरत को अपनी स्त्री के प्रति शंका हो गई। वह सोचने लगा– "मेरी स्त्री का आचरण ठीक नहीं है। यहाँ कोई जार पुरुष आता है"। इस प्रकार अपनी स्त्री को दुराचारिणी समझ कर भरत ने उसके साथ सारे सम्बन्ध तोड़ दिये। यहाँ तक कि उसने उसके साथ बोलना भी बन्द कर दिया। इस प्रकार पति को निष्कारण रुठा देख कर वह समझ गई कि यह सब करतूत बालक रोहक की ही है। इसको प्रसन्न किये बिना मेरा काम नहीं चलेगा। ऐसा सोच कर उसने प्रेमपूर्वक अनुनय विनय करके और भविष्य में अच्छा व्यवहार करने का विश्वास दिला कर बालक रोहक को प्रसन्न किया। रोहक ने कहा–"माँ ! अब मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि तुम्हारे प्रति पिताजी की अप्रसन्नता शीघ्र ही दूर हो जायगी"।

एक दिन सदा की भांति रोहक अपने पिता के साथ बाहर

सोया हुआ था कि आधी रात के समय एक दम चिल्लाने लगा-"पिताजी ! उठिये । कोई पुरुष घर में से निकल कर बाहर जा रहा है" । बालक की बात सुन कर भरत तत्काल उठा और हाथ में तलवार लेकर कहने लगा कि-'बतला, वह पुरुष कहाँ है ? उस जार पुरुष का सिर मैं अभी तलवार से काट डालता हूँ" । बालक ने अपनी छाया दिखाते हुए कहा-"पिताजी ! वह पुरुष यह है ।" भरत ने पूछा-"क्या उस दिन भी ऐसा ही पुरुष था ?" बालक ने कहा-"हाँ" । बालक की बात सुन कर भरत सोचने लगा-"बालक के कहने मात्र से, निर्णय किये बिना ही मैंने अपनी स्त्री के साथ अप्रीति का व्यवहार किया । यह अच्छा नहीं किया ।" इस प्रकार पश्चात्ताप करके वह अपनी स्त्री के साथ पहले की तरह प्रेम का व्यवहार करने लगा ।

अब रोहक की सौतेली माता, रोहक के साथ अच्छा व्यवहार करने लगी, किन्तु रोहक अब सदा शङ्कित रहने लगा । उसने सोचा-'मेरे दुर्व्यवहार से अप्रसन्न हुई माता, कदाचित् विष आदि देकर मुझे मार न दे; इसलिए अब मुझे अकेले भोजन नहीं करना चाहिए ।' ऐसा सोच कर उस दिन से रोहक, सदा अपने पिता के साथ ही भोजन करने लगा और सदा पिता के साथ ही रहने लगा ।

एक समय भरत, किसी कार्यवश उज्जयिनी गया । रोहक भी उसके साथ गया । नगरी स्वर्ग के समान शोभित थी । उसे देख कर रोहक बहुत प्रसन्न हुआ । उसने अपने मन में नगरी का पूरा चित्र खींच लिया । वहाँ का कार्य करके भरत वापिस

अपने गाँव की ओर रवाना हुआ। जब वह शहर से निकल कर क्षिप्रा नदी के किनारे पहुँचा, तब उसे एक चीज की याद आई, जिसे वह शहर में भूल आया था। भरत को वहीं बिठा कर वह वापिस शहर में गया। इधर रोहक ने क्षिप्रा नदी के किनारे की बालू रेत पर राजमहल तथा कोट किले सहित उज्जयिनी नगरी का हूबहू चित्र खींच दिया। संयोग वश घोड़े पर सवार हुआ राजा उधर आ निकला। अपनी चित्रित की हुई नगरी की ओर राजा को आते हुए देख कर रोहक बोला –"ऐ घुड़सवार! इस रास्ते से मत आओ।" घुड़सवार बोला– "क्यों? क्या है?" रोहक बोला–"देखते नहीं? यह राज-भवन है। इसमें कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता।" बालक की बात सुन कर कौतुकवश राजा घोड़े से नीचे उतरा। उसके लिखे हुए नगरी के हूबहू चित्र को देख कर राजा बड़ा विस्मित हुआ। उसने बालक से पूछा–"तुमने पहले कभी इस नगरी को देखा है"? बालक ने कहा–"नहीं। आज ही मैं गांव से आया हूँ और आज ही पहली बार नगरी को देखा है।" बालक की अपूर्व धारणा शक्ति को देख कर, राजा चकित हो गया। वह मन ही मन बालक की बुद्धि की प्रशंसा करने लगा। राजा ने उससे पूछा–"वत्स! तुम्हारा क्या नाम है और तुम कहाँ रहते हो?" बालक ने कहा–"मेरा नाम रोहक है और मैं इस पास वाले नटों के गांव में रहता हूँ।" इतने में रोहक का पिता शहर में भूली हुई वस्तु लेकर वापिस वहाँ आ पहुँचा। रोहक अपने पिता के साथ रवाना हो गया।

राजा भी अपने महल में चला आया और सोचने लगा कि मेरे ४९९ मन्त्री हैं। यदि कोई अतिशय बुद्धिशाली प्रधान मन्त्री बना दिया जाय, तो मेरा राज्य सुखपूर्वक चलेगा। ऐसा विचार कर राजा ने रोहक की बुद्धि की परीक्षा करने का निश्चय किया। रोहक की औत्पत्तिकी बुद्धि की यह पहली कथा है।

२ शिला की छत

एक दिन राजा ने नटों के उस गाँव में यह आज्ञा भेजी कि "तुम सब लोग मिल कर राजा के योग्य एक मण्डप तैयार करो। मण्डप ऐसी चतुराई से बनना चाहिए कि गाँव के बाहरवाली बड़ी शिला उस मण्डप का छत बन जाय, किन्तु उस शिला को यहाँ से बाहर नहीं निकाला जाय और न हटाया भी जाय।"

राजा की उपरोक्त आज्ञा सुन कर गांव के सभी लोग बड़े असमञ्जस में पड़ गये। गाँव के बाहर सभा करके सब लोग परस्पर विचार करने लगे कि राजा की इस कठिन आज्ञा का किस प्रकार पालन किया जाय? आज्ञा का पालन न होने पर राजा कुपित होकर अवश्य ही भारी दण्ड देगा। इस तरह चिन्तित होकर विचार करते करते दोपहर हो गया, किन्तु राजा की आज्ञा को पूरा करने का कोई उपाय नहीं सूझा।

रोहक, पिता के बिना भोजन नहीं करता था। इसलिए भूख से व्याकुल होकर वह गांव के बाहर अपने पिता भरत के

पास आया और कहने लगा–"पिताजी ! मुझे बहुत भूख लगी है। भोजन के लिए जल्दी घर चलिये।" भरत ने कहा–"वत्स ! तुम सुखी हो। गांव के कष्ट को तुम नहीं जानते।" रोहक ने पूछा–"गांव पर क्या कष्ट आया है ?" भरत ने रोहक को राजा की आज्ञा कह सुनाई। सारी बात सुन लेने पर हँसते हुए रोहक ने कहा–"पिताजी ! आप लोग चिन्ता न कीजिए। यदि गांव पर यही कष्ट है, तो यह तो सहज ही दूर किया जा सकता है।" गांव वालों ने पूछा–"वत्स ! यह कैसे ?" रोहक ने कहा–"मण्डप बनाने के लिए शिला के चारों तरफ जमीन खोद डालो। यथास्थान चारों कोनों पर खम्भे लगा कर बीच की मिट्टी को भी खोद डालो। फिर चारों तरफ दीवार बना दो, मण्डप तैयार हो जायगा। इस शिला को बाहर निकाले बिना ही इसका छत बन जायगा। इस तरह राजा की आज्ञा पूरी हो जायगी।"

रोहक का बताया हुआ उपाय सभी लोगों को ठीक लगा। उनकी चिन्ता दूर हो गई। सभी लोग भोजन करने के लिए अपने अपने घर गये। बाद में रोहक की बताई हुई विधि के अनुसार जमीन खोद कर मण्डप बनाने का काम आरम्भ किया गया। कुछ ही दिनों में सुन्दर मण्डप बन कर तैयार हो गया। इसके बाद उन्होंने राजा की सेवा में निवेदन किया कि 'स्वामिन् ! आपकी आज्ञानुसार मण्डप बना दिया गया है। उस पर शिला की छत भी लगा दी गई है"। राजा ने पूछा–'कैसे ?" तब उन्होंने मण्डप बनाने की सारी हकीकत कह सुनाई। राजा

ने पूछा—"इस प्रकार मण्डप बनाने का उपाय किसने बतलाया? यह किसकी बुद्धि का काम है"? गाँव के लोगों ने कहा—"स्वामिन्! भरत के पुत्र रोहक की बुद्धि का यह काम है। उसी ने हम लोगों को यह उपाय बताया था।" लोगों की बात सुन कर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई।

रोहक की बुद्धि का यह दूसरा उदाहरण है।

३ मेढ़े का वजन

कुछ दिनों बाद राजा ने रोहक की बुद्धि की परीक्षा के लिए एक मेढ़ा भेजा और गाँव वालों को यह आज्ञा दी कि पन्द्रह दिन के बाद हम इस मेढ़े को वापिस मंगाएँगे। आज इसका जितना वजन है, पन्द्रह दिन के बाद भी उतना ही वजन रहना चाहिए। मेढ़ा वजन में न घटना चाहिए और न बढ़ना चाहिए।

राजा की उपरोक्त आज्ञा सुन कर गाँव के लोग फिर चिन्तित हुए। वे विचारने लगे—"यह कैसे होगा? यदि मेढ़े को खाने के लिए दिया जायगा, तो वह वजन में बढ़ेगा और यदि खाने को नहीं दिया जायगा, तो वजन में अवश्य घट जायगा। राजा की यह आज्ञा बड़ी विचित्र है। इसका किस तरह पालन किया जाय?" इस प्रकार गाँव के लोग चिन्ता में पड़ गये। राजा की आज्ञा को पूरा करने का उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा। वे लोग, रोहक की बुद्धि का चमत्कार देख चुके थे। इसलिए उन्होंने रोहक को बुलाया और कहा कि—"वत्स! तुमने अपने

बुद्धिबल से पहले भी गाँव के कष्ट को दूर किया था। आज फिर गाँव पर कष्ट आया है। तुम अपने बुद्धिबल से इसे दूर करो।'' ऐसा कह कर उन्होंने राजा की आज्ञा रोहक को कह सुनाई। रोहक ने कहा–''खाने के लिए मेढ़े को घास जौ आदि यथासमय दिया करो, किंतु इसके सामने एक भेड़िया बांध दो। यथासमय दिया जानेवाला भोजन इसे घटने नहीं देगा और भेड़िया का डर इसे बढ़ने नहीं देगा। इस प्रकार दोनों मिलकर इसे वजन में न घटने देंगे और न बढ़ने देंगे।

रोहक की बात सब लोगों को पसन्द आ गई। उन्होंने रोहक के कथनानुसार मेढ़े की व्यवस्था कर दी। पन्द्रह दिन बाद गाँववालों ने वह मेढ़ा राजा को वापिस लौटा दिया। राजा ने उसे तोल कर देखा, तो उसका वजन पूरा निकला, वजन न तो घटा और न बढ़ा। राजा के पूछने पर उन लोगों ने सारा वृत्तांत कह दिया। राजा रोहक की बुद्धि से बड़ा प्रसन्न हुआ। रोहक की बुद्धि का यह तीसरा उदाहरण है।

४ मुर्गे का युद्धाभ्यास

रोहक की बुद्धि की परीक्षा करने के लिए कुछ दिनों के बाद राजा ने, गांववालों के पास एक मुर्गा भेजा और यह आज्ञा दी कि 'दूसरे मुर्गे के बिना ही इस मुर्गे को लड़ना सिखाओ और इसे लड़ाकू बना कर वापिस हमारे पास भेजो'।

राजा की आज्ञा का पालन करने के लिए गांव के लोग

उपाय सोचने लगे, किंतु उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा। उन्होंने रोहक से इस विषय में पूछा। रोहक ने कहा—"इस मुर्गे के सामने एक बड़ा दर्पण रख दो। आइने में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर यह उसे दूसरा मुर्गा समझेगा और उसके साथ लड़ने लगेगा। इस तरह यह लड़ाकू बन जायगा।"

गांव के लोगों ने रोहक के परामर्श के अनुसार किया। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में वह मुर्गा लड़ाकू बन गया। इससे राजा बहुत प्रसन्न हुआ। रोहक की बुद्धि का यह चौथा उदाहरण है।

५ तिलों की गिनती

कुछ दिनों के बाद राजा ने तिलों से भरी हुई कुछ गाड़ियाँ उस गांव के लोगों के पास भेजी और कहलाया कि—"इनमें कितने तिल हैं? उनकी संख्या शीघ्र बताओ"।

राजा की उपरोक्त आज्ञा सुनकर सभी लोग चिन्तित हो गये। वे सोचने लगे कि—"तिलों का वजन बताया जा सकता है, किंतु इनकी गिनती कैसे बताई जाय?" उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा। तब रोहक को बुलाकर पूछा। रोहक ने कहा—"आप सभी लोग राजा के पास जाओ और कहो कि "स्वामिन्! हम गणितज्ञ तो नहीं हैं जो इन तिलों की गिनती बता सकें। किंतु आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके उपमा से कहते हैं कि 'आकाश में जितने तारे हैं, उतने ही ये तिल हैं। यदि आपको विश्वास नहीं हो, तो राजपुरुषों द्वारा तिलों की और तारों की गिनती

करवा लीजिये, आपको स्वयं पता लग जायगा।"

लोगों को रोहक की बात पसन्द आ गई। राजा के पास जाकर उन्होंने वैसा ही उत्तर दिया। उनका उत्तर सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने पूछा—"यह उत्तर किसने बताया है?" लोगों ने कहा—"यह रोहक की बुद्धि का काम है। उसीने हमें यह उत्तर बताया है।" यह बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ।

रोहक की बुद्धि का यह पाँचवाँ उदाहरण है।

६ बालू की रस्सी

कुछ समय पश्चात् राजा ने गांववालों के पास यह आज्ञा भेजी कि 'तुम्हारे गांव के पास जो नदी है, उसकी बालू बहुत बढ़िया है। उस बालू की एक रस्सी बनाकर शीघ्र भेज दो।'

राजा की उपरोक्त आज्ञा सुनकर गाँव के लोग, बड़े असमञ्जस में पड़े। इस विषय में भी उन्होंने रोहक से पूछा। रोहक ने कहा—"तुम राजा के पास जाकर अर्ज करो कि "स्वामिन्! हम तो नट हैं और नाचना जानते हैं। हम रस्सी बनाना नहीं जानते, परन्तु आपकी आज्ञा का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है। इसलिए हमारी प्रार्थना है कि राज-भण्डार तो बहुत प्राचीन है। उसमें बालू की बनी हुई कोई पुरानी रस्सी हो, तो नमूने के तौर पर हमें दे दीजिये। हम उसे देखकर उसी के अनुसार नई रस्सी बनाकर भेज देंगे।"

गाँव के लोगों ने राजा के पास जाकर रोहक के कथनानुसार निवेदन किया। यह उत्तर सुनकर राजा बहुत लज्जित हुआ। उसने उनसे पूछा—"तुम को यह युक्ति किसने बताई?" लोगों ने रोहक का नाम बताया। रोहक की बुद्धि से राजा बहुत खुश हुआ। रोहक की बुद्धि का यह छठा उदाहरण है।

७ हाथी की मौत

एक समय राजा ने एक बूढ़ा बीमार हाथी गाँववालों के पास भेजा और यह आदेश दिया कि–'मुझे हाथी की दिनचर्या की सूचना प्रतिदिन देते रहना, किंतु "हाथी मर गया है"–ऐसी खबर मुझे नहीं देना, अन्यथा तुम लोगों को भारी दण्ड दिया जायगा।"

गांववाले लोग, हाथी को धान, घास और पानी आदि देकर उसकी खूब सेवा करने लगे और प्रतिदिन राजा के पास उसके स्वास्थ्य की खबर भेजते रहे, किन्तु हाथी की बीमारी बहुत बढ़ चुकी थी, इसलिए वह थोड़े ही दिनों में मर गया। अब सभी लोग एकत्रित हुए और विचारने लगे कि राजा को हाथी के मरने की सूचना किस प्रकार दी जाय। बहुत विचार करने पर भी उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा। वे बहुत चिन्तित हुए और रोहक को बुलाकर सारी हकीकत कही। रोहक ने उन्हें तुरन्त एक युक्ति बताई, जिससे सभी लोगों की चिन्ता दूर हो गई। राजा के पास जाकर उन्होंने निवेदन किया कि–

"स्वामिन् ! आज हाथी न उठता है, न बैठता है, न खाता है, न पीता है, न हिलता है, न डुलता है, यहाँ तक कि श्वासोच्छ्वास भी नहीं लेता है। विशेष क्या कहें ? आज उसमें सचेतनता की एक भी चेष्टा दिखाई नहीं देती।" राजा ने पूछा—"तो क्या हाथी मर गया है ?" गांव वालों ने कहा—"महाराज ! आप ही ऐसा कह सकते हैं, हम लोग नहीं।" गांववालों का कथन सुनकर राजा निरुत्तर हो गया। राजा ने इस प्रकार की युक्ति बतानेवाले का नाम पूछा। लोगों ने कहा—"रोहक ने हमें यह उत्तर देने की युक्ति बतलाई है।" यह सुनकर राजा बहुत खुश हुआ। रोहक की बुद्धि का यह सातवाँ उदाहरण है।

८ कूप प्रेषण

कुछ दिनों के बाद राजा ने उस गांववालों के पास यह आदेश भेजा कि "तुम्हारे गाँव में एक मीठे जल का कुआँ है, उसे हमारी उज्जयिनी नगरी में भेज दो।"

राजा के उपरोक्त आदेश को सुनकर सभी लोग चकित हुए। वे सब विचार में पड़ गये कि राजा की इस आज्ञा को किस तरह पूरा किया जाय ? इस विषय में भी उन्होंने रोहक से पूछा। रोहक ने उन्हें एक युक्ति बताई। उन्होंने राजा के पास जाकर निवेदन किया कि "स्वामिन् ! ग्रामीण लोग, स्वभाव से ही डरपोक होते हैं। इसलिए हमारा ग्रामीण कुआं भी

डरपोक है। वह अपने जातीय भाई के सिवाय किसी पर विश्वास नहीं करता। इसलिए हमारे कुएँ को लेने के लिए किसी शहर के कुएँ को हमारे यहां भेज दीजिये। उस पर विश्वास करके वह उसके साथ शहर में चला आयगा।" गांव वालों की यह बात सुनकर राजा निरुत्तर हो गया। पूछने पर ज्ञात हुआ कि गांववालों को यह युक्ति रोहक ने बताई। राजा इससे बहुत खुश हुआ। रोहक की बुद्धि का यह आठवां उदाहरण है।

९ वन की दिशा परिवर्त्तन

कुछ दिनों बाद राजा ने गांव के लोगों के पास यह आज्ञा भेजी कि "तुम्हारे गाँव की पूर्व दिशा में एक वनखण्ड (उद्यान) है, उसे पश्चिम में कर दो।"

राजा की इस आज्ञा को सुनकर लोग चिन्ता में पड़ गये। इस विषय में भी उन्होंने रोहक से पूछा। रोहक ने उन्हें एक युक्ति बताई। उसके अनुसार गाँव के लोग उस वनखण्ड के पूर्व की ओर अपने मकान बनवा कर वहां रहने लगे। इस प्रकार राजाज्ञा पूरी हुई देखकर राजपुरुषों ने राजा की सेवा में निवेदन किया। राजा ने उनसे पूछा कि "गाँववालों को यह युक्ति किसने बताई।" राजपुरुषों ने कहा—"रोहक नामक एक बालक ने उन्हें यह युक्ति बताई थी।" यह सुनकर राजा बहुत खुश हुआ।

१० खीर बनाना

एक समय राजा ने गाँव के लोगों के पास यह आज्ञा भेजी कि "बिना अग्नि के खीर पका कर भेजो।"

राजा के इस अपूर्व आदेश को सुनकर सभी लोक चिन्तित हुए। उन्होंने इस विषय में भी रोहक से पूछा। रोहक ने कहा– "पहले चांवलों को पानी में खूब अच्छी तरह भिगो दो, फिर गर्म किये हुए दूध में डाल दो। फिर सूर्य की किरणों से खूब तपे हुए कोयलों पर या पत्थरों* पर चांवलों के उस वर्तन को रख दो। इससे खीर पक कर तैयार हो जायगी।" लोगों ने रोहक के कथनानुसार कार्य किया। खीर पक कर तैयार हो गई। उसे ले जाकर उन लोगों ने राजा की सेवा में उपस्थित की। राजा ने पूछा–'बिना अग्नि खीर कैसे पकाई?' लोगों ने सारी हकीकत कही। राजा ने पूछा–तुम लोगों को यह तरकीब किसने बताई?' लोगों ने कहा–रोहक ने हमें यह तरकीब बताई।' यह सुनकर राजा वहुत खुश हुआ।

११ रोहक का उज्जयिनी आगमन

रोहक ने अपनी तीव्र (औत्पत्तिकी) वुद्धि से राजा की सभी आज्ञाओं को पूरा कर दिया। इससे राजा वहुत खुश हुआ। राजपुरुषों को भेजकर राजा ने रोहक को अपने पास बुलाया। साथ ही यह आज्ञा दी कि–"रोहक न तो शुक्लपक्ष में आवे, न

---

* चूने की डलियों पर पानी डालकर उससे उत्पन्न गर्मी से भी पकाई जा सकती है।

कृष्ण पक्ष में, न रात्रि में आवे, न दिन में, न धूप में आवे, न छाया में, न आकाश से आवे, न पैदल चलकर, न मार्ग से आवे न उन्मार्ग से, न स्नान करके न बिना स्नान किये आवे। किन्तु आवे जरूर।"

राजा की उपरोक्त आज्ञा को सुनकर रोहक ने कण्ठ तक स्नान किया, फिर अमावस्या और प्रतिपदा के संयोग में, सन्ध्या के समय, सिर पर चालनी का छत्र धारण करके, मेढ़े पर बैठ कर, गाड़ी के पहिये के बीच के मार्ग से राजा के पास जाने लगा। रोहक ने यह लोकोक्ति सुन रखी थी कि–

"रिक्त हस्तो न पश्येच्च राजानं देवतां गुरुम्"।

अर्थात्–राजा, देवता और गुरु का दर्शन खाली हाथ नहीं करना चाहिए। इस लोकोक्ति का विचार करके रोहक ने एक मिट्टी का ढेला हाथ में ले लिया। राजा के पास पहुंचकर उसने राजा को विनयपूर्वक प्रणाम किया और उसके सामने मिट्टी का ढेला रख दिया। राजा ने रोहक से पूछा–"यह क्या है ?" रोहक ने कहा–"देव ! आप पृथ्वीपति हैं, इसलिए मैं पृथ्वी लाया हूँ।" प्रथम दर्शन में यह मंगल वचन सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। रोहक के साथ आये हुए गांव के लोग भी बहुत खुश हुए। राजा ने रोहक को वहीं रख लिया और गांव के लोग वापिस घर लौट गये।

१२ बकरी की मेंगनी

राजा ने प्रसन्न होकर रोहक को अपने पास ही सुलाया। रात का पहला पहर बीत जाने पर राजाने रोहक को आवाज

दी–"रे रोहक ! जागता है, या सोता है ?" रोहक ने जवाब दिया–"महाराज ! जागता हूँ।" राजा ने पूछा–'तो बतला, क्या सोच रहा है ?" रोहक ने जवाब दिया–"देव ! मैं इस बात पर विचार कर रहा हूँ कि बकरी के पेट में मिगनियाँ गोल गोल कैसे बनती हैं ?" रोहक की बात सुनकर राजा भी विचार में पड़ गया। उसने रोहक से पूछा–'अच्छा तुम्हीं बताओ ये कैसे बनती हैं ?" रोहक ने जवाब दिया–"देव ! बकरी के पेट में संवर्त्तक नाम की वायु होती है, उसीसे ऐसी गोल गोल मिगनियाँ बनकर बाहर गिरती हैं।" यह कह कर रोहक सो गया।

१३ पीपल का पान

रात के दो पहर बीत जाने पर राजा ने रोहक को फिर आवाज दी–"रोहक ! सोता है, या जागता है ?" रोहक ने कहा–'स्वामिन् ! जागता हूँ।" राजा ने पूछा–"तो क्या सोच रहा है ?" रोहक ने जवाब दिया–'मैं यह सोच रहा हूँ कि पीपल के पत्ते का दण्ड बड़ा होता है, या शिखा (आगे का भाग) ?" रोहक का कथन सुनकर राजा भी विचार करने लगा। उसने पूछा–'रोहक ! तुम्हीं बताओ। तुमने इस विषय में सोचकर क्या निर्णय किया है ?" रोहक ने कहा–'महाराज ! जब तक अगला भाग (शिखा भाग) नहीं सूखता है, तब तक तो दोनों बराबर होते हैं, किंतु शिखा भाग सूख जाने पर दण्ड भाग बड़ा रह जाता है।" इस पर

राजा ने दूसरे लोगों से पूछा, तो उन सभी ने रोहक की बात का समर्थन किया। रोहक वापिस सो गया।

१४ गिलहरी की पूंछ

रात का तीसरा पहर बीत जाने पर राजा ने फिर पूछा– "रोहक ! सोता है, या जागता है ?" रोहक ने जवाब दिया– "स्वामिन् ! जागता हूँ।" राजा ने पूछा–"तो बता, क्या सोच रहा है ?" रोहक ने कहा–"मैं यह सोच रहा हूँ कि गिलहरी का शरीर जितना बड़ा होता है, उसकी पूंछ भी उतनी ही बड़ी होती है, या कम-ज्यादा ?" रोहक की बात सुनकर राजा स्वयं सोचने लगा, किन्तु जब वह कुछ भी निर्णय नहीं कर सका, तब उसने रोहक से पूछा–"तुम बताओ, तुमने क्या निर्णय किया है ?" रोहक ने कहा– 'स्वामिन् ! गिलहरी का शरीर और पूँछ दोनों ही बराबर होते हैं।"

१५ पांच पिता

रात बीत जाने पर प्रातःकाल के मंगलकारी वाद्यों का शब्द सुनकर राजा जागृत हुआ। उसने रोहक को आवाज दी, किन्तु वह गहरी नींद में सोया हुआ था। तब राजा ने अपनी छड़ी से उसके शरीर को स्पर्श किया, जिससे वह एकदम जागा। राजा ने कहा–"रे रोहक ! क्या सोता है ?" रोहक ने कहा– "नहीं, मैं तो जागता हूँ।" राजा ने कहा–"फिर आवाज देने

पर बोला क्यों नहीं ?" रोहक ने कहा–"मैं एक गम्भीर विचार में तल्लीन था।" राजा ने पूछा–"किस बात पर गम्भीर विचार कर रहा था ?" रोहक ने कहा–"मैं इस विचार में लगा हुआ था कि आपके कितने पिता हैं, यानी आप कितनों से पैदा हुए हैं ?" रोहक की बात सुनकर राजा विष्मित हुआ। थोड़ी देर चुप रहकर राजा ने उससे पूछा–"अच्छा तो बतला, मैं कितने पिता का पुत्र हूँ।" रोहक ने कहा–"आप पाँच के पुत्र हैं।" राजा ने पूछा–"कौन हैं वे पाँच ?" रोहक ने कहा–"एक तो वैश्रवण (कुबेर) से, क्योंकि आप में कुबेर के समान ही दान-शक्ति है। दूसरे चाण्डाल से, क्योंकि शत्रुओं के लिए आप चाण्डाल के समान ही क्रूर हैं। तीसरे धोबी से, क्योंकि जैसे धोबी गीले कपड़े को जोर से खूब निचोड़ कर सारा पानी निकाल लेता है, उसी प्रकार आप भी दूसरों का सर्वस्व हर लेते हैं। चौथे विच्छू से, क्योंकि जिस प्रकार विच्छू निर्दयता पूर्वक डंक मार कर दूसरों को पीड़ा पहुंचाता है, उसी प्रकार सुखपूर्वक निद्रा में सोये हुए मुझ बालक को भी आपने छड़ी के अग्र भाग के स्पर्श से जगा कर कष्ट दिया। पांचवें अपने पिता से, क्योंकि अपने पिता के समान ही आप भी प्रजा का न्याय पूर्वक पालन कर रहे हैं।"

रोहक की उपरोक्त बात सुनकर राजा विचार में पड़ गया। आखिर शौचादि से निवृत्त होकर राजा अपनी माता के पास गया। माता को प्रणाम करके राजा ने एकान्त में अपनी माता से पूछा--"माँ ! मेरे कितने पिता हैं ?" माता ने

राजा ने दूसरे लोगों से पूछा, तो उन सभी ने रोहक की बात का समर्थन किया। रोहक वापिस सो गया।

१४ गिलहरी की पूंछ

रात का तीसरा पहर बीत जाने पर राजा ने फिर पूछा–"रोहक! सोता है, या जागता है?" रोहक ने जवाब दिया–"स्वामिन्! जागता हूँ।" राजा ने पूछा–"तो बता, क्या सोच रहा है?" रोहक ने कहा–"मैं यह सोच रहा हूँ कि गिलहरी का शरीर जितना बड़ा होता है, उसकी पूंछ भी उतनी ही बड़ी होती है, या कम-ज्यादा?" रोहक की बात सुनकर राजा स्वयं सोचने लगा, किन्तु जब वह कुछ भी निर्णय नहीं कर सका, तब उसने रोहक से पूछा–"तुम बताओ, तुमने क्या निर्णय किया है?" रोहक ने कहा–'स्वामिन्! गिलहरी का शरीर और पूँछ दोनों ही बराबर होते हैं।"

१५ पांच पिता

रात बीत जाने पर प्रातःकाल के मंगलकारी वाद्यों का शब्द सुनकर राजा जागृत हुआ। उसने रोहक को आवाज दी, किन्तु वह गहरी नींद में सोया हुआ था। तब राजा ने अपनी छड़ी से उसके शरीर को स्पर्श किया, जिससे वह एकदम जागा। राजा ने कहा–"रे रोहक! क्या सोता है?" रोहक ने कहा–"नहीं, मैं तो जागता हूँ।" राजा ने कहा–"फिर आवाज देने

पर बोला क्यों नहीं ?" रोहक ने कहा–"मैं एक गम्भीर विचार में तल्लीन था।" राजा ने पूछा–"किस बात पर गम्भीर विचार कर रहा था ?" रोहक ने कहा–"मैं इस विचार में लगा हुआ था कि आपके कितने पिता हैं, यानी आप कितनों से पैदा हुए हैं ?" रोहक की बात सुनकर राजा विस्मित हुआ। थोड़ी देर चुप रहकर राजा ने उससे पूछा–"अच्छा तो बतला, मैं कितने पिता का पुत्र हूँ।" रोहक ने कहा–"आप पाँच के पुत्र हैं।" राजा ने पूछा–"कौन हैं वे पाँच ?" रोहक ने कहा–"एक तो वैश्रवण (कुबेर) से, क्योंकि आप में कुबेर के समान ही दान-शक्ति है। दूसरे चाण्डाल से, क्योंकि शत्रुओं के लिए आप चाण्डाल के समान ही क्रूर हैं। तीसरे धोबी से, क्योंकि जैसे धोबी गीले कपड़े को जोर से खूब निचोड़ कर सारा पानी निकाल लेता है, उसी प्रकार आप भी दूसरों का सर्वस्व हर लेते हैं। चौथे बिच्छू से, क्योंकि जिस प्रकार बिच्छू निर्दयता पूर्वक डंक मार कर दूसरों को पीड़ा पहुंचाता है, उसी प्रकार सुखपूर्वक निद्रा में सोये हुए मुझ बालक को भी आपने छड़ी के अग्र भाग के स्पर्श से जगा कर कष्ट दिया। पांचवें अपने पिता से, क्योंकि अपने पिता के समान ही आप भी प्रजा का न्याय पूर्वक पालन कर रहे हैं।"

रोहक की उपरोक्त बात सुनकर राजा विचार में पड़ गया। आखिर शौचादि से निवृत्त होकर राजा अपनी माता के पास गया। माता को प्रणाम करके राजा ने एकान्त में अपनी माता से पूछा–"माँ ! मेरे कितने पिता हैं ?" माता ने

लज्जित होकर कहा--"पुत्र ! तुम यह क्या प्रश्न कर रहे हो ? यह भी कोई पूछने की बात है ? तुम अपने पिता से पैदा हुए हो, तुम्हारे एक ही पिता हैं।" इस पर राजा ने रोहक की कही हुई सारी बातें कह सुनाई और कहा--"माँ ! रोहक का कथन मिथ्या नहीं हो सकता। इसलिए तुम मुझे सच सच कह दो।" माता ने कहा--"पुत्र ! यदि किसी को देखने आदि से मानसिक भाव का विकृत हो जाना भी तेरे संस्कार का कारण हो सकता है, तो रोहक का कथन ठीक है। जब तू गर्भ में था, उस समय मैं वैश्रवण देव की पूजा के लिए गई थी। उसकी सुन्दर मूर्ति को देख कर तथा वापिस लौटते समय रास्ते में सुन्दर चाण्डाल और धोबी युवक को देखकर मेरी भावना विकृत हो गई थी। घर आने पर जब आटे के विच्छू को मैंने अपने हाथ पर रखा, उस समय भी मेरी भावना विकृत्त हो गई थी। वैसे तो जगत्प्रसिद्ध पिता ही तुम्हारे वास्तविक पिता हैं।" यह सुनकर राजा को रोहक की बुद्धि पर बड़ा आश्चर्य हुआ। माता को प्रणाम करके वह अपने महल में लौट आया। रोहक की ऐसी तीव्र एवं औत्पत्ति की बुद्धि देखकर राजा ने उसको प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त कर दिया।

रोहक की बुद्धि का यह पन्द्रहवां उदाहरण है। ये पन्द्रह उदाहरण रोहक की औत्पत्तिकी बुद्धि के हैं। ये सब औत्पत्तिकी बुद्धि के प्रथम उदाहरण के अन्तर्गत हैं। यहां प्रथम उदाहरण पूर्ण हुआ।

अब आगे औत्पत्तिकी बुद्धि का दूसरा उदाहरण दिया

जाता है।

२ ककड़ियों की शर्त

(पणित)

एक समय कोई ग्रामीण किसान अपने गाँव से ककड़ियाँ लेकर बेंचने के लिए शहर में आया। शहर के दरवाजे पर पहुँचते ही उसे एक धूर्त नागरिक मिला। उसने ग्रामीण को भोला समझ कर ठगने की इच्छा से कहा कि—'क्या एक आदमी इन सब ककड़ियों को नहीं खा सकता ?" इस पर ग्रामीण बोला—"किसकी ताकत है जो अकेला इतनी ककड़ियाँ खा लेगा ?" नागरिक बोला—"यदि मैं अकेला तुम्हारी इन सब ककड़ियों को खा जाऊँ, तो तुम मुझे क्या इनाम दोगे ?" इस बात को असम्भव मानते हुए ग्रामीण ने कहा-"यदि तुम सब ककड़ियाँ खा जाओ तो मैं तुम्हें ऐसा लड्डू इनाम में दूँगा—जो इस दरवाजे में न आ सके।" दोनों में यह शर्त तय हो गई और उन्होंने कुछ लोगों को साक्षी बना लिया।

इसके बाद धूर्त नागरिक ने ग्रामीण की सारी ककड़ियाँ जूँठी करके (थोड़ी थोड़ी खाकर) छोड़ दी और ग्रामीण से कहा कि "मैने तुम्हारी सारी ककड़ियाँ खाली हैं, इसलिए शर्त के अनुसार अब मुझे इनाम दो।" ग्रामीण ने कहा—'तुमने सारी ककड़ियाँ कहाँ खाई हैं ?" इस पर वह धूर्त नागरिक बोला—"मैंने तुम्हारी ककड़ियाँ खा ली हैं। यदि तुम्हें विश्वास नहीं हो, तो चलो, इन ककड़ियों को बेचने के लिए बाजार में रखो।

ग्राहकों के कहने से तुम्हें अपने आप विश्वास हो जायगा।" ग्रामीण ने यह बात स्वीकार की और सारी ककड़ियां उठा कर बाजार में बेचने के लिए रख दी। थोड़ी देर में ग्राहक आये। ककड़ियाँ देख कर वे कहने लगे-"ये ककड़ियाँ तो सभी खाई हुई हैं।" इस तरह ग्राहकों के कहने पर धूर्त ने ग्रामीण को और साक्षियों को विश्वास उत्पन्न करा दिया। अब ग्रामीण घबराया कि मैं शर्त के अनुसार दरवाजे में न आवे, इतना बड़ा लड्डू कहाँ से लाकर दूं ? धूर्त से पीछा छुड़ाने के लिए ग्रामीण ने उसको एक रुपया देना चाहा, किन्तु धूर्त कहाँ राजी होनेवाला था ? आखिर ग्रामीण ने सौ रुपया तक देना स्वीकार कर लिया, किन्तु धूर्त इस पर भी राजी नहीं हुआ। उसे इससे भी अधिक मिलने की आशा थी। आखिर ग्रामीण सोचने लगा-'धूर्त लोग सरलता से नहीं मानते हैं, वे धूर्तता से ही मानते हैं। इसलिए इस विषय में मुझे भी किसी धूर्त की सलाह लेनी चाहिए।' ऐसा सोच कर ग्रामीण ने उस धूर्त से कुछ समय का अवकाश मांगा। शहर में घूम कर उसने किसी धूर्त नागरिक का पता लगाया और उससे मित्रता कर ली। इसके बाद उसने सारी घटना सुना कर उससे छुटकारा पाने का मार्ग पूछा। धूर्त की सलाह के अनुसार हलवाई की दुकान से एक लड्डू खरीदा और अपने प्रतिपक्षी नागरिक तथा साक्षियों को साथ लेकर वह दरवाजे के पास आया। लड्डू को बाहर रखकर वह दरवाजे के भीतर खड़ा हो गया और लड्डू को सम्बोधित कर कहने लगा-"ओ लड्डू ! दरवाजे के भीतर चले आओ, चले

आओ।" ग्रामीण के बार बार कहने पर भी लड्डू अपनी जगह से तिल भर भी नहीं हटा। तब ग्रामीण ने उपस्थित साक्षियों से कहा–"मैंने आप लोगों के सामने यही शर्त की थी कि "मैं ऐसा लड्डू दूंगा जो दरवाजे में न आवे। यह लड्डू भी दरवाजे में नहीं आता है। यदि आप लोगों को विश्वास नहीं हो, तो आप भी इस लड्डू को बुला कर देख सकते हैं। यह लड्डू देकर मैंने अपनी शर्त पूरी कर दी।" साक्षियों ने तथा उपस्थित अन्य सभी लोगों ने ग्रामीण की बात स्वीकार की। यह देख कर वह धूर्त नागरिक, बहुत लज्जित हुआ और चुपचाप अपने घर चला गया। धूर्त से पीछा छूट जाने से प्रसन्न होता हुआ वह ग्रामीण भी अपने गांव लौट गया।

यह शर्त लगानेवाले धूर्त नागरिक और ग्रामीण को सम्मति देनेवाले धूर्त की–दोनों की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

३ बन्दरों से आम लेना

(वृक्ष का उदाहरण)

कुछ यात्री वन में जा रहे थे। मार्ग में फलों से लदा हुआ आम का वृक्ष देखा और उसके फल खाने की इच्छा हुई। पेड़ पर कुछ बन्दर बैठे हुए थे। वे यात्रियों को आम लेने में बाधा डालने लगे। यात्रियों ने आम लेने का उपाय सोचा और बन्दरों की ओर पत्थर फेंकने लगे। इससे कुपित होकर बन्दरों ने आम के फल तोड़कर यात्रियों को मारने के लिए उन पर फेंकना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार यात्रियों का अपना

प्रयोजन सिद्ध हो गया।

आम प्राप्त करने की यह यात्रियों की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

४ कूप में से अंगूठी निकालना

(खुड्डग)

मगधदेश में राजगृह नाम का सुन्दर और रमणीय नगर था। उसमें प्रसेनजित् नाम का राजा राज्य करता था। उसके बहुत-से पुत्र थे। उन सब में श्रेणिक बहुत बुद्धिमान् था। वह राज-लक्षण सम्पन्न था। उसमें राजा के योग्य समस्त गुण विद्यमान थे। 'दूसरे राजकुमार ईर्षावश कहीं उसे मार नहीं डालें'—यह सोच कर राजा उसे न तो कोई अच्छी वस्तु देता था और न लाड़-प्यार ही करता था। केवल अन्तरंग रूप से उसका ध्यान रखता था। पिता के आन्तरिकभावों को नहीं समझ कर और उसके ऊपरी व्यवहार से खिन्न होकर श्रेणिक, पिता को सूचना दिए बिना ही वहाँ से निकल गया। चलते चलते वह बेनातट नामक नगर में पहुँचा। उस नगर में एक सेठ रहता था। उसका धन-वैभव नष्ट हो चुका था। श्रेणिक उसी सेठ की दुकान पर पहुँचा और दुकान के बाहर एक ओर बैठ गया।

सेठ के एक विवाह योग्य पुत्री थी। निर्धनता के कारण सेठ को योग्य वर नहीं मिल रहा था। इससे उसे चिन्ता थी। सेठ ने उसी रात स्वप्न में अपनी पुत्री नन्दा का विवाह किसी रत्नाकर के साथ होते देखा। यह शुभ स्वप्न देखने के कारण

सेठ आज विशेष प्रसन्न था। श्रेणिक के आने के बाद सेठ के यहां अधिक बिक्री होने लगी और कई दिनों से खरीद कर रखी हुई पुरानी चीजें बहुत ऊंची कीमत में बिकी। इसके सिवाय रत्नों की परीक्षा न जाननेवाले लोगों द्वारा लाये हुए कई बहुमूल्य रत्न भी बहुत थोड़े मूल्य में सेठ को मिल गये। इस प्रकार अचिन्त्य लाभ देखकर सेठ को बड़ी प्रसन्नता हुई। आज अप्रत्याशित लाभ देखकर सेठ इसके कारण पर विचार करने लगा। सोचते हुए उन्हें ख्याल आया कि दुकान पर बैठे हुए इस भाग्यशाली पुरुष के अतिशय पुण्य का ही यह प्रभाव प्रतीत होता है। इसका विस्तीर्ण ललाट और भव्य आकार, इसके पुण्यातिशय की साक्षी दे रहे हैं। मैंने गत रात्रि में अपनी कन्या नन्दा का विवाह रत्नाकर के साथ होने का स्वप्न देखा था। प्रतीत होता है-वह रत्नाकर वास्तव में यही है। इस प्रकार विचार कर वह सेठ, श्रेणिक के पास आया और हाथ जोड़कर विनयपूर्वक पूछने लगा-"महाभाग! आप किसके यहां पाहुने पधारे हैं"। श्रेणिक ने जवाब दिया-"अभी तो आप ही के यहाँ आया हूँ।" श्रेणिक का यह उत्तर सुनकर सेठ बहुत प्रसन्न हुआ। आदर और बहुमान के साथ श्रेणिक को वह अपने घर ले गया और आदर के साथ भोजन कराया। अब श्रेणिक वहीं रहने लगा।

श्रेणिक के पुण्य प्रताप से सेठ के यहां प्रतिदिन धन की वृद्धि होने लगी। कुछ दिन बीतने पर शुभ मुहूर्त में सेठ ने श्रेणिक के साथ अपनी पुत्री नन्दा का विवाह कर दिया। श्रेणिक,

नन्दा के साथ सांसारिक सुख का अनुभव करता हुआ आनन्द पूर्वक रहने लगा। कुछ समय पश्चात् नन्दा गर्भवती हुई। आठवें अच्युत देवलोक से चव कर एक महापुण्यशाली जीव नन्दा के गर्भ में आया विधिपूर्वक गर्भ का पालन करती हुई, वह सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगी।

उधर राजा प्रसेनजित, श्रेणिक के चले जाने से बड़े चिंतित रहने लगे। नौकरों को भेजकर उसने इधर उधर श्रेणिक की बहुत खोज करवाई, किन्तु कहीं भी पता नहीं लगा। अन्त में उसे मालूम हुआ कि श्रेणिक बेनातट नगर में चला गया है। वहां किसी सेठ की कन्या से उसका विवाह हो गया है और वह वहीं सुख पूर्वक रहता है।

एक समय राजा प्रसेनजित अचानक बीमार हो गया। अपना अन्तिम समय नजदीक जानकर उसने श्रेणिक को बुलाने के लिए घुड़सवार भेजे। बेनातट पहुंचकर सन्देश-वाहक ने श्रेणिक से कहा—"आपके पिता राजा प्रसेनजित बीमार हैं, अतः वे आपको शीघ्र बुलाते हैं"। पिता की आज्ञा को सिरोधार्य करके श्रेणिक ने राजगृह जाने का निश्चय किया। अपनी पत्नी नन्दा को पूछकर श्रेणिक उन घुड़सवारों के साथ राजगृह को रवाना हुआ। जाते समय अपनी पत्नी की जानकारी के लिए उसने अपना परिचय भींत के एक भाग पर लिख दिया।

गर्भ के तीन मास पूरे होने पर, गर्भ में आये हुए पुण्यशाली जीव के प्रभाव से, नन्दा को ऐसा दोहला उत्पन्न हुआ— 'क्या ही अच्छा हो कि मैं श्रेष्ठ हाथी पर सवार होकर याचक

लोगों को धन का दान देती हुई अभयदान दूं। जब दोहले की बात नन्दा के पिता को मालूम हुई, तो उसने राजा की अनुमति लेकर उसका दोहला पूर्ण कर दिया। गर्भ-काल पूर्ण होने पर नन्दा की कुक्षि से एक प्रतापी और तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। दोहले के अनुसार बालक का नाम अभयकुमार रखा गया। बालक, नन्दन वन के कल्पवृक्ष की तरह सुखपूर्वक बढ़ने लगा। यथा समय विद्याध्ययन कर बालक सुयोग्य बन गया।

एक समय अभयकुमार ने अपनी माँ से पूछा—"माँ मेरे पिताजी का क्या नाम है और वे कहाँ रहते हैं?" माँ ने आदि से लेकर अन्त तक सारा वृत्तान्त कह सुनाया तथा भींत पर लिखा हुआ परिचय भी उसे दिखा दिया। सब देख-सुनकर अभयकुमार ने समझ लिया कि मेरे पिता राजगृह के राजा हैं। उसने अपनी माँ से कहा—"माँ! एक सार्थ (काफला) राजगृह जा रहा है। यदि आपकी इच्छा हो, तो हम भी सार्थ के साथ राजगृह चलें।" माँ की अनुमति होने पर दोनों माँ-बेटे उस सार्थ के साथ राजगृह की ओर रवाना हुए। राजगृह पहुँचकर उसने अपनी माँ को शहर के बाहर एक बाग में ठहरा दिया और आप स्वयं शहर में गया।

शहर में प्रवेश करते ही अभयकुमार ने एक स्थान पर बहुत-से लोगों की भीड़ देखी। निकट जाकर उसने पूछा—"यहाँ पर इतनी भीड़ क्यों इकट्ठी हो रही है?" तब राज-पुरुषों ने कहा—"इस जल रहित कुएँ में राजा की अंगूठी गिर गई है। राजा ने यह आदेश दिया है कि जो व्यक्ति बाहर

नन्दा के साथ सांसारिक सुख का अनुभव करता हुआ आनन्द पूर्वक रहने लगा। कुछ समय पश्चात् नन्दा गर्भवती हुई। आठवें अच्युत देवलोक से चव कर एक महापुण्यशाली जीव नन्दा के गर्भ में आया विधिपूर्वक गर्भ का पालन करती हुई, वह सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगी।

उधर राजा प्रसेनजित, श्रेणिक के चले जाने से बड़े चिंतत रहने लगे। नौकरों को भेजकर उसने इधर उधर श्रेणिक की बहुत खोज करवाई, किन्तु कहीं भी पता नहीं लगा। अन्त में उसे मालूम हुआ कि श्रेणिक बेनातट नगर में चला गया है। वहाँ किसी सेठ की कन्या से उसका विवाह हो गया है और वह वहीं सुख पूर्वक रहता है।

एक समय राजा प्रसेनजित अचानक बीमार हो गया। अपना अन्तिम समय नजदीक जानकर उसने श्रेणिक को बुलाने के लिए घुड़सवार भेजे। बेनातट पहुंचकर सन्देश-वाहक ने श्रेणिक से कहा—"आपके पिता राजा प्रसेनजित बीमार हैं, अतः वे आपको शीघ्र बुलाते हैं"। पिता की आज्ञा को सिरोधार्य करके श्रेणिक ने राजगृह जाने का निश्चय किया। अपनी पत्नी नन्दा को पूछकर श्रेणिक उन घुड़सवारों के साथ राजगृह को रवाना हुआ। जाते समय अपनी पत्नी की जानकारी के लिए उसने अपना परिचय भींत के एक भाग पर लिख दिया।

गर्भ के तीन मास पूरे होने पर, गर्भ में आये हुए पुण्यशाली जीव के प्रभाव से, नन्दा को ऐसा दोहला उत्पन्न हुआ—'क्या ही अच्छा हो कि मैं श्रेष्ठ हाथी पर सवार होकर याचक

लोगों को धन का दान देती हुई अभयदान दूँ। जब दोहले की बात नन्दा के पिता को मालूम हुई, तो उसने राजा की अनुमति लेकर उसका दोहला पूर्ण कर दिया। गर्भ-काल पूर्ण होने पर नन्दा की कुक्षि से एक प्रतापी और तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। दोहले के अनुसार बालक का नाम अभयकुमार रखा गया। बालक, नन्दन वन के कल्पवृक्ष की तरह सुखपूर्वक बढ़ने लगा। यथा समय विद्याध्ययन कर बालक सुयोग्य बन गया।

एक समय अभयकुमार ने अपनी माँ से पूछा—"माँ मेरे पिताजी का क्या नाम है और वे कहाँ रहते हैं ?" माँ ने आदि से लेकर अन्त तक सारा वृत्तान्त कह सुनाया तथा भींत पर लिखा हुआ परिचय भी उसे दिखा दिया। सब देख-सुनकर अभयकुमार ने समझ लिया कि मेरे पिता राजगृह के राजा हैं। उसने अपनी माँ से कहा—"माँ! एक सार्थ (काफला) राजगृह जा रहा है। यदि आपकी इच्छा हो, तो हम भी सार्थ के साथ राजगृह चलें।" माँ की अनुमति होने पर दोनों माँ-बेटे उस सार्थ के साथ राजगृह की ओर रवाना हुए। राजगृह पहुँचकर उसने अपनी माँ को शहर के बाहर एक बाग में ठहरा दिया और आप स्वयं शहर में गया।

शहर में प्रवेश करते ही अभयकुमार ने एक स्थान पर बहुत-से लोगों की भीड़ देखी। निकट जाकर उसने पूछा—"यहाँ पर इतनी भीड़ क्यों इकट्ठी हो रही है ?" तब राज-पुरुषों ने कहा—"इस जल रहित कुएँ में राजा की अंगूठी गिर गई है। राजा ने यह आदेश दिया है कि जो व्यक्ति बाहर

पानी से बाहर निकला और पुकार कर कहने लगा—"महाशय ! यह चादर तुम्हारी नहीं, मेरी है । इसलिए मुझे दे दो ।" परंतु वह उसकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं देता हुआ चला गया। वह दूसरा व्यक्ति उसका पीछा कर रहा था । गांव में पहुँच कर उसने अपनी चादर मांगी, किंतु वह देने को राजी नहीं हुआ । अन्त में वे अपना न्याय कराने के लिए न्यायालय में पहुँचे । किसी के पास कोई साक्षी नहीं होने से निर्णय होना कठिन समझ कर न्यायाधीश ने अपने बुद्धिबल से काम लिया। उन दोनों के सिर के बालों में कंघी करवाई । इस पर कम्बल के वास्तविक स्वामी के मस्तक से ऊन के तन्तु निकले । इस पर से यह निश्चय हो गया कि 'रेशमी चादर इसकी नहीं है ।" उसी समय न्यायाधीश ने वह रेशमी चादर उसके वास्तविक स्वामी को दिलवा दी और दूसरे पुरुष को उचित दण्ड दिया।

कंघी करवा कर ऊन के कम्बल के असली स्वामी का पता लगाने में न्यायाधीश की औत्पत्तिकी बुद्धि थी ।

६ भ्रम रोग की दवा

(शरट)

एक समय एक सेठ, शौच निवृत्ति के लिए जंगल में गया। असावधानी से वह एक बिल पर बैठ गया । अचानक एक शरट (गिरगिट) दौड़ता हुआ आया और बिल में प्रवेश करते हुए उसकी पूंछ का स्पर्श सेठ के गुदाभाग से हो गया । सेठ के मन में यह भ्रम हो गया कि 'गिरगिट मेरे पेट में चला गया

है।' इसी भ्रम के कारण वह अपने आपको रोगी समझकर प्रतिदिन दुर्बल होने लगा। एक समय वह एक वैद्य के पास गया। वैद्य ने उसके रोग का सारा हाल पूछा। सेठ ने आदि से लेकर अन्त तक सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वैद्य ने अच्छी तरह परीक्षा करके देखा, किंतु उसे कोई रोग दिखाई नहीं दिया। वैद्य ने अपने बुद्धिवल से काम लिया और इस निश्चय पर पहुँचा कि सेठ को भ्रम-रोग लगा है। इनका भ्रम मिटा देने से ही यह अच्छे हो जाएँगे। कुछ सोचकर वैद्य ने कहा–"सेठजी ! मैं तुम्हारा रोग छुड़ा दूंगा, इसके लिए पूरे सौ रुपये लूंगा।" सेठ ने वैद्य की वात स्वीकार करली। वैद्य ने उनको विरेचक (दस्तावर) औषधी दी। इधर वैद्य ने लाख (लाक्षा) का एक गिरगिट वनाकर एक मिट्टी के वर्तन में रख दिया। फिर उस मिट्टी के वर्तन में सेठ को शौच जाने को कहा। शौच निवृत्ति के पश्चात् वैद्य ने सेठ को मिट्टी के वर्तन में पड़े हुए गिरगिट को दिखला कर कहा–"देखिये सेठजी ! आपके पेट से गिरगिट निकल गया है।" उसे देखकर सेठ का भ्रम दूर हो गया। अव वह अपने आपको नीरोग अनुभव करने लगा और थोड़े ही दिनों में उसका शरीर पहले की तरह पुष्ट हो गया। लाख का गिरगिट वताकर इस प्रकार सेठ का वहम दूर करने में वैद्य की औत्पत्ति की वुद्धि थी।

७ कौओं की गिनती

(काक)

वेनातट नगर में एक समय एक वौद्ध भिक्षु ने किसी जैन

से पूछा—'तुम अपने देव अरिहन्त को सर्वज्ञ मानते हो और उनके भक्त हो, तो बतलाओ—इस शहर में कितने कौए हैं?" उसका शठतापूर्ण प्रश्न सुनकर जैन ने विचार किया कि 'इसको सरलभाव से उत्तर देने से यह नहीं मानेगा।' इस धूर्त को धूर्तता पूर्ण उत्तर ही देना चाहिए।' ऐसा सोचकर उसने अपने बुद्धिबल से कहा—"इस शहर में साठ हजार कौए हैं।" बौद्ध भिक्षु ने कहा—"यदि इससे न्यूनाधिक निकले तो?" जैन ने उत्तर दिया—'यदि कम हों, तो जानना चाहिए कि यहां के कौए बाहर मेहमान होकर गये हुए हैं और यदि अधिक हों, तो जानना चाहिए कि बाहर के कौए यहां मेहमान आये हुए हैं?" यह उत्तर सुनकर बौद्ध भिक्षु मौन हो गया और चुपचाप चला गया। जैन की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

८ मल परीक्षा से पति की पहिचान
(उच्चार)

किसी शहर में एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री अत्यन्त रूपवती थी। एक बार वह अपनी स्त्री को साथ लेकर दूसरे गाँव जा रहा था। मार्ग में ब्राह्मणी का सौंदर्य देखकर एक धूर्त मोहित हो गया और उसे अपनी ओर आकर्षित करली। वह ब्राह्मणी भी ब्राह्मण से अप्रसन्न थी, अतएव धूर्त के बहकावे में आ गई। कुछ दूर जाकर उस धूर्त ने ब्राह्मण से विवाद करना शुरू किया और कहने लगा कि "यह स्त्री मेरी है, इसलिए तुम इधर मत आओ।" ब्राह्मण कहने लगा—"यह मेरी स्त्री

है।" इस प्रकार विवाद बढ़ जाने से वे दोनों न्याय कराने के लिए न्यायालय में पहुंचे। न्यायाधीश ने उन दोनों की बातें सुनकर दोनों को अलग अलग बिठा दिया और उनसे पूछा कि–"कल शाम को तुमने और तुम्हारी स्त्री ने क्या क्या खाया था ?" ब्राह्मण ने कहा–"मैंने और मेरी स्त्री ने तिल के लड्डू खाये थे।" धूर्त से पूछा तो उसने कुछ और ही बतलाया। इस पर न्यायाधीश ने ब्राह्मणी को जुलाब दिया। जुलाब लगने पर मल की परीक्षा कराई गई, तो उसमें तिल दिखाई दिये। न्यायाधीश ने ब्राह्मण को उसकी स्त्री सौंप दी और धूर्त को दण्ड देकर निकाल दिया। इस प्रकार न्याय करना न्यायधीश की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

६ हाथी का तौल

(गज)

वसन्तपुर का राजा, एक अतिशय बुद्धि सम्पन्न पुरुष की खोज में था, जिसे वह अपने राज्य का प्रधान-मन्त्री बना सके। बुद्धि की परीक्षा के लिए उसने एक हाथी चौराहे पर खड़ा करवा दिया और यह घोषणा करवाई कि "जो मनुष्य इस हाथी को तौल कर वजन बता देगा, उसे राजा बहुत बड़ा इनाम देगा।" राजा की घोषणा सुनकर एक बुद्धिमान् पुरुष ने हाथी का तौल करना स्वीकार किया। उसने एक बड़े तालाब में हाथी को नाव पर चढ़ाया और नौका को गहरे पानी में ले गया। हाथी के वजन से नाव, पानी में जितनी डूबी, वहां

उसने एक लकीर खींच कर चिन्ह कर दिया। फिर नाव किनारे लाकर हाथी को उतार दिया और उसमें उतने ही पत्थर भरे कि जिससे रेखांकित भाग तक नाव पानी में डूब गई। इसके बाद उसने पत्थरों को तोल लिया और उनका जितना वजन हुआ, उतना ही वजन हाथी का बता दिया। राजा उसकी बुद्धिमत्ता पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपना प्रधान मन्त्री बना दिया। हाथी को तौलने में उस पुरुष की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

१० भाँड़ की बुद्धिमत्ता

(घयण)

एक भाँड़ था। वह राजा के बहुत मुँह लगा हुआ था। राजा, भाँड़ के सामने अपनी रानी की प्रशंसा बहुत किया करता था। एक दिन राजा ने कहा—"मेरी रानी पूर्ण आज्ञाकारिणि है।"

भांड़ ने कहा—"महाराज! रानीजी अपने स्वार्थवश आज्ञा-कारिणी है।"

राजा ने कहा—"वह स्वार्थिनी नहीं है।"

भांड़—"आपके कथन में सत्यांश हो सकता है, परन्तु मैंने जो कहा है उसकी आप परीक्षा ले सकते हैं।"

राजा—"परीक्षा किस प्रकार ली जा सकती है?"

भाँड़—"रानीजी से कहिये कि आप दूसरा विवाह करना चाहते हैं और नई रानी को पटरानी बनावेंगे तथा उसके

पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनावेंगे।"

दूसरे दिन राजा ने रानी से अपने एक और विवाह करने की इच्छा व्यक्त की। रानी ने कहा–

"नाथ! आप अपनी इच्छा से दूसरा विवाह कर सकते हैं। परन्तु एक शर्त है–राजगद्दी का उत्तराधिकारी वही होगा जो परम्परागत नियम से होता चला आया है। इसमें कोई भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता।"

रानी की बात सुनकर राजा हँस दिया। रानी ने हँसने का कारण पूछा, किंतु राजा टालने लगा। रानी के अत्याग्रह करने पर राजा ने भाँड़ की कही हुई बात रानी से कह दी। राजा की बात सुनकर रानी बहुत कुपित हुई। रानी ने भाँड़ को निर्वासित करने की आज्ञा दे दी। रानी के इस कठोर आदेश को सुनकर भाँड़ बहुत घबराया और अपने बचाव का मार्ग सोचने लगा। उसे एक उपाय सूझा। उसने जूतों की एक गठड़ी बाँधी और उसे सिर पर उठाकर रानी के महल के सामने गया। उसने रानी को यह संदेश पहुंचा दिया कि–"आपकी आज्ञानुसार मैं यह देश छोड़कर दूसरे देश में जा जा रहा हूँ।"

सिर पर गठड़ी देख रानी ने उससे पूछा–"यह क्या है?"

भाँड़–"यह जूतों की गठड़ी है।"

रानी–"इसका क्या प्रयोजन है?"

भाँड़–"महारानीजी! इन जूतों को पहनता हुआ जहां तक जा सकूँगा, जाऊँगा और आपकी यश-गाथा का प्रचार करूँगा।"

रानी अपनी बदनामी से डरी और उसने निर्वासन का हुक्म रद्द कर दिया।

निर्वासन की आज्ञा को रद्द करवाने में भांड की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

११ लाख की गोली

(गोलक)

एक बार किसी बालक के नाक में लाख की गोली फँस गई। बालक को श्वास लेने में कष्ट होने लगा। बालक के माता पिता बहुत चिंतित हुए। वे उसे एक सुनार के पास ले गये। सुनार ने अपने बुद्धिबल से काम लिया। उसने लोहे की एक पतली सलाई के अग्रभाग को तपा कर सावधानी पूर्वक उसको बालक के नाक में डाला और उससे लाख की गोली को गला कर नाक में से खींच ली। बालक स्वस्थ हो गया। उसके माता पिता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सुनार को बहुत इनाम दिया। सुनार की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

१२ तालाब स्थित स्तंभ को बांधना

(स्तम्भ)

किसी समय एक राजा को एक अतिशय बुद्धिमान् मन्त्री की आवश्यकता हुई। बुद्धि की परीक्षा करने के लिए राजा ने तालाव के बीच में एक स्तम्भ गड़वा दिया और यह घोषणा करवाई कि—"जो व्यक्ति तालाव के किनारे खड़ा रहकर

इस स्तम्भ को रस्सी से बांध देगा, उसे राजा की ओर से एक लाख रुपये इनाम में दिये जाएँगे।" यह घोषणा सुनकर एक बुद्धिमान् पुरुष ने तालाब के किनारे पर लोहे की एक कील गाड़ दी और उसमें रस्सी बांध दी। उसी रस्सी को साथ लेकर वह तालाब के किनारे किनारे चारों ओर घूम गया ऐसा करने से बीच का स्तम्भ रस्सी से बंध गया *। उसकी बुद्धिमत्ता पर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। राजा ने अपनी घोषणा के अनुसार उसे इनाम दिया और उसे अपना मन्त्री बना दिया।

१३ क्षुल्लक की विजय

किसी नगर में एक परिव्राजिका रहती थी। वह प्रत्येक कार्य में बड़ी कुशल थी। एक समय उसने राजा के सामने प्रतिज्ञा की कि–"देव! जो काम दूसरे कर सकते हैं, वे सभी काम मैं कर सकती हूँ। कोई काम ऐसा नहीं-जो मेरे लिए अशक्य हो।"

राजा ने नगर में परिव्राजिका की प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में घोषणा करवा दी। नगर में भिक्षा के लिए घूमते हुए एक क्षुल्लक ने यह घोषणा सुनी। उसने राजपुरुषों से कहा–"मैं

---

* इस प्रकार करने से खंभा बंधता नहीं, किन्तु घेरे में आ जाता है। लगता है कि पहले खंभे को घेरे में लिया होगा और बाद में रस्सी में से खूंटी निकालकर उस छिद्र में रस्सी का दूसरा सिरा पिरो दिया होगा। फिर उस सिरे को ज्यों ज्यों खिंचा होगा, त्यों त्यों घेरा कम होता गया होगा और अंत में खंभा बंध गया होगा—डोशी।

अपनी कला से परिव्राजिका को हरा दूँगा।" राजपुरुषों ने घोषणा बन्द कर दी और लौट कर राजा से निवेदन किया।

निश्चित समय पर क्षुल्लक राजसभा में उपस्थित हुआ। उसे देखकर मुँह बनाती हुई परिव्राजिका अवज्ञा पूर्वक कहने लगी कि "यह क्षुल्लक मुझे क्या जीतेगा।" परिव्राजिका के ऐसा कहने पर क्षुल्लक ने अपनी लंगोटी हटाकर नग्नमुद्रा से अनेक आसन कर दिखाये। फिर परिव्राजिका से बोला कि "अब आप अपनी कुशलता दिखलाइये।" परिव्राजिका ऐसा नहीं कर सकी। इसके बाद क्षुल्लक ने इस प्रकार पेशाब किया कि कमलाकार चित्र बन गया। परिव्राजिका ऐसा करने में भी असमर्थ रही। इस प्रकार परिव्राजिका हार गई और वह लज्जित होकर राज सभा से चली गई। क्षुल्लक की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

१४ न्यायाध्यक्ष का निर्णय

(मार्ग)

एक पुरुष अपनी स्त्री को साथ ले रथ में बैठकर दूसरे गांव जा रहा था। रास्ते में स्त्री को शारीरिक चिन्ता हुई। इस-लिए वह रथ से नीचे उतर कर कुछ दूर जाकर शंका निवारण करने लगी। वहाँ व्यन्तर जाति की एक देवी रहती थी। वह पुरुष के रूप-सौन्दर्य को देखकर आसक्त हो गई। उसने तत्काल उसी स्त्री का रूप बना लिया और आकर पुरुष के पास रथ में बैठ गई। जब उसकी पत्नी शरीर चिन्ता से निवृत्त होकर रथ की ओर आने लगी, तो उसने अपने पति के पास

अपने ही समान रूपवाली दूसरी स्त्री बैठी देखी । स्त्री को आती हुई देखकर व्यन्तरी ने पुरुष से कहा–'यह कोई व्यन्तरी मेरे सरीखा रूप बनाकर तुम्हारे पास आना चाहती है, इसलिए रथ को जल्दी चलाओ ।" व्यन्तरी के कथनानुसार पुरुष, रथ को जल्दी चलाने लगा । इधर वह स्त्री रोती चिल्लाती हुई रथ के पीछे पीछे आने लगी । उसे इस तरह रोती हुई देख कर पुरुष असमञ्जस में पड़ गया । उसने रथ को धीमा कर दिया । थोड़ी देर में वह स्त्री, रथ के पास आ पहुँची । अब दोनों में झगड़ा होने लगा । एक कहती थी कि–"मैं इसकी स्त्री हूं" और दूसरी कहती कि "मैं" । इस प्रकार लड़ती झगड़ती वे दोनों गांव तक पहुंच गई । वहाँ न्यायालय में जाकर दोनों ने फरियाद की । न्यायाधीश ने पुरुष से पूछा–"तुम्हारी स्त्री कौनसी है ?" उत्तर में उसने कहा–'दोनों का एक सरीखा रूप होने से मैं निश्चय पूर्वक कुछ भी नहीं कह सकता ।" तब न्यायाधीश ने अपने बुद्धिबल से काम लिया । उसने पुरुष को दूर बिठा दिया और उन दोनों से कहा–"तुम दोनों में से जो पहले अपने हाथ से उस पुरुष को छू लेगी, वही उसकी स्त्री समझी जायगी ।" न्यायाधीश की बात सुनकर व्यन्तरी बहुत खुश हुई । उसने तुरन्त वैक्रिय शक्ति से अपना हाथ लम्बा करके उस पुरुष को छू लिया । इससे न्यायाधीश समझ गया कि 'यह कोई व्यन्तरी है ।' न्यायाधीश ने उससे कहा–"तुम इसकी स्त्री नहीं हो, तुमने दैवी माया से इस पुरुष को छल लिया है ।" ऐसा कहकर न्यायाधीश ने उसको वहां से निकलवा

दिया और पुरुष को उसकी स्त्री सौंप दी। इस प्रकार निर्णय करना न्यायाधीश की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

१५ मूलदेव का छल

(स्त्री)

मूलदेव और पुण्डरीक नाम के दो मित्र थे। एक दिन वे कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक पुरुष को देखा जो अपनी स्त्री को साथ लेकर जा रहा था। स्त्री के अद्भुत रूप लावण्य को देखकर पुण्डरीक उस पर मुग्ध हो गया। उसने मूलदेव से कहा—"मित्र ! यदि इस स्त्री से मिला दो, तो जीवित रह सकूंगा, अन्यथा मर जाऊँगा। मूलदेव ने कहा—"मित्र ! घबराओ मत। मैं तुम्हें इससे अवश्य मिला दूंगा।" इसके बाद वे दोनों पति-पत्नी से नजर बचाते हुए शीघ्र ही बहुत दूर निकल गये। आगे जाकर मूलदेव ने पुण्डरीक को एक वन-निकुंज में बिठा दिया और स्वयं रास्ते पर आकर खड़ा हो गया। जब वे पति-पत्नी वहां पहुँचे, तो मूलदेव ने उस पुरुष से कहा—"महाशय ! इस वन-निकुंज में मेरी स्त्री प्रसव वेदना से कष्ट पा रही है। थोड़ी देर के लिए आप अपनी स्त्री को वहां भेज दें, तो बड़ी कृपा होगी।" उस पुरुष ने अपनी स्त्री को वहाँ जाने के लिए कह दिया। स्त्री बड़ी चतुर थी। वह वन-निकुंज की ओर जाने लगी। उसने दूर से ही देख लिया कि वननिकुंज में कोई पुरुष छिप कर बैठा हुआ है। वह वहीं से तत्काल वापिस लौट आई। आकर उसने मूलदेव

से कहा-"आपकी स्त्री ने सुन्दर बालक को जन्म दिया है। जाकर देखिये।" यह मूलदेव की और उस स्त्री की-दोनों की औत्पत्तिकी वुद्धि थी।

१६ दोनों में से प्यारा कौन

(पति)

किसी गाँव में दो भाई रहते थे। उन दोनों के एक ही स्त्री थी। वह स्त्री दोनों से समान प्रेम करती थी। लोगों को आश्चर्य होता था कि यह स्त्री अपने दोनों पति से एक-सा प्रेम कैसे करती है ? धीरे धीरे यह वात राजा के कानों तक पहुँची। राजा को वड़ा आश्चर्य हुआ। उसने मन्त्री से इस वात का जिक्र किया। मन्त्री ने कहा-"देव ! ऐसा कदापि नहीं हो सकता। दोनों भाइयों में से छोटे या वड़े किसी एक पर उसका अवश्य विशेप प्रेम होगा।" राजा ने कहा-यह कैसे मालूम होगा ?" मन्त्री ने कहा-"देव ! यह कौनसी वड़ी वात है ? मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि जिससे इसका शीघ्र पता लग जायगा।"

एक दिन मन्त्री ने उस स्त्री के पास यह आदेश भेजा कि "कल प्रातःकाल तुम अपने दोनों पति को दो गांवों को भेज देना। एक को पूर्व दिशा के अमुक गांव में और दूसरे को पश्चिम दिशा के अमुक गांव में भेजना और उन्हें यह भी कह देना कि कल शाम को ही वे दोनों वापिस लौट आवें।"

दोनों भाइयों मे से छोटे पर स्त्री का अधिक प्रेम था और

बड़े पर कम। इसलिए उसने छोटे पति को पश्चिम की ओर भेजा और बड़े को पूर्व की ओर। पूर्व की ओर जानेवाले पुरुष के, जाते समय और वापिस आते समय सूर्य सामने रहता था और पश्चिम की ओर जानेवाले के पीठ पीछे। इस पर से मन्त्री ने यह निर्णय किया कि छोटा पति (जो पश्चिम की ओर भेजा गया था) उस स्त्री को अधिक प्रिय है और बड़ा पति (जो पूर्व की ओर भेजा गया था) उसकी अपेक्षा कम प्रिय है। मन्त्री ने अपना निर्णय राजा को सुनाया। राजा ने मन्त्री के निर्णय को स्वीकार नहीं किया और कहा कि एक को पूर्व में और दूसरे को पश्चिम में भेजना अनिवार्य था, क्योंकि हुक्म ऐसा ही था। इसलिए कौन अधिक प्रिय है और कौन कम, इस बात का निर्णय कैसे किया जा सकता है?

मन्त्री ने दूसरी वार फिर उस स्त्री के पास आदेश भेजा कि "तुम अपने दोनों पति को फिर उन्हीं गांवों में भेजो।" मन्त्री के आदेशानुसार स्त्री ने अपने दोनों पति को पहले की तरह उन गांवों में भेजा। इसके बाद मन्त्री ने ऐसी व्यवस्था कर दी कि दो आदमी उस स्त्री के पास एक ही साथ पहुंचे। दोनों ने कहा—"तुम्हारे पति रास्ते में अस्वस्थ हो गये हैं।" दोनों पति के अस्वस्थ होने के समाचार सुनकर स्त्री ने वड़े पति के लिए कहा—"वे तो सदा ऐसे ही रहा करते हैं।" फिर छोटे पति के [illegible] कहा—"वे कोमल हैं, वहुत घवरा रहे होंगे। इस[illegible] सा कहकर वह अपने छोटे पति [illegible] के [illegible] गई।

दोनों पुरुषों ने मन्त्री के पास जाकर सारा हाल कहा। उसे सुनकर मन्त्री ने राजा से निवेदन किया। राजा, मन्त्री की बुद्धिमत्ता पर बहुत प्रसन्न हुआ। इस प्रकार निर्णय करना मंत्री की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

१७ पुत्र किस का

एक सेठ के दो स्त्रियाँ थीं। उनमें एक पुत्रवती थी और दूसरी वन्ध्या थी। वन्ध्या स्त्री भी अपनी सौत के लड़के को बहुत प्यार करती थी। इसलिए बालक दोनों को ही माँ समझता था। वह उन दोनों में यह नहीं जानता था कि उसकी सगी माँ कौन है। कुछ समय के पश्चात् वह सेठ अपने सारे परिवार को लेकर परदेश चला गया और विदेश में ही सेठ की मृत्यु हो गई। अब दोनों स्त्रियाँ झगड़ने लगी। एक ने कहा–'यह पुत्र मेरा है, इसलिए घर की मालकिन मैं हूँ।" इस पर दूसरी ने कहा–"यह पुत्र मेरा है अतः घर की मालकिन तो मैं हूँ।" इस विषय में दोनों में कलह उत्पन्न हो गया। अन्त में दोनों न्यायालय में गई। दोनों स्त्रियों की बात सुन कर न्यायाधिकारी विचार में पड़ गया कि इसका निर्णय कैसे किया जाय ? उसने अपने बुद्धिबल से काम लिया। उसने आज्ञा दी कि–"इनका सारा धन मेरे सामने लाकर दो भागों में बाँट दो। इसके बाद करवत के द्वारा इस लड़के के भी दो टुकड़े कर डालो और एक एक टुकड़ा दोनों को दे दो।"

निर्णय सुन कर पुत्र की सच्ची माता का हृदय काँप उठा। वह व्याकुल हो कर कहने लगी—"महानुभाव ! मुझे पुत्र नहीं चाहिए और धन भी नहीं चाहिए। यह पुत्र इसी को दे दीजिए और घर की मालकिन भी इसी को बना दीजिए, किंतु पुत्र के दो टुकड़े मत करवाइये। मैं तो किसी के यहाँ नौकरी करके भी अपना निर्वाह कर लूँगी और इस बालक को दूर से ही देख कर अपने मन में सन्तोष मानूंगी। किंतु पुत्र के टुकड़े कर देने से तो अभी ही मेरा संसार अन्धकारपूर्ण हो जायगा।" इस प्रकार पुत्र के जीवन के लिए एक स्त्री करुण विलाप कर चिल्ला रही थी, परन्तु दूसरी स्त्री ने कुछ नहीं कहा। वह चुपचाप बैठी रही। इससे अधिकारी ने यह समझ लिया कि 'पुत्र का खरा दर्द इसी स्त्री को है, इसलिए यही इसकी सच्ची माता है।' ऐसा समझ कर उसने उस स्त्री को पुत्र दे दिया और उसी को घर की मालकिन बना दी। अधिकारी ने दूसरी स्त्री को तिरस्कार पूर्वक वहाँ से निकलवा दिया। अधिकारी की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

अब शेष दृष्टान्तों को सूत्रकार प्रस्तुत करते हैं—

महुसित्थ मुद्दि अंके य, नाणए भिक्खु चेडगनिहाणे।
सिक्खा य अत्थसत्थे, इच्छा य महं सयसहस्से ॥७२॥

अर्थ—१८ मधु का छत्ता, १९ मुद्रिका, २० अंक २१ नाणक २२ भिक्षु, २३ चेटक-बालक और निधान २४ शिक्षा २५ अर्थ शास्त्र, २६ 'जो इच्छा हो वह मुझे देना' २७ एक लाख।

१८ शहद का छत्ता

(मधु सिक्थ)

एक नदी के दोनों किनारों पर धीवर (मछुए) लोग रहते थे। उनमें जातीय संबंध होने पर भी आपस में मन मुटाव था। इसलिए उन्होंने अपनी स्त्रियों को विरोधी पक्षवाले किनारे पर जाने के लिए मना कर दिया था। किन्तु जब धीवर लोग काम पर चले जाते थे, तब स्त्रियाँ दूसरे किनारे पर आया जाया करती थीं और आपस में मिला करती थीं। एक दिन एक धीवर की स्त्री दूसरे किनारे पर गई हुई थी। उसने वहाँ से अपने घर के पास कुञ्ज में एक मधुछत्र (शहद से भरा हुआ मधु-मक्खियों का छत्ता) देखा।

कुछ दिन बाद उस स्त्री के पति को औषधि के लिए शहद की आवश्यकता हुई। वह शहद खरीदने के लिए बाजार जाने लगा, तो उसकी स्त्री ने कहा–"बाजार से शहद क्यों खरीदते हो? अपने घर के पास ही मधुछत्र है। चलो मैं तुम्हें दिखाती हूँ।" यह कह कर वह अपने पति को साथ लेकर मधुछत्र दिखाने गई, किंतु इधर उधर बहुत ढूंढने पर भी उसे मधुछत्र दिखाई नहीं दिया। तब स्त्री ने कहा–"उस किनारे से बराबर दिखाई देता है। चलो, वहाँ चलें। वहाँ से मैं तुम्हें जरूर दिखा दूंगी।" यह कह कर वह अपने पति को साथ लेकर दूसरे किनारे पर आई और वहाँ अपने विरोधी धीवर के घर के पास खड़ी रह कर उसने मधुछत्र दिखा दिया। उससे

धीवर ने सहज ही यह समझ लिया कि—मना करने पर भी मेरी स्त्री दूसरे किनारे पर, निषिद्ध घर में आती जाती है। धीवर की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

१९ दबाई हुई धरोहर निकलवाना

(मुद्रिका)

किसी नगर में एक पुरोहित रहता था। लोग उसका बहुत विश्वास करते थे। लोगों में वह सचाई और ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध था। लोग कहते थे—"पुरोहितजी, किसी की धरोहर नहीं दबाते। बहुत समय से रक्खी हुई धरोहर को भी वे ज्यों की त्यों लौटा देते हैं।" इसी विश्वास पर एक गरीब आदमी ने अपनी धरोहर उनके पास रखी और वह परदेश चला गया। बहुत समय के बाद वह परदेश से लौटा और पुरोहित के पास जाकर अपनी धरोहर माँगी। पुरोहित बिलकुल अनजान-सा बन कर कहने लगा—"तुम कौन हो ? मैं तुम्हें नहीं जानता। तुमने मेरे पास धरोहर कब रखी थी ?" पुरोहित का वचन सुन कर वह हक्का बक्का-सा रह गया। धरोहर ही उसका सर्वस्व था। उसके चले जाने से वह शून्य चित्त होकर इधर उधर भटकने लगा।

एक दिन उसने प्रधानमन्त्री को जाते देखा। वह उनके पास पहुँचा और कहने लगा—"मन्त्रीजी ! एक हजार मोहरों की मेरी धरोहर मुझे पुरोहितजी से दिलवा दीजिए।" उसके वचन सुन कर प्रधानमन्त्री सारी बात समझ गया। उसको उस पुरुष पर

बड़ी दया आई। उसने इस विषय में राजा से निवेदन किया और उस ग़रीब को भी हाजिर किया। राजा ने पुरोहित को बुला कर कहा—"तुम इस पुरुष की धरोहर वापिस क्यों नहीं लौटाते ?" पुरोहित ने कहा—"राजन्! मैंने इसकी धरोहर रखी ही नहीं, मैं कहाँ से लौटाऊँ?" यह सुन कर राजा चुप रह गया। जब पुरोहित अपने घर वापिस लौट गया, तब राजा ने उस व्यक्ति से पूछा—'बतलाओ, सच बात क्या है ? तुमने पुरोहित के पास धरोहर किस समय रखी थी और किसके सामने रखी थी?" इस पर उस गरीब ने स्थान, समय और उपस्थित व्यक्तियों के नाम बता दिए। उसकी बात सुन कर राजा को उसकी बात पर विश्वास हो गया।

दूसरे दिन राजा ने पुरोहित के साथ खेल खेलना शुरू किया। खेलते खेलते राजा ने अपनी और पुरोहित की अंगूठियाँ आपस में बदल लीं। इसके पश्चात् अपने एक विश्वस्त सेवक को बुला कर उसे पुरोहित की अंगूठी दी और कहा—"पुरोहित के घर जा कर उनकी स्त्री से कहना —"पुरोहितजी, अमुक दिन अमुक समय धरोहर में रखी हुई उस गरीब की एक हजार मोहरों की थैली मँगा रहे है। आप के विश्वास के लिए उन्होंने अपनी अंगूठी भेजी है।

पुरोहितजी के घर जा कर उसने पुरोहित की स्त्री से ऐसा ही कहा। पुरोहित की अंगूठी देख कर तथा अन्य बातों के मिल जाने से स्त्री को विश्वास हो गया और उसने आये हुए पुरुष को उस गरीब की थैली दे दी। राजा ने दूसरी अनेक थैलियों

के बीच में वह थेली रख दी और उस गरीब को बुला कर कहा कि–"इनमें से जो थेली तुम्हारी हो, उसे उठा लो।" गरीब ने अपनी थेली पहचान कर तुरन्त उठा ली और बहुत प्रसन्न हुआ। राजा ने पुरोहित को जिव्हा छेद का कठोर दण्ड दिया। धरोहर का पता लगाने में राजा की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

२० खरे खोटे रुपयों का भेद

(अंक)

किसी एक नगर में एक प्रतिष्ठित सेठ रहता था। लोग उसे बहुत विश्वासपात्र समझते थे। एक समय एक मनुष्य ने एक हजार रुपयों से भरी हुई एक थैली उसके पास रखी और परदेश चला गया। सेठ ने उस थैली के नीचे के भाग को काट कर उसमें से असली रुपये निकाल लिये और बदले में नकली रुपये भर दिये। थैली के कटे हुए भाग को सावधानी पूर्वक सिला कर उसने उसे ज्यों की त्यों रख दी।

कुछ दिनों बाद वह मनुष्य परदेश से लौट आया। सेठ के पास जाकर उसने अपनी थैली मांगी और सेठ ने उसकी थैली दे दी। घर आकर उसने थैली खोली और देखा, तो सभी खोटे रुपये निकले। उसने जाकर सेठ से कहा। सेठ ने उत्तर दिया–"मैंने तो तुम्हें तुम्हारी थैली ज्यों की त्यों लौटा दी है। अब मैं कुछ नहीं जानता।" जब किसी भी तरह मामला आपस में नहीं सुलझा, तब उस मनुष्य ने न्यायालय में फरियाद

की। न्यायाधीश ने पूछा—"तुम्हारी थेली में कितने रुपये थे ?" उसने कहा—"एक हजार रुपये।" न्यायाधीश ने उसमें खरे रुपये डालकर देखा, तो जितना भाग कटा हुआ था उतने रुपये वाकी वच गये, शेष सब समा गये। न्यायाधीश को उस मनुष्य की वात सच्ची मालूम पड़ी। उसने सेठ को वुलाया और अनुशासन पूर्वक असली रुपये दिलवा दिये। न्यायाधीश की यह औत्पत्तिकी वुद्धि थी।

२१ नकली मोहरें किसकी थी ?

(नाणक)

किसी नगर में एक सेठ रहता था। लोगों का उस पर वहुत विश्वास था। एक समय एक मनुष्य ने मोहरों से भरी हुई एक थैली उसके पास रखी और वह परदेश चला गया। कुछ वर्षों के वाद सेठ ने उस थैली में से असली मोहरें निकाल ली और गिन कर उतनी ही नकली मोहरें उस थैली में भर दीं और सावधानी पूर्वक थैली को ज्यों की त्यों सिलाकर रख दी। वहुत वर्षों के पश्चात उस धरोहर का स्वामी देशान्तर से लौट आया और सेठ के पास जाकर उसने थैली मांगी। सेठ ने उसे थैली दे दी। वह उसे लेकर घर चला आया। जब थैली को खोल कर देखी, तो असली मोहरों की जगह नकली मोहरें निकली। उसने जाकर सेठ से कहा। सेठ ने कहा—"तुमने मुझे जो थैली दी थी, वही मैंने तुमको ज्यों की त्यों वापिस लौटा दी। नकली असली के विषय में मैं कुछ नहीं जानता।" सेठ

की बात सुनकर वह बहुत निराश हुआ। कोई उपाय न देख-कर उसने न्यायालय में फरियाद की। न्यायाधीश ने उससे पूछा—"तुमने सेठ के पास थैली कब रखी थी?" उसने थैली रखने का संवत् और दिन बता दिया।

न्यायाधीश ने मोहरों पर का समय देखा, तो मालूम हुआ कि वे बाद के कुछ वर्षों की नई बनी हुई है और थैली तो इन मोहरों के समय से कई वर्ष पहले रखी गई थी। न्यायाधीश ने सेठ को झूठा ठहराया। धरोहर के मालिक को असली मोहरें दिलवाई और सेठ को दण्ड दिया। न्यायाधीश की यह औत्प-त्तिकी बुद्धि थी।

२२ लोभी के साथ धूर्त्तता
(भिक्षु)

किसी जगह एक महंतजी रहते थे। उन्हें विश्वासपात्र समझकर एक मनुष्य ने उनके पास अपनी मोहरों की थैली धरोहर रखी और वह यात्रा करने के लिए चला गया। कुछ समय बाद वह लौटकर आया और महंतजी के पास जाकर उसने अपनी थैली मांगी। महंतजी टालमटूल करने के लिए उसे आज-कल बताने लगे। धरोहर रखनेवाले को सन्यासी की नियत में सन्देह हुआ। उसने कुछ जुआरियों से मित्रता की और अपनी हकीकत कह सुनाई। उन्होंने कहा—"तुम चिन्ता मत करो, हम तुम्हारी थैली दिलवा देंगे। तुम अमुक दिन, अमुक समय सन्यासीजी के पास आकर अपनी थैली मांगना।

हम वहां आगे तैयार मिलेंगे ।"

जुआरियों ने गेरुए वस्त्र पहनकर सन्यासी का वेश बनाया। हाथ में सोने की खूँटियाँ लेकर वे महंतजी के पास आये और कहने लगे–'महंतजी ! हम यात्रा करने के लिए जा रहे हैं। आप बड़े विश्वासपात्र हैं। इसलिए ये सोने की खूँटियाँ हम आपके पास रखना चाहते हैं। यात्रा से वापिस लौटकर हम लेलेंगे ।"

इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि पूर्व संकेत के अनुसार वह व्यक्ति महंतजी के पास आया और अपनी थैली मांगने लगा। सोने की खूँटियाँ धरोहर रखनेवाले सन्यासियों के सामने अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए महंतजी ने उसी समय उसकी थैली लौटा दी। वह अपनी थैली लेकर रवाना हुआ। अपना प्रयोजन सिद्ध हो जाने से जुआरी लोग भी कुछ बहाना बनाकर सोने की खूँटियाँ लेकर अपने स्थानपर लौट आये और महंतजी मुंह ताकते रह गये। महंतजी से धरोहर दिलाने की जुआरियों की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

२३ लड़के बन्दर बनगए ?

(चेटक)

एक गांव में दो भिन्न प्रकृतिवाले मित्र रहते थे। उनमें से एक कपटी था और दूसरा सरल। एक बार वे किसी दूसरे गांव से अपने गांव लौट रहे थे कि रास्ते में जंगल में उन्हें एक निधान (गड़ा हुआ धन) प्राप्त हुआ। उसे देखकर कपटी मित्र

ने माया पूर्वक कहा—"मित्र ! आज तो अच्छा नक्षत्र नहीं है। इसलिए कल आकर हम शुभ नक्षत्र में इस निधान को ले जायेंगे।" दूसरे मित्र ने सरल भाव से उसकी बात मान ली और उस निधान को वहीं छोड़ कर वे दोनों अपने अपने घर चले गये। रात के समय कपटी मित्र ने आकर सारा धन निकाल लिया और बदले में कोयले भर दिये।

दूसरे दिन प्रातःकाल दोनों मित्र वहाँ जाकर निधान खोदने लगे, तो उसमें से कोयले निकले। कोयलों को देखते ही कपटी मित्र सिर पीट पीट कर रोने लगा—"हाय ! हम बड़े अभागे हैं। देव ने हमें आँखे देकर वापिस छीन लीं, जो निधान दिखला कर कोयले दिखलाये।" इस प्रकार ढोंगपूर्ण रोता चिल्लाता हुआ वह कपटी बीच-बीच में अपने मित्र के चेहरे की ओर देख लेता था कि 'कहीं उसे मुझ पर शंका तो नहीं है।' उसका यह ढोंग देख कर दूसरा मित्र समझ गया कि 'इसी की यह धूर्त्तता है, फिर भी अपने मनोभाव छिपा कर आश्वासन देते हुए उसने कहा—"मित्र अब चिन्ता करने से क्या लाभ ! रोने-पीटने से निधान थोड़े ही मिलता है। क्या किया जाय ? अपना भाग्य ही ऐसा है।" इस प्रकार उसने उसको सान्त्वना दी। फिर दोनों अपने अपने घर चले गये।

कपटी मित्र से बदला लेने के लिए दूसरे मित्र ने एक उपाय सोचा। उसने कपटी मित्र की एक मिट्टी की मूर्ति बनवाई और उसे घर में रख दी। फिर उसने दो बन्दर पाले। एक दिन उसने प्रतिमा की गोद में, हाथों पर, कन्धों पर तथा शरीर के अन्य

अन्य भागों में बन्दरों के खाने योग्य चीजें डाल दीं और फिर उन बन्दरों को छोड़ दिया। बन्दर भूखे थे। वे प्रतिमा पर चढ़ कर उन चीजों को खाने लगे। बन्दरों को अभ्यास कराने के लिए वह प्रतिदिन इसी तरह करने लगा और बन्दर भी प्रतिमा पर चढ़ कर वहाँ रही हुई चीजें खाने लगे। धीरे धीरे बन्दर प्रतिमा से इतने हिल-मिल गये कि वे प्रतिमा से यों ही खेलने लगे। इसके बाद किसी पर्व के दिन उसने अपने कपटी मित्र के दोनों लड़कों को अपने घर भोजन करने का निमन्त्रण दिया और भोजन कराने के बाद उन्हें किसी गुप्त स्थान पर छिपा दिया।

जब बालक लौट कर नहीं आये, तो दूसरे दिन लड़कों का पिता अपने मित्र के घर आया और अपने दोनों लड़कों के लिए पूछा। उसने कहा—"उस घर में हैं।" उस घर में मित्र के आने से पहले ही उस प्रतिमा को हटा कर आसन बिछा रखा था। वहीं पर उसने मित्र को बिठाया। इसके बाद उसने दोनों बंदरों को छोड़ दिया। वे किलकिलाहट करते हुए आए और उस कपटी मित्र को प्रतिमा समझ कर उसके शरीर पर सदा की तरह उछलने कूदने लगे। यह लीला देख कर वह बड़े आश्चर्य में पड़ा। तब दूसरा मित्र खेद प्रदर्शित करते हुए कहने लगा—"मित्र ! ये ही तुम्हारे दोनों लड़के हैं। बहुत दुःख की बात है कि ये दोनों बन्दर हो गये हैं। देखो ! किस तरह ये तुम्हारे प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित कर रहे हैं ?" तब कपटी मित्र बोला—"मित्र ! तुम क्या कर रहे हो ? क्या मनुष्य भी कहीं बन्दर हो सकते हैं ?" इस पर दूसरे मित्र ने कहा—"मित्र भाग्य की

बात है। जिस प्रकार अपने भाग्य के फेर से गड़ा हुआ धन भी कोयला हो गया, उसी प्रकार भाग्य के फेर से तुम्हारे पुत्र भी बन्दर हो गए हैं। इसमें आश्चर्य करने जैसी बात क्या है?"

मित्र की बात सुन कर उस मायावी ने समझ लिया कि इसको निधान विषयक मेरी चालाकी का पता लग गया है। अब यदि मैं अपने लड़कों के लिए झगड़ा करूँगा, तो मामला बहुत बढ़ जायगा। राज दरबार में मामला पहुँचने पर निधान न तो मेरा रहेगा और न इसका ही। ऐसा सोच कर उसने उसको निधान विषयक सच्ची बात कह दी और अपनी गलती के लिए क्षमा मांगी। निधान का आधा हिस्सा भी उसने उसको दे दिया और उसे उसके दोनों लड़के मिल गए। मित्र की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

२४ गोबर के उपलों में

(शिक्षा)

एक पुरुष धनुर्विद्या में प्रवीण था। घूमते हुए वह एक नगर में पहुँचा और वहाँ सेठों के लड़कों को धनुर्विद्या सिखाने लगा। लड़कों ने उसे बहुत धन दिया। जब यह बात सेठों को मालूम हुई, तो उन्होंने सोचा कि इसने लड़कों से बहुत धन ले लिया है। इसलिए जब यह यहाँ से अपने गाँव को रवाना होगा, उस समय इसे मार कर सारा धन वापिस ले लेंगे।

कलाचार्य को किसी प्रकार से इन विचारों का पता लग गया। उसने दूसरे गाँव में रहनेवाले अपने सम्बन्धियों को

सूचना दी कि "अमुक रात में मैं गोबर के पिण्ड नदी में फेंकूंगा, सो आप उन्हें ले लेना।" इसके पश्चात् कलाचार्य ने गोबर के कुछ पिण्डों में द्रव्य मिला कर उन्हें धूप में सुखा दिया। कुछ दिनों बाद उसने लड़कों से कहा–"अमुक तिथि पर्व को रात्रि के समय हम लोग नदी में स्नान करते हैं और मन्त्रोच्चारणपूर्वक गोबर के पिण्डों को नदी में फेंकते हैं। ऐसी हमारी कुल-विधि है।" लड़कों ने कहा–"ठीक है। हम भी योग्य सेवा करने के लिए तैयार हैं।"

कुछ दिन बाद जब वह पर्व आया, तब रात्रि के समय कलाचार्य उन लड़कों के सहयोग से गोबर के उन पिण्डों को नदी किनारे ले आया। कलाचार्य ने स्नान करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन गोबर के पिण्डों को नदी में फेक दिया। पहले किये हुए संकेत के अनुसार कलाचार्य के सम्बन्धी जनों ने नदी में से गोबर के उन पिण्डों को निकाल लिया और अपने घर ले गये।

कुछ दिन बाद कलाचार्य ने विद्यार्थियों का विद्याध्ययन समाप्त करवा दिया। फिर विद्यार्थियों से और उनके पिताओं से मिल कर अपने गांव के लिए रवाना हुआ। जाते समय जरूरी वस्त्रों के सिवाय उसने अपने साथ कुछ भी नहीं लिया। जब सेठों ने देखा कि इसके पास कुछ नहीं है, तो उन्होंने उसे मारने का विचार छोड़ दिया। कलाचार्य सकुशल अपने घर लौट आया और अपने सम्बन्धीजनों से उन गोबर के पिण्डों को लेकर उन में से धन निकाल लिया।

मुझ से कहा था कि 'जो तुम चाहो, सो मुझे देना।" उसकी बात सुन कर न्यायाधीश ने वसूल किया हुआ सारा धन वहाँ मँगवाया और उसके दो भाग करवाये–एक बड़ा और दूसरा छोटा। फिर रुपये वसूल करनेवाले से पूछा–"तुम कौन-सा भाग लेना चाहते हो ?" उसने कहा–"मैं यह बड़ा भाग लेना चाहता हूँ।" तब न्यायाधीश ने कहा–"तुम्हारी शर्त के अनुसार यह बड़ा भाग सेठानी को दिया जायगा और छोटा भाग तुम्हें।" सेठानी ने तुम्हें यही कहा था कि–'यत् त्वमिच्छसि तन्मह्यं ददया:' अर्थात् जो चाहो, सो मुझे देना।' तुम बड़ा भाग चाहते हो, इसलिए तुम्हारी शर्त के अनुसार यह बड़ा भाग सेठानी को मिलेगा।

इस प्रकार शर्त के अक्षरार्थ का विचार कर न्यायाधीश ने वह बड़ा भाग सेठानी को दिलवा दिया। यह न्यायाधीश की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

३७ अश्रुतपूर्व

(शतसहस्र)

ऐक परिव्राजक था। उसके पास सोने का एक बड़ा पात्र था। परिव्राजक की बुद्धि बड़ी तेज थी। वह एक बार जो बात सुन लेता था, उसे ज्यों की त्यों याद हो जाती थी। उसको अपनी तीव्र बुद्धि पर बड़ा घमण्ड हो गया था। एक बार उसने यह घोषणा की कि यदि कोई मुझे अश्रुतपूर्व (पहले कभी नहीं सुनी हुई) बात सुनावेगा, तो मैं उसे यह

स्वर्ण-पात्र पुरस्कार में दूंगा ।

परिव्राजक की घोषणा को सुन कर कई लोग उसे नई बात सुनाने के लिए आये, किंतु कोई भी उस पुरस्कार को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सका । जो भी नई बात सुनाई जाती, वह परिव्राजक को याद हो जाती और वह उसे ज्यों की त्यों वापिस सुना देता और कह देता कि "यह बात तो मेरी सुनी हुई है ।"

परिव्राजक की उपरोक्त प्रतिज्ञा एक सिद्धपुत्र ने सुनी । उसने लोगों से कहा—"यदि परिव्राजक अपनी प्रतिज्ञा पर कायम रहे, तो मैं अवश्य उसे नई बात सुनाऊंगा ।" आखिर वे दोनों राजा के पास पहुँचे । जनता भी बहुत इकट्ठी हुई । सभी लोगों की दृष्टि सिद्धपुत्र की ओर लगी हुई थी । राजा की आज्ञा पाकर सिद्धपुत्र ने परिव्राजक को लक्ष्य करके निम्नलिखित श्लोक कहा—

+ तुज्झ पिया महपिउणा, धारेइ अणुणगं सयसहस्सं ।
जइ सुयपुव्वं दिज्जउ, अह ण सुयं खोरयं देसु ॥

अर्थात्—'मेरे पिता, तुम्हारे पिता में पूरे एक लाख रुपये मांगते हैं ।' यदि यह बात तुमने पहले सुनी है, तो अपने पिता का कर्ज चुका दो और यदि नहीं सुनी है, तो खोरक (सोने का बर्तन) मुझे दे दो ।

सिद्धपुत्र की बात सुन कर परिव्राजक बड़े असमञ्जस में

+ हिन्दी भाषा में इस प्रकार है:-
मेरा पिता, पिता तेरे में, रुपया मांगे पूरा लाख ।
जो सुना हो तो दे दे, नहीं तो खोरक आगे राख ॥

पड़ गया। निरुपाय हो कर उसने हार मान ली और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार स्वर्ण-पात्र सिद्धपुत्र को दे दिया। सिद्धपुत्र की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी। (टीका)

वैनयिकी बुद्धि

अब सूत्रकार वैनेयिकी बुद्धि के लक्षण प्रस्तुत करते हैं।

भरनित्थरणसमत्था, तिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला।
उभओलोगफलवई, विणयसमुत्था हवइ बुद्धी ॥७३॥

अर्थ–जो बुद्धि धर्म, अर्थ काम–तीनों पुरुषार्थ, अथवा तीनों लोक का तलस्पर्शी ज्ञान रखने वाली है और विकट से विकट प्रसंग को भी पार कर सकती है तथा उभय-लोक सफल बना देती है, उसे वैनेयिकी बुद्धि कहते हैं।

विवेचन–१ जो बुद्धि गुरुजनों के विनय से उत्पन्न हो, उसे वैनेयिकी बुद्धि कहते हैं। २ वैनेयिकी बुद्धि से भारी से भारी लगनेवाले गुरुतर कार्य भी--जिनका वहन करना अतीव कठिन होता है, हलके से हलके बन जाते हैं और अतीव सरलता से पूर्ण सम्पन्न हो जाते हैं। ३ गुरु से ज्ञान, दर्शन, चारित्र, या इहलोक परलोक और मोक्ष विषयक जो सूत्रार्थ ग्रहण किया जाता है, उसके सार, रहस्य और मर्म स्वतः ध्यान में आ जाते हैं। ४ वैनेयिकी बुद्धि से जो कार्य किये जाते हैं, उसका उभय-लोक में फल मिलता है।

अब सूत्रकार वैनेयिकी बुद्धि को स्पष्ट करनेवाले पन्द्रह दृष्टान्तों के नाम की संग्रह गाथा कहते हैं।

निमित्ते अत्थसत्थे य, लेहे गणिए य कूव अस्से य ।
गद्दभ लक्खण गंठी, अगए रहिए य गणिया य ।७४।

अर्थ–१ निमित्त, २ अर्थशास्त्र, ३ लेख, ४ गणित, ५ कूप, ६ अश्व, ७ गर्दभ, ८ लक्षण, ९ ग्रन्थी, १० औषधि, ११ रथिक १२ गणिका ।

सीया साडी दीहं च, तणं अवसव्वयं च कुंचस्स ।
निव्वोदए य गोणे, घोडगपडणं च रुक्खाओ ॥७५॥

अर्थ–१३ भींगी साड़ी, दीर्घतृण और कोञ्च पक्षी का वाम आवर्त १४ नेवे का जल तथा १५ बैल घोड़ा और वृक्ष से गिरना ।

इन पन्द्रह दृष्टान्तों में पहला 'निमत्त' का नैमित्तिकों से सम्बन्धित दृष्टान्त इस प्रकार है–

१ भविष्यवाणी

(निमित्त)

किसी नगर में एक सिद्धपुत्र रहता था । उसके पास दो शिष्य थे । वह उन दोनों को निमित्तशास्त्र पढ़ाता था । उन दोनों में एक विनयादि गुणों से युक्त था । वह गुरु के कथन को यथावत् बहुमान पूर्वक स्वीकार करता था । गुरु के पास जो पाठ पढ़ता, उस पर फिर विचार करता और विचार करते हुए उसे जहां भी सन्देह होता, तत्काल गुरु के पास जाकर विनयपूर्वक पूछ लेता था । इस प्रकार निरन्तर विनय और

विवेकपूर्वक शास्त्र पढ़ते हुए उसकी बुद्धि अति तीव्र हो गई। दूसरा शिष्य अविनीत था। उसमें विनयादि गुण नहीं थे, इस कारण वह केवल शब्द ज्ञान ही प्राप्त कर सका। उसकी बुद्धि का विकास नहीं हो सका। एक दिन गुरु की आज्ञा से वे दोनों किसी गाँव जा रहे थे। रास्ते में उन्हें किसी बड़े जानवर के पैरों के चिन्ह दिखाई दिये। उन्हें देखकर विनयी शिष्य ने दूसरे से पूछा।

—"मित्र ! ये किसके पाँव हैं ?

अविनीत ने कहा—"इसमें पूछने की क्या बात है ? ये साफ हाथी के पैर के चिन्ह दिखाई देते हैं।"

विनयी ने कहा—"मित्र ! ये हाथी के पैर के चिन्ह नहीं, किंतु 'हथिनी' के हैं। वह हथिनी बाईं आँख से कानी है। उस पर कोई राजघराने की सधवा स्त्री बैठी है। वह गर्भवती है। उसके मास पूरे हो चुके हैं। एक दो दिन में ही उसके पुत्र जन्मे गा।"

विनयी की बात सुनकर दूसरे ने अहंकार पूर्वक कहा—"वाह ! तुम बड़े ज्ञानी बन रहे हो। ये सब बातें किस आधार पर कह रहे हो ?"

विनयी ने कहा—"मित्र ! गुरु ने जो ज्ञान हमें सिखाया है, उसी के आधार से विवेक पूर्वक विचार करके मैं ये सारी बातें कह रहा हूँ। यदि तुमको विश्वास नहीं है, तो आगे चलो। जब तुम इन सभी बातों को प्रत्यक्ष देखोगे, तो तुम्हें स्वतः विश्वास हो जायगा।"

वे दोनों उस गांव में पहुँचे। जाते ही क्या देखते हैं कि गांव के बाहर तालाब के किनारे किसी रानी का डेरा है। हथिनी खड़ी है और वह बांई आँख से कानी है। उसी समय एक दासी ने आकर मन्त्री से कहा–"स्वामिन् ! महाराज को पुत्र लाभ हुआ है। बधाई दीजिये।"

यह सुनकर विनयी ने दूसरे से कहा–"मित्र ! दासी का वचन सुना ?" उसने कहा–"हाँ मित्र ! सुन लिया है। तुमने जो बातें कही थीं वे सब सत्य हैं।"

इसके पश्चात् वे दोनों तालाब में स्नानादि करके वट वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए बैठ गये। उधर से मस्तक पर पानी का घड़ा रखे हुए एक बुढ़िया जा रही थी। उसने इन दोनों की आकृति आदि देखकर सोचा कि ये दोनों विद्वान् हैं। इसलिए इनसे पूछना चाहिए कि परदेश गया हुआ मेरा पुत्र कब लौटेगा ? ऐसा सोचकर वह उनके पास आई और विनय पूर्वक पूछने लगी। उसी समय उसके मस्तक पर से घड़ा गिर पड़ा और उसके टुकड़े टुकड़े हो गये। यह देखकर अविनीत तुरन्त बोल उठा–

"बुढ़िये ! जिस प्रकार घड़ा नष्ट हो गया है, उसी प्रकार तेरा पुत्र भी नष्ट हो गया है अर्थात् मर गया है।"

यह सुनकर विनयी ने कहा–"मित्र ! ऐसा मत कहो। इसका पुत्र घर आ गया है।" फिर विनयी ने बुढ़िया से कहा–"माँ ! घर जाओ और अपने बिछुड़े हुए पुत्र का मुँह देखो।"

विनयी की बात सुन कर बुढ़िया बड़ी प्रसन्न हुई। उसको

आशीर्वाद देती हुई अपने घर गई और घर पर आये हुए पुत्र को देखा। पुत्र ने विनय पूर्वक माता को प्रणाम किया। बुढ़िया ने पुत्र को अशीर्वाद देकर नैमित्तिक का कहा हुआ सब वृत्तांत कह सुनाया। उसे सुन कर पुत्र भी बड़ा प्रसन्न हुआ। फिर कुछ रुपये और वस्त्र लेकर वह बुढ़िया, विनयी के पास आई और उसे भेंट देकर घर लौट आई।

इन घटनाओं पर से विनयहीन सोचने लगा —गुरु ने मुझे अच्छी तरह नहीं पढ़ाया, अन्यथा जैसा यह जानता है, वैसा मैं भी क्यों नहीं जानता ?" वहाँ का कार्य समाप्त कर वे दोनों गुरु के पास आए। गुरु को देखते ही विनयी ने दोनों हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक गुरु के चरणों में प्रणाम किया। दूसरा ठूंठ की तरह खड़ा रहा। तब गुरु ने उससे कहा—"वत्स! गुरु को प्रणाम करना आदि शिष्टाचार का पालन भी नहीं करते ?" तब वह बोला—"जिसको आपने अच्छी तरह पढ़ाया है, वही प्रणाम करेगा। हम ऐसे पक्षपाती गुरु को प्रणाम नहीं करते।" इस पर गुरु बोले—"वत्स ! यह तुम्हारी भूल है। मैंने तुम दोनों को समान रूप से विद्या दी है। मैंने किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया। अविनीत ने प्रवास में घटी हुई घटना कह सुनाई। तब गुरु ने विनयी से पूछा—"वत्स ! कहो, तुमने यह सब कैसे जाना ?" वह बोला—"गुरुदेव ! मैंने यह सब आप की कृपा से जाना। बड़े बड़े पैरों के चिन्ह देखते ही मैंने विचार करना शुरू किया कि ये हाथी के तो पैर दिखते ही हैं, किन्तु इनमें विशेषता क्या है ? फिर उसकी लघुशंका से गिरे मूत्र

को देख कर यह निश्चय किया कि ये हथिनी के पैर हैं। आगे चलते हुए देखा, तो दाहिनी तरफ के वृक्ष के पत्ते खाये हुए थे, किन्तु बांई तरफ के नहीं। इससे मैंने यह समझा कि वह हथिनी बाँई आँख से कानी है। साधारण मनुष्य हाथी की सवारी नहीं कर सकता। इससे निश्चय किया गया कि इस पर कोई राज परिवार का मनुष्य है। वृक्ष पर लगे हुए रंगीन वस्त्र के टुकड़े को देख कर निश्चय किया कि वह रानी है और सधवा है। कुछ आगे चल कर देखा, तो लघुशंका की हुई थी और वापिस उठते हुए दोनों हाथों को जमीन पर टेक कर उठी थी, उसमें दाहिने पैर और दाहिने हाथ पर अधिक भार पड़ा हुआ था। इन सब बातों को देख कर यह निश्चय किया कि वह रानी गर्भवती है और थोड़े ही समय में उसके पुत्र उत्पन्न होगा। इस प्रकार मैंने चिन्हों से पहली बात जानी।

जब बुढ़िया ने आकर प्रश्न किया, तो उसी समय उसके सिर से घड़ा गिर कर फूट गया। इस पर से मैंने सोचा कि जैसे घड़े की मिट्टी का भाग मिट्टी में और पानी का भाग पानी में मिल गया उसी तरह इस बुढ़िया का पुत्र भी इसे मिल जाना चाहिए। इस प्रकार मैंने विवेक पूर्वक विचार किया, जिससे मेरी बातें सत्य सिद्ध हुई।

विनयी की उपरोक्त बात सुन कर गुरु बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसके विवेकज्ञान की बड़ी प्रशंसा की। दूसरे से कहा– "वत्स ! इसमें मेरा दोष नहीं है। यह तेरा ही दोष है जो तू विचार नहीं करता। मैं तो शास्त्र समझाने का अधिकारी हूँ

और सभी शिष्यों को समान रूप से पढ़ाता हूँ। इसके बाद उस पर विचार विमर्श करना तुम्हारा काम है। विचार विमर्श करने से ज्ञान का विकास एवं प्रसार होता है।"

विनयी शिष्य के निमित्त के विषय में यह वैनयिकी बुद्धि थी।

(२) अत्थसत्थे–अर्थशास्त्र के विषय में कल्पक मन्त्री का दृष्टांत है।

(३) लेहे–लिपि ज्ञान मे कुशलता होना भी वैनयिकी बुद्धि है।

(४) गणिए–गणित ज्ञान में कुशलता होना भी वैनयिकी बुद्धि है।

५ कूप खनन

किसी गांव में एक किसान रहता था। वह भूगर्भ विज्ञान में बड़ा कुशल था। एक समय उसने गांव के किसानों को वतलाया कि यहाँ इतना गहरा खोदने पर पानी निकल आवेगा। उसके कथनानुसार लोगों ने उतनी गहरी जमीन खोदडाली, फिर भी पानी नहीं निकला। तव किसान ने उनसे कहा कि इसके पास जरा एड़ी से प्रहार करो। उन्होंने जब एड़ी का प्रहार किया तो तत्काल पानी निकल आया। उस किसान की यह वैनयिकी बुद्धि थी।

६ घोड़े की परख

एक समय घोड़े के व्यापारी घोड़े वेचने के लिए द्वारिका

में आये। यदुवंशी राजकुमारों ने शरीरादि आकृतिवाले बड़े बड़े घोड़े खरीदे, किंतु वसुदेव ने लक्षण सम्पन्न एक दुर्बल घोड़ा लिया। कुछ ही दिनों में वह घोड़ा चाल में इतना तेज हो गया कि सब घोड़ों से आगे रहने लग गया।

लक्षण सम्पन्न घोड़ा चुनकर लेने में वसुदेव की विनयजा बुद्धि थी।

७ वृद्ध की सलाह

(गदहे)

किसी एक राजकुमार को युवावस्था में राज्याधिकार मिला। इसलिए वह सभी कार्यों में युवावस्था को ही समर्थ मानता था। इस कारण उसने अपनी सेना में सभी नौजवानों को भर्ती कर लिया और जो वृद्ध आदमी थे, उन्हें निकाल दिया। कालान्तर में वह सेना लेकर कहीं युद्ध करने के लिए गया। आगे चलते मार्ग भूलजाने के कारण एक भयंकर अटवी में चलेगये। वहां पानी नहीं मिलने से प्यास के मारे सभी सैनिक व्याकुल होगये। यह दशा देखकर राजा भी किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होगया। उस समय एक सेवक ने कहा—"स्वामिन्! ऐसी कठिनाई के समय किसी अनुभवी वृद्ध पुरुष की बुद्धि ही काम आ सकती है। अतः किसी वृद्ध पुरुष की खोज करनी चाहिए।" सेवक की बात सुनकर राजा ने वृद्ध पुरुष के लिए खोज करवाई और वृद्ध पुरुष को लाकर उपस्थित करने वाले को पुरस्कार देने की घोषणा करवाई।

राजा की सेवा में एक पितृ-भक्त सैनिक था। वह अपने पिता को प्रणाम करके पीछे भोजन करता था। पिता को प्रणाम किये बिना भोजन नहीं करने की उसकी प्रतिज्ञा थी। इसलिए वह राजा से छिपाकर अपने वृद्ध पिता को साथ ले आया था। राजा की घोषणा सुनकर उसने राजा से निवेदन किया। राजा ने उस वृद्ध को बुलवाया और आदर पूर्वक पूछा—"हे महाभाग! इस अटवी में मेरी सेना को पानी कहाँ मिलेगा?" वृद्ध ने कहा—"स्वामिन् कुछ गदहों को स्वतन्त्र छोड़ दीजिये, वे जहाँ भूमि को सूँघें, वहीं आस पास में पानी है।" राजा ने वैसा ही करवाया, जिससे सेना को पानी मिल गया और सभी सैनिकों के प्राण बच गये।

इस प्रकार पानी खोजने का उपाय बताना, उस वृद्ध की वैनयिकी बुद्धि है।

८ घर जमाई

(लक्षण)

पारस देश में एक घोड़ों का व्यापारी रहता था। उसके पास बहुत-से घोड़े थे। उसने किसी एक योग्य पुरुष को घोड़ों की साल-सम्हाल करने के लिए रखा और उससे कहा—"तुम इतने वर्ष तक काम करोगे, तो तुम्हारी इच्छानुसार दो घोड़े तुम को परिश्रम के बदले में दिये जावेंगे।" उसने स्वीकार कर लिया। इसके बाद वह घोड़ों की देखभाल करने लगा। रहते रहते स्वामी की कन्या के साथ उसका गाढ़-स्नेह हो गया। एक दिन उसने कन्या

से पूछा कि-"इन सब घोड़ों में दो घोड़े सब से अच्छे कौनसे हैं ?" कन्या ने कहा-"यों तो सभी घोड़े अच्छे हैं, किन्तु जो पर्वत के शिखर पर से गिराये गये पत्थरों के शब्दों को सुन कर भी नहीं डरते हैं, वे दो घोड़े सभी में उत्तम हैं। उसने उसी प्रकार परीक्षा करके उन दो घोड़ों की पहिचान कर ली। फिर निश्चित समय पूरा होने पर, अपना पारिश्रमिक लेने के समय उसने स्वामी से कहा-"मुझे अमुक अमुक दो घोड़े दीजिए।" स्वामी ने उससे कहा-"ये दोनों घोड़े तो दुवले पतले हैं, इन्हें लेकर क्या करोगे ? ये दूसरे अच्छे अच्छे घोड़े हैं, इन्हें ले लो।" उसने सेठ से कहा-"मुझे दूसरे घोड़े नहीं चाहिए। मैं इन्हीं दो घोड़ों को लेना चाहता हूँ।" तब सेठ ने सोचा-"इसे घर-जमाई वना लेना चाहिए, नहीं तो यह इन उत्तम घोड़ों को लेकर चला जायगा। लक्षण सम्पन्न घोड़ों के रहने से कुटुम्ब तथा धन-सम्पत्ति की वृद्धि होगी"-ऐसा सोच कर उसने अपनी पत्नी और पुत्री दोनों की अनुमति लेकर उसके साथ कन्या का विवाह करके उसे घर-जमाई रख लिया। इस प्रकार उस सेठ ने उन लक्षण सम्पन्न दोनों घोड़ों को वचा लिए।

उस सेठ की यह वैनयिकी वुद्धि थी।

९ ग्रंथि भेद

किसी समय पाटलिपुर में मुरंड नाम का राजा राज्य करता था। एक समय दूसरे देश के राजा ने कौतुक के लिए उसके पास ये तीन चीजें भेजी-१ गूढ़सूत्र यानी ऐसा सूत जिसके

गांठ छिपी हुई थी । २ समयष्टि—एक ऐसी लकड़ी कि जिसका ऊपर वाला और नीचेवाला दोनों भाग समान थे । ३ एक ऐसा डिब्बा जिसका मुंह लाख से चिपकाया हुआ था, किन्तु दिखाई नहीं देता था ।

राजा ने अपने सभी दरबारियों को तीनों वस्तुएँ दिखाई, किन्तु कोई भी इनके भेद को नहीं समझ सका । तब राजा ने 'पादलिप्त' नाम के आचार्य से पूछा—"भगवन् ! आप इन वस्तुओं के ग्रंथिद्वार को जानते हैं ? यदि जानते हों, तो बतलाने की कृपा कीजिये ।"

राजा की प्रार्थना को सुनकर आचार्य ने सूत को गरम पानी में डाला । जिससे सूत का मैल हट गया और उसका अन्तिम भाग दिख पड़ा ।

आचार्य जानते थे कि लकड़ी का मूल भाग भारी होता है और भारी भाग पर ही गांठ होती है । उन्होंने लकड़ी को भी पानी में डाली । इससे रहस्य खुल गया ।

डिब्बे को गरम करवाया । जिससे लाख गल गई और डिब्बे का मुंह साफ दिखाई दिया ।

राजा आदि सभी दर्शक इस कौतुक को देखकर बहुत प्रसन्न हुए । फिर राजा ने आचार्य से प्रार्थना की—"भगवन् ! आप भी कोई ऐसा दुर्ज्ञेय कौतुक करके मुझे दीजिये, जिसे मैं उस राजा के पास भेज सकूं ।" तब आचार्य ने एक तुम्बी के एक भाग को काटकर उसमें रत्न भर दिये और उस टुकड़े को वापिस इस प्रकार सी दिया कि किसी को मालूम नहीं पड़ सके ।

राजा ने वह तुम्बी उस विदेशी राजदूत को दी और कहा– "यह तुम्बी तुम्हारे राजा को देना और कहना कि इसको तोड़े विना ही इसमें से रत्न निकाल ले।" राजदूत ने वह तुम्बी अपने राजा को दी और सन्देश कह सुनाया। राजा ने वह तुम्बी अपने सभी दरबारियों को दिखाई, किन्तु किसी को भी उस कटे हुए भाग का पता नहीं चला और वे उसे विना तोड़े उसमें से रत्न नहीं निकाल सके। आचार्य की यह विनयजा बुद्धि थी।

१० विषोपशमन

(अगद)

किसी राजा के राज्य को कुछ शत्रु-राजाओं ने घेर लिया। उस राजा के पास बहुत थोड़ी सेना थी। उस सेना से वह शत्रु-राजाओं से अपनी रक्षा करने में असमर्थ था। इसलिए उसने पानी में विष प्रयोग करवाना शुरू किया। सभी लोग अपने अपने पास का विष लाने लगे। एक वैद्य ने एक चने जितना विष ले जाकर राजा को भेंट किया। बहुत थोड़ा विष देखकर राजा, वैद्य पर क्रुद्ध हुआ। वैद्य बोला–'स्वामिन ! थोड़ा विष देखकर आप अप्रसन्न नहीं होवें। यह विष सहस्रवेधी है।" इस पर राजा ने कहा–"इसके सहस्रवेधी होने का क्या प्रमाण है?" वैद्य ने उत्तर दिया–"राजन् ! किसी हाथी को मंगवाइये। मैं उसके शरीर में इसका प्रयोग करके दिखाऊँगा।" राजा ने उसी समय एक बूढ़ा हाथी मंगवाया। वैद्य ने उसकी पूंछ में से एक बाल उखाड़ा और उस बाल के छेद में विष प्रयोग

किया। धीरे धीरे वह विष उसके प्रत्येक अंग में फैलता गया और वह अंग नष्ट-सा हो गया। तब वैद्य ने कहा–'राजन्! हाथी का सारा शरीर विषमय हो गया है, अब जो भी इसके मांस को खायगा, वह विषमय हो जायगा। इस प्रकार यह विष क्रमशः हजार तक पहुंचता है।

हाथी को विषमय हुआ जानकर राजा कुछ उदास होकर बोला–"क्या अब हाथी को निर्विष करने का भी कोई उपाय है?" वैद्य बोला–राजन्! मैं औषध प्रयोग से इसको अभी निर्विष बना देता हूँ।" ऐसा कहकर वैद्य ने उसी बाल के छेद में एक औषधि का प्रयोग किया, जिससे कुछ ही समय में वह विष विकार शान्त हो गया और हाथी स्वस्थ बन गया। यह देखकर राजा वैद्य पर बड़ा प्रसन्न हुआ। वैद्य की यह विनयजा बुद्धि थी।

११-१२ ब्रह्मचर्य की दुष्करता

(कोश्या और रथिक)

पाटलीपुत्र में कोशा नाम की एक वेश्या रहती थी। उसके घर स्थूलभद्र मुनि ने गुरु की आज्ञा लेकर चातुर्मास किया। अपना पूर्व प्रेमी होने के कारण कोशा ने अनेक प्रकार के हावभाव करके स्थूलभद्र मुनि को विचलित करने की चेष्टा की, किन्तु मुनि अपने संयमधर्म से किञ्चित् भी विचलित नहीं हुए। प्रत्युत उन्होंने कोशा को ऐसा धर्मोपदेश दिया, जिसके प्रभाव से राज-नियोग (राजा की आज्ञा) के अतिरिक्त मैथुन का त्याग कर वह श्राविका बन गई।

किसी समय एक रथिक ने राजा को प्रसन्न करके कोशा की माँग की। राजा ने माँग स्वीकार कर कोशा को आज्ञा दे दी। किन्तु जब वह रथिक कोशा के पास पहुंचा, तो वह बारबार स्थूलभद्र मुनि की स्तुति करने लगी और रथिक की उपेक्षा करती रही। रथिक अपने विज्ञान से उसको प्रसन्न करने के लिए अशोकवाटिका में ले गया। वहाँ उसने पृथ्वी पर खड़े रहकर आम्रवृक्ष से आम्र की मञ्जरी को अर्द्ध चन्द्र के आकार से काट डाली। इस पर भी कोशा प्रसन्न नहीं हुई और बोली "शिक्षित पुरुष के लिए क्या दुष्कर है। देखो, मैं सरसों के ढेर पर सूई में पिरोये हुए कनेर के फूलों पर नाचती हूँ।" ऐसा कह कर उसने सरसों के ढेर पर सूई में पिरोये हुए कनेर के फूलों पर नाच करके दिखलाया। यह देख कर रथिक बड़ा प्रसन्न हुआ और बार बार उसकी प्रशंसा करने लगा। इस पर वेश्या ने कहा–

ण दुक्करं अंबयलुंबितोडणं, ण दुक्करं सरिसवणच्चियाइं।
तं दुक्करं तं च महाणुभावं, जं सो मुणी पमयवणम्मि वुच्छो॥

अर्थात्–आम की मञ्जरी को तोड़ना और सरसों के ढेर पर नाचना दुष्कर नहीं है, किंतु स्त्री समुदाय के बीच रह कर मुनि बने रहना एवं संयम से विचलित नहीं होना ही दुष्कर है। यह दुष्कर, दुष्कर और महादुष्कर है।

कोशा वेश्या ने स्थूलभद्र मुनि का अद्योपान्त वृत्तांत सुनाया, जिसका रथिक पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह भी परस्त्रीगमन का त्याग कर श्रावक बन गया।

रथिक और गणिका दोनों की यह विनयजा वुद्धि थी।

संकेत

(भींगी साड़ी)

एक कलाचार्य कुछ राजकुमारों को शिक्षण देता था। इस उपकार के बदले राजकुमारों ने कलाचार्य को समय समय पर बहुत-सा धन और बहुमूल्य पदार्थ भेंट किये। जब यह बात राजा को मालूम हुई, तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने कलाचार्य को मरवा देने की इच्छा की। यह बात राजकुमारों को मालूम हो गई। उन्होंने सोचा कि विद्यादाता कलाचार्य भी हमारे पिता के समान हैं। इन्हें इस विपत्ति से बचाना हमारा कर्त्तव्य है। थोड़ी देर बाद आचार्य स्नान करने के लिए आये और धोती मांगने लगे। इस पर राजकुमारों ने धोती सूखी होते हुए भी कहा—"धोती गीली है।" तथा दरवाजे पर एक छोटा-सा तृण खड़ा करके कहने लगे—"यह तृण बहुत लम्बा है।" क्रोञ्च नामक शिष्य, सदा आचार्य की दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा किया करता था, किंतु वह बाँई ओर से प्रदक्षिणा करने लगा। शिष्यों का इस प्रकार विपरीत कथन सुन कर तथा विपरीत आचरण देख कर कलाचार्य समझ गये कि 'राजा और सभी लोग मेरे विरुद्ध हैं।' यह बात ये राजकुमार इस प्रकार विपरीत आचरण करके मुझे जता रहे हैं'—ऐसा सोच कर कलाचार्य वहाँ से चुपचाप रवाना होकर अपने घर चले गये। आचार्य की और राजकुमारों की यह विनयजा वुद्धि थी।

१४ शव परीक्षा

(नेवे का जल)

कोई पुरुष अपनी नव-विवाहिता स्त्री को छोड़ कर धन कमाने के लिए विदेश चला गया। धन कमाने में वह इतना गृद्ध बन गया कि बहुत दिनों तक अपने घर नहीं लौटा। एक दिन उसकी स्त्री ने कामातुर बनकर अपनी दासी से किसी एक सुन्दर युवा पुरुष को लाने के लिए कहा। उसके कथनानुसार दासी, एक वैसे ही सुन्दर पुरुष को बुला लाई। फिर नाई को बुला कर उस पुरुष के नख और केश कटवाकर स्नान करवाया। रात के समय वह स्त्री, उस पुरुष के साथ दूसरी मंजिल पर गई। कुछ समय के बाद उस पुरुष को प्यास लगी। उसने तत्काल बरसा हुआ मेघ का पानी पी लिया। उस पानी में सर्प का विष मिला हुआ था। इसलिए पानी पीते ही वह पुरुष मर गया। इस आकस्मिक घटना से वह स्त्री बहुत भयभीत हुई। उसने दासी से सारी बात कही। तब दासी ने कहा –"आप इसकी चिंता नहीं करें। मैं सब ठीक कर लूंगी। दासी ने उस शव को उठाया और किसी सूने मन्दिर में लेजाकर रख आई। प्रातःकाल जब लोगों ने देखा, तो तुरन्त कोतवाल को सूचना दी। कोतवाल ने आकर देखा, तो मालूम हुआ कि इस मृत पुरुष के नख, केश आदि थोड़े ही समय पहले बनाये गये हैं। इस पर शहर के सभी नाइयों को पूछा गया, तो उनमें से एक ने कहा–"स्वामिन्! अमुक दासी के कहने से इसके नख केश आदि मैंने बनाये हैं।" इस पर उस दासी को बुला कर

पूछा गया और सारा भेद खुल गया।

इस प्रकार नख केशादि से मृतक पुरुष की परीक्षा करना कोतवाल की वैनयिकी बुद्धि थी।

१५ राजकुमार का न्याय

(बैल घोड़ा और वृक्ष)

किसी गांव में एक पुण्य-हीन पुरुष रहता था। एक दिन वह अपने मित्र से बैल मांग कर हल चलाने लगा। कार्य हो जाने पर शाम को वह बैल लेकर आया और मित्र के बाड़े में छोड़ गया। उस समय उसका मित्र भोजन कर रहा था, इसलिए वह उसके पास नहीं गया। उसने सोचा—मित्र ने बैल को देख लिया है। इसलिए मित्र को बिना कहे ही वह अपने घर चला गया। असावधानी के कारण बैल, बाड़े से निकल कर कहीं चला गया। मौका पाकर चोरों ने उसे चुरा लिया। जब मित्र ने बैल को बाड़े में नहीं देखा, तो वह उस पुण्य-हीन से बैल माँगने लगा। वह बैल कहाँ से देता, क्योंकि बैल को तो चोर ले गये थे। दोनों में झगड़ा हुआ और वे न्यायालय की ओर चले। मार्ग में घोड़े पर चढ़ा हुआ एक पुरुष सामने से आ रहा था। अकस्मात् घोड़े के चौंकने से वह गिर पड़ा और घोड़ा भागने लगा। ये दोनों सामने से आ रहे थे, इसलिए उस सवार ने इनसे कहा—"घोड़े को जरा मार कर वहीं रोक लेना।" पुण्यहीन ने उसकी बात सुनते ही घोड़े के मर्म-स्थान पर ऐसी चोट मारी कि घोड़ा तत्काल मर गया। अब तो घोड़ेवाला

भी उस पर मुकदमा चलाने के लिए उसके साथ न्यायालय में जाने लगा। जब तक ये लोग शहर के नजदीक पहुँचे, तब तक सूर्य अस्त हो गया। इसलिए तीनों शहर के बाहर ही ठहर गये। वहाँ बहुत से नट भी सोये हुए थे। सोया हुआ पुण्य-हीन सोचने लगा कि 'इस प्रकार के दुःख से तो गले में फांसी लगा कर मर जाना ही अच्छा है, जिससे सदा के लिए विपत्तियों से पिण्ड छूट जाय।' ऐसा सोचकर उसने अपने वस्त्र का पाश बनाकर वृक्ष में बांधा और अपने गले में डाल लिया। वह वस्त्र अत्यन्त जीर्ण था, इसलिए भार पड़ते ही टूट गया और वह पुण्य-हीन, नीचे सोये हुए नटों के मुखिया पर धड़ाम से गिर पड़ा। इससे नटों का मुखिया मर गया।

नटों ने भी उस पुण्य-हीन को पकड़ा। सुबह होते ही वे तीनों पुण्य-हीन को लेकर न्यायालय में पहुंचे। राजकुमार ने उन सब की बातें सुनकर पुण्य-हीन से पूछा। उसने दीनता के साथ कहा–"महाराज! इन सब का कहना सत्य है।" राजकुमार को उसकी दीनता पर दया आ गई। उसने उसके मित्र को बुला कर कहा–"यह तुम्हें बैल तो देगा, किन्तु तुम्हारी आंखें उखाड़ लेगा। क्योंकि जिस समय तुमने बैल को देख लिया, उसी समय यह ऋण-मुक्त हो चुका था। यदि तुमने बैल को इन आँखों से नहीं देखा होता, तो यह तुम्हें कहे बिना वापिस अपने घर नहीं लौटता। इसने तुम्हारे सामने तुम्हारा बैल लाकर छोड़ दिया था। इसलिए यह निर्दोष है।"

फिर घोड़े वाले को बुला कर कहा–"हम तुम्हारा घोड़ा दिलायेंगे, परन्तु तुमको अपनी जीभ काटकर इसको देनी होगी। क्योंकि तुम्हारे कहने पर ही इसने घोड़े के चोट मारी थी,

तुम्हारे बिना कहे नहीं। इसलिए तुम्हारी जीभ ही पहले दोषी होती है। उसको उखाड़ कर अलग कर देना चाहिए।"

इसी प्रकार नटों को बुलाकर कहा—"देखो, इसके पास कुछ भी नहीं है, जो तुमको दण्ड में दिलाया जाय। इन्साफ इतना ही कहता है कि जैसे यह गले में पाश डालकर वृक्ष से तुम्हारे स्वामी पर गिरा, उसी प्रकार तुम्हारे में से कोई भी पुरुष, वृक्ष से गिरे, यह नीचे सो जायगा।" राजकुमार की ये बातें सुनकर सभी चुप हो गये। पुण्य-हीन को मुकदमे से छोड़ दिया। राजकुमार की यह वैनयिकी बुद्धि थी।

इस प्रकार वैनयिकी बुद्धि के पन्द्रह उदाहरण पूर्ण हुए।

कर्मजा बुद्धि

अब सूत्रकार कार्मिकी बुद्धि के लक्षण प्रस्तुत करते हैं—

उवओगदिट्ठसारा, कम्मपसंगपरिघोलणविसाला।
साहुक्कारफलवई, कम्मसमुत्था हवइ बुद्धी ॥७६॥

अर्थ—जो बुद्धि, सतत चिन्तन के अन्तिम सार रूप हो और निरंतर कर्म के विशाल अनुभव युक्त हो, तथा जिससे धन्यवाद के पात्र कार्य कर दिखाये, जायँ, उसे कार्मिकी बुद्धि कहते हैं।

विवेचन—१ जो बुद्धि काम करने से उत्पन्न होती है, उसे 'कार्मिकी बुद्धि' कहते हैं। २ यह बुद्धि किसी भी विवक्षित कार्य में मन का उपयोग एकाग्र करने से उत्पन्न होती है और कार्य को शीघ्र, अल्प परिश्रम से और सुन्दर रूप में सम्पादित

करने की कुशलता उत्पन्न करती है। ३ उसके पश्चात् भी ज्यों ज्यों कार्य अधिक किया जाता है, तथा ज्यों ज्यों उसका उत्तरोत्तर विचार मन्थन होता है, त्यों त्यों उस बुद्धि में विशालता आती जाती है। ४ कार्मिक बुद्धि से किये गये कार्य से लोगों में–विद्वानों द्वारा 'साधुवाद' और धनवानों से 'धन लाभ' प्राप्त होता है।

अब सूत्रकार कार्मिकी बुद्धि को स्पष्ट समझाने के लिए बारह दृष्टान्तों के नामों की संग्रह गाथा प्रस्तुत करते हैं–

हेरण्णिए करिसए, कोलिय डोवे य मुत्ति घय पवए।
तुन्नाए वड्ढइ य पूयइ, घड चित्तकारे य ॥७७॥

अर्थ–१ हैरण्यक–सोनी, २ कर्पक–किसान, ३ कोलिक–जुलाहा ४ दर्वी–लुहार, ५ मौक्तिक–मणिहार, ६ घृत–घीवाला ७ प्लवक–नट, तैराक, ८ तुन्नवाय–दर्जी, ९ वर्द्धकी–वढ़ई, १० आपूपिक–हलवाई, ११ घटकार–कुंभार और १२ चित्रकार–चितेरा।

१ सुनार

(हैरण्यक)

जिसने सुनार का कार्य करते करते खूब अनुभव कर लिया है, ऐसा अनुभवी एवं प्रवीण पुरुष, रात के समय अन्धेरे में, हाथ के स्पर्श मात्र से सोना, चांदी आदि को यथावस्थित जान लेता है। यह उसकी कर्मजा बुद्धि है।

२ कृषक की कला

(करिसए)

किसी चोर ने एक सेठ के घर में ऐसी चतुराई से सेंध लगाई कि उसका आकार कमल के सरीखा बना दिया। प्रातः-काल उसे देखकर बहुत से लोग, चोर की चतुराई की प्रशंसा करने लगे। चोर भी वहाँ आकर अपनी प्रशंसा सुनने लगा। वहाँ एक किसान खड़ा था। उसने कहा–'शिक्षित पुरुष के लिए ऐसा करना कठिन नहीं है। किसी एक कार्य में प्रवीण व्यक्ति, यदि उस कार्य को विशेष चतुराई के साथ करता है, तो इसमें क्या आश्चर्य है?" किसान की बात सुनकर चोर को अत्यंत क्रोध आया। उसने उस किसान का नाम और पता पूछा। फिर उसी दिन शाम को वह हाथ में तलवार लेकर उस किसान के घर पहुँचा और कहने लगा–"मैं तुझे अभी मार देता हूँ।" किसान ने पूछा–"क्या बात है? तुम मुझे किस कारण से मारने को उद्यत हुए हो?" तब चोर ने कहा–'तुमने मेरे द्वारा लगाई हुई कमल के आकार वाली सेंध की प्रशंसा क्यों नहीं की?" चोर की बात सुनकर किसान ने निर्भयता के साथ कहा–"मैंने जो बात कही, वह ठीक ही थी। क्योंकि जो व्यक्ति जिस विषय में अभ्यस्त होता है, वह उस कार्य में अधिक उत्कर्षता प्राप्त कर लेता है। इस विषय में मैं स्वयं उदाहरण रूप हूँ। मेरे हाथ में ये मूंग के दाने हैं। यदि तुम कहो, तो मैं इनको इस तरह से पृथ्वी पर डाल सकता हूँ कि इन सब का मुंह ऊपर, नीचे, दाएँ या बाएँ किसी भी एक ओर ही रहे।" तब चोर ने

कहा–"इन मूँगों को इस तरह डालो कि सब का मुँह नीचे की ओर रहे।" पृथ्वी पर एक कपड़ा बिछा दिया गया, फिर किसान ने उन मूँगों को इस तरह डाला कि सब का मुँह नीचे की ओर ही रहा।

यह देख कर चोर बड़ा विस्मित हुआ। वह किसान की कुशलता की बार बार प्रशंसा करने लगा और कहने लगा–"यदि तुमने इनको अधोमुख न गिराया होता, तो मैं तुम्हें अवश्य मार देता।" चोर संतुष्ठ होकर अपने घर चला गया।

कमल के आकार सेंध लगाना और मूँग के दानों को अधोमुख डालदेना, ये दोनों कर्मजा बुद्धि के दृष्टान्त हैं। बहुत दिनों तक कार्य करते रहने के कारण चोर और किसान को ऐसी कुशलता प्राप्त हो गई थी।

(३) कौलिक–बहुत दिनों के अपने अभ्यास के कारण जुलाहा अपनी मुट्ठी में तन्तुओं को लेकर यह बतला सकता है कि इतने तन्तुओं से कपड़ा बन जायगा।

(४) दर्वी–चाटु बनानेवाला यह बतला सकता है कि इस चाटु में इतना अन्न समाएगा।

(५) मौक्तिक–मणिहार (मणियों को पिरोने वाला) मोती को ऊपर आकाश में फेंक कर, नीचे सूअर के बाल को या तार को इस तरह खड़ा रख सकता है कि ऊपर से नीचे गिरते हुए मोती के छेद में वह पिरोया जा सके।

(६) घृत विक्रयी–घी बेंचने वाला अभ्यस्त पुरुष चाहे तो गाड़ी में बैठा हुआ ही इस तरह से घी नीचे डाल सकता है कि

वह घी, गाड़ी के कुण्डिका-नाल में ही जाकर गिरे।

(७) प्लवक–उछलने में कुशल व्यक्ति, आकाश में उछलना आदि क्रियाएँ कर सकता है।

(८) तुन्नाग–सीने के कार्य में चतुर दर्जी, कपड़े को इस तरह सी सकता है कि दूसरे को पता ही न चले कि यह सीया हुआ है, या नहीं। अथवा कपड़े के छेद को तुनने में कुशल तुनार, कपड़े के छेद को इस तरह तुन देता है कि यह पता ही न चले कि कपड़े में पहले यहाँ छेद था।

(९) वर्द्धकी–वढ़ई, अपने कार्य में विशेष अभ्यस्त होने से बिना नापे ही बतला सकता है कि ऐसी गाड़ी बनाने में इतनी लकड़ी लगेगी। अथवा वास्तु-शास्त्र के अनुसार भूमि आदि का ठीक परिमाण किया जा सकता है।

(१०) आपूपिक–हलवाई, अपूप (मालपूए) आदि को बिना गिने ही उनका परिमाण या गिनती बता सकता है।

(११) घटकार–घड़े बनाने में चतुर कुम्हार, पहले से उतनी ही प्रमाणयुक्त मिट्टी उठा कर चाक पर रखता है कि जितने से घड़ा बन जाय।

(१२) चित्रकार–नाटक की भूमिका को विना देखे ही नाटक के प्रमाण को जान सकता है। अथवा रंग करने की कुँची में उतना ही रंग लेता है जितने से उसका कार्य पूरा हो जाय अर्थात् चित्र अच्छी तरह रंगा जा सके।

ये उपरोक्त बारह पुरुष, अपने अपने कार्य में इतने निपुण हो जाते हैं कि इनकी कार्य-कुशलता को देखकर लोग आश्चर्य

करने लगते हैं। वहुत समय तक अपने कार्य में अभ्यास करते रहने के कारण इनको ऐसी कुशलता प्राप्त हो जाती है। इस लिए इसे 'कर्मजा वुद्धि' कहते हैं।

पारिणामिकी बुद्धि

अब सूत्रकार पारिणामिकी वुद्धि के लक्षण कहते हैं–

अणुमाणहेउ-दिट्ठंत, साहिया वयविवागपरिणामा।
हियणिस्सेयसफलवई, बुद्धी परिणामिया नाम ॥७८॥

अर्थ–जो वुद्धि, अवस्था के परिपक्व होने से पुष्ट हुई है, जिसमें अनुमानों, हेतुओं और दृष्टान्तों का अनुभव है और इनके वल पर अपना हित और कल्याण साध सकती है, उसे 'पारिणामिकी वुद्धि' कहते हैं।

विवेचन–१ परिणामों से जो वुद्धि उत्पन्न होती है, उसे 'पारिणामिकी वुद्धि' कहते हैं। २ स्वतः के अनुमान, अन्य लोगों से सुने हुए तर्क और घटित हुए और घटित हो रहे दृष्टांतों के ज्ञान से पारिणामिकी वुद्धि सधती है। ३ ज्यों ज्यों वय में परिपाक आता है, त्यों त्यों पारिणामिकी वुद्धि में परिपाक आता है। ४ पारिणामिकी वुद्धि से किये गये कार्य से इहलोक तथा परलोक में हित होता है और अन्त में निःश्रेयस (मोक्ष) की उपलब्धि होती है।

अब सूत्रकार पारिणामिकी वुद्धि के २१ दृष्टान्तों के नाम उपस्थित करते हैं।

अभए सिट्ठि कुमारे, देवी उदिओदए हवइ राया ।
साहू य नंदिसेणे, धणदत्ते सावग अमच्चे ॥७९॥
खमए अमच्चपुत्ते, चाणक्के चेव थूलभद्दे य ।
नासिक्कसुंदरिनंदे, वइरे परिणामिया बुद्धी ॥८०॥
चलणाहण आमंडे, मणी य सप्पे य खग्गि थूभिंदे ।
परिणामियबुद्धीए, एवमाई उदाहरणा ॥८१॥
से त्तं असुयनिस्सियं ।

अर्थ–१ अभयकुमार, २ सेठ, ३ कुमार, ४ देवी, ५ उदितोदय राजा, ६ साधु और नन्दिषेण, ७ धनदत्त ८ श्रावक, ९ अमात्य–मन्त्री, १० क्षपक, ११ अमात्यपुत्र (–मन्त्री पुत्र), १२ चाणक्य, १३ स्थूलभद्र, १४ नासिकराज सुन्दरीनन्द, १५ वज्र, १६ चलन आहत, १७ आँवला, १८ मणी, १९ साँप, २० खंगी–गेंडा और २१ स्तुपेन्द्र, इत्यादि पारिणामिकी बुद्धि के उदाहरण है ।

१ अभयकुमार की बुद्धि

मालव देश की उज्जयिनी नगरी में चण्डप्रद्योत राजा राज्य करता था । एक समय उसने राजगृह के राजा श्रेणिक के पास एक दूत भेजा और कहलाया कि "यदि राजा श्रेणिक, अपनी और अपने राज्य की कुशल चाहते हैं, तो–१ 'वंकचूड हार २ सींचानक गन्धहस्ती, ३ अभयकुमार और ४ चेलना रानी को मेरे यहाँ भेज दें ।" राजगृह में जाकर दूत ने राजा श्रेणिक को अपने राजा चण्डप्रद्योत की आज्ञा कह सुनाई ।

उसे सुनकर राजा श्रेणिक बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने दूत से कहा—"तुम्हारे राजा से कहना कि १ अग्निमुख रथ, २ अनलगिरि हाथी, ३ वज्रजंघ दूत और ४ शिवा देवी, इन चारों को मेरे यहां भेज दें।" उज्जयिनी जाकर दूत ने राजा श्रेणिक की कही हुई बात अपने राजा चण्डप्रद्योत को कही। उसे सुनकर वह अति कुपित हुआ और बड़ी भारी सेना लेकर राजगृह पर चढ़ाई कर दी। नगर के बाहर उसकी सेना का पड़ाव हो गया। शत्रु का आक्रमण सुनकर श्रेणिक ने भी अपनी सेना को सज्जित होने की आज्ञा दी। तब अभयकुमार ने निवेदन किया—"देव! आप युद्ध की तय्यारी क्यों करते हैं? मैं ऐसा उपाय करूँगा कि मासाजी (चण्डप्रद्योत) कल प्रातःकाल स्वयं वापिस लौट जाएंगे।" राजा ने अभयकुमार की बात मान ली।

रात के समय अभयकुमार अपने साथ बहुत-सा धन लेकर राजमहल से निकला। उसने चण्डप्रद्योत राजा के सेनापति तथा बड़े बड़े उमरावों के डेरों के पीछे वह धन गड़वा दिया। फिर वह चण्डप्रद्योत के पास आया और प्रणाम करके कहा—"मासाजी! मेरे लिए तो आप और पिताजी दोनों समान रूप से आदरणीय हैं। अतः मैं आपके हित की बात कहने आया हूँ। किसी के साथ धोखा हो, यह मैं नहीं चाहता।" चण्डप्रद्योत बड़ी उत्सुकता से पूछने लगा—"वत्स! मुझे शीघ्र बतलाओ कि मेरे साथ क्या धोखा होने वाला है?" अभयकुमार ने कहा—"पिताजी ने आपके सेनापति और बड़े बड़े उमरावों को घूस (रिश्वत) देकर अपने वश में कर लिया है। वे लोग सुबह आपको पक-

ड़वा देंगे। यदि आपको विश्वास नहीं हो, तो मेरे साथ चलिए। उन लोगों के पास आया हुआ धन मैं आपको दिखा देता हूं।" ऐसा कहकर अभयकुमार, चण्डप्रद्योत को अपने साथ लेकर चला और सेनापति और उमरावों के डेरों के पीछे गड़ा हुआ धन दिखलाया। चण्डप्रद्योत को अभयकुमार की बात पर पूर्ण विश्वास हो गया। वह शीघ्रता के साथ अपने डेरे पर आया और अपने घोड़े पर सवार होकर उसी रात वापिस उज्जयिनी लौट आया। प्रातःकाल जब सेनापति और उमरावों को यह पता लगा कि राजा भागकर वापिस उज्जयिनी चला गया है, तो बड़ा आश्चर्य हुआ। 'बिना नायक की सेना क्या कर सकती है'— ऐसा सोचकर सेना सहित वे सब लोग वापिस उज्जयिनी लौट आये। जब वे राजा से मिलने के लिये गये, तो पहले तो उन्हें धोखाबाज समझ कर राजा ने मिलने से ही इन्कार कर दिया, किन्तु जब उन्होंने बहुत प्रार्थना करवाई, तब राजा ने उन्हें मिलने की आज्ञा दी। राजा से मिलने पर उन्होंने वापिस लौटने का कारण पूछा। राजा ने सारी बात कही। तब उन्होंने कहा—"देव! अभयकुमार बहुत बुद्धिमान् है। उसने आपको धोखा देकर अपना बचाव कर लिया है।" यह सुनकर वह अभयकुमार पर बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने आज्ञा दी कि "जो अभयकुमार को पकड़ कर मेरे पास लावेगा, उसको बहुत बड़ा इनाम दिया जावेगा।" एक वेश्या ने राजा की उपरोक्त आज्ञा स्वीकार की। वह कपट-श्राविका बन कर राजगृह में आई। कुछ समय पश्चात् उसने अभयकुमार को अपने यहां भोजन

करने के लिए निमन्त्रण दिया। उसे श्राविका समझ कर अभयकुमार ने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और एक दिन भोजन करने के लिए उसके घर चला गया। वेश्या ने भोजन में कुछ नशीली चीज मिला दी थी, इसलिए भोजन करते ही अभयकुमार बेहोश हो गए। उसी समय वेश्या उसे रथ में चढ़ा कर उज्जयिनी ले आई और राजा की सेवा में उपस्थित कर दिया।

राजा चण्डप्रद्योत ने कहा–"अभयकुमार! तुमने मुझे धोखा दिया। परन्तु मैंने भी कैसी चतुराई से पकड़वा कर तुझे यहाँ मँगवा लिया। बोल अब क्या कहता है?"

अभयकुमार ने कहा–"मासाजी! अभिमान मत करिये। इस उज्जयिनी के बाजार में से ही आपके सिर पर जूता मारता हुआ, मैं आपको राजगृह ले जाऊँ, तब मेरा नाम अभयकुमार समझना।" चण्डप्रद्योत ने अभयकुमार की इस बात को हँसी में टाल दिया।

कुछ समय पश्चात् अभयकुमार ने एक ऐसे मनुष्य की खोज की–जिसकी आवाज राजा चण्डप्रद्योत जैसी हो। जब उसे ऐसा मनुष्य मिल गया, तो उसे अपने पास रख कर अच्छी तरह समझा दिया। एक दिन उसे रथ में बिठा कर उसके सिर पर जूते मारता हुआ अभयकुमार उज्जयिनी के बाजार में होकर निकला। वह पुरुष चिल्लाने लगा–"अभयकुमार मुझे जूतों से मार रहा है। मुझे छुड़ाओ, मुझे छुड़ाओ।" राजा चण्डप्रद्योत सरीखी आवाज सुन कर लोग दौड़ कर उसे छुड़ाने के लिए

के लिए आये लोगों के आते ही वह पुरुष और अभयकुमार खिलखिला कर हंसने लगगये। लोगों ने समझा–'अभयकुमार बालक है, बालक्रीड़ा करता है।' अतः वे सब वापिस अपने अपने स्थान चले गये। अभयकुमार लगातार पांच सात दिन इसी तरह करता रहा। अब कोई भी मनुष्य उसे छुड़ाने नहीं आता था। सभी लोगों को पूर्ण विश्वास हो गया था कि यह तो अभयकुमार की बालक्रीड़ा है। एक दिन उचित अवसर देखकर अभयकुमार ने राजा चण्डप्रद्योत को बांधकर अपने रथ में डाल लिया और उज्जयिनी के बाजार में उसके सिर पर जूते मारता हुआ निकला। चण्डप्रद्योत चिल्लाने लगा–"दौड़ो, दौड़ो अभयकुमार मुझे जूतों से मारते हुए ले जा रहा है, मुझे छुड़ाओ, मुझे छुड़ाओ।" लोगों ने सदा की भांति आज भी इसे अभयकुमार की बालक्रीड़ा ही समझा। इसलिए कोई भी मनुष्य उसे छुड़ाने के लिये नहीं आया। अभयकुमार, राजा चण्डप्रद्योत को राजगृह ले आया। चण्डप्रद्योत अपने मन में बहुत लज्जित हुआ। राजा श्रेणिक के पैरों में पड़ कर उसने अपने अपराध की क्षमा माँगी। राजा श्रेणिक ने उसे छोड़ दिया। वह उज्जयिनी में आकर राज्य करने लगा।

राजा चण्डप्रद्योत को पकड़कर इस तरह ले आना अभयकुमार की पारिणामिकी बुद्धि थी।

२ दोष निवारण

(सेठ)

एक नगर में 'काल' नाम का एक सेठ रहता था। अपनी

स्त्री के दुश्चरित्र को देखकर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। गुरु के पास जाकर उसने दीक्षा अंगीकार करली। मुनि बनकर वह शुद्ध संयम का पालन करने लगा।

उधर परपुरुष के समागम से उस स्त्री के गर्भ रह गया। जब राजपुरुषों को इस बात का पता लगा, तो वे उस स्त्री को पकड़ कर राजदरबार में ले जाने लगे। संयोगवश विहार करते हुए वे ही मुनि उधर से निकले। मुनि को लक्ष्य कर वह स्त्री कहने लगी—"हे मुने! यह तुम्हारा गर्भ है। तुम इसे छोड़कर कहाँ जा रहे हो? इसका क्या होगा?"

स्त्री के वचन सुनकर मुनि ने विचार किया—"मैं तो निष्कलंक हूँ। इसलिए मेरे चित्त में तो किसी प्रकार का खेद नहीं है, किन्तु इसके द्वारा किये दोषारोपण से जैन शासन को और श्रेष्ठ साधुओं की कीर्ति पर धब्बा लगेगा।" ऐसा सोच कर मुनि ने कहा—"यदि यह गर्भ मेरा हो, तो इसका सुखपूर्वक प्रसव हो। यदि यह गर्भ मेरा न हो, तो गर्भ समय पूर्ण हो जाने पर भी इसका प्रसव न हो और इसका पेट चीरकर इसे निकालने की परिस्थिति बने।"

जब गर्भ के मास पूरे हो गये, तब भी बालक का जन्म नहीं हुआ। इससे माता को बहुत कष्ट होने लगा। संयोगवश विहार करते हुए वे ही मुनि, उन दिनों वहाँ पधार गये। राज-पुरुषों के सामने उस स्त्री ने मुनिराज से प्रार्थना की—

"महाराज! यह गर्भ आपका नहीं है। मैंने आपके सिरपर झूठा कलंक लगाया था। मेरे अपराध के लिये मैं आपसे बार-

बार क्षमा मांगती हूँ। अब आगे फिर कभी ऐसा अपराध नहीं करूँगी।"

इस प्रकार अपने अपराध की क्षमा मांगने से तथा मुनि पर से कलङ्क उतर जाने के कारण गर्भ का सुखपूर्वक प्रसव होगया।

इस प्रकार धर्म का मान और उस स्त्री के प्राण दोनों बच गए। यह मुनि की 'पारिणामिकी बुद्धि' थी।

२ अति आहार का परिणाम

(कुमार)

एक राजकुमार था। उसका विवाह अनेक रूपवती राज-कन्याओं के साथ हुआ। उनके साथ क्रीड़ा करते हुए उसका समय सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था। राजकुमार को लड्डू खाने का बड़ा शौक था। एक समय उसने सुगन्धी पदार्थों से युक्त बहुत लड्डू खा लिए। अधिक खा लेने से उसे अजीर्ण हो गया। मुँह से दुर्गन्ध निकलने लगी। इससे राजकुमार को बड़ी घृणा उत्पन्न हुई। वह सोचने लगा—"यह शरीर कैसा अशुचि-मय है। इसका संयोग पाकर सुन्दर और मनोहर पदार्थ भी अशुचिरूप बन जाते हैं। यह शरीर अशुचि पदार्थों से बना है और स्वयं अशुचि का भण्डार है। लोग ऐसे घृणित शरीर के लिए अनेक पाप करते हैं। वास्तव में यह धिक्कारने योग्य है।"

इस प्रकार अशुचि-भावना भाने से तथा परिणामों की धारा के चढ़ने से उस राजकुमार को उसी समय केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। कई वर्षों तक केवली-पर्याय का पालन करके

वे मोक्ष में पधारे। राजकुमार की यह 'पारिणामिकी बुद्धि' थी।

३ स्वप्न से प्रतिबोध

(देवी)

प्राचीन समय में पुष्पभद्र नाम का एक नगर था। वहाँ पुष्पकेतु राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम पुष्पवती था। उसके दो सन्तानें थीं–एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्र का नाम 'पुष्पचूल' था और पुत्री का नाम 'पुष्पचूला' था। भाई बहिन में परस्पर बहुत प्रेम था। जब वे यौवनावस्था को प्राप्त हुए, तब इनकी माता कालधर्म को प्राप्त होगई। यहाँ की आयु पूर्ण करके वह देवलोक में गई और पुष्पवती नाम की देवी हुई।

एक समय पुष्पवती देवी ने यह विचार किया कि 'मेरी पुत्री पुष्पचूला कहीं आत्म-कल्याण के मार्ग को भूल कर संसार में ही फँसी न रह जाय। इसलिए उसे प्रतिबोध देने के लिए मुझे कुछ उपाय करना चाहिए।' ऐसा सोचकर देवी ने पुष्पचूला को स्वप्न में स्वर्ग और नरक के दृश्य दिखाये। उन्हें देख कर पुष्पचूला को प्रतिबोध हो गया। संसार के प्रपंचों को छोड़ कर उसने दीक्षा लेली। तपस्या और धर्मध्यान के साथ साथ वह दूसरी साध्वियों की वैयावच्च करने में भी बहुत तल्लीन रहने लगी। थोड़े ही समय में उसने चार घातीकर्मों का क्षय करके केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर लिया। कई वर्षों तक

केवलीपर्याय का पालन करके महासती पुष्पचूला‡ ने मोक्ष प्राप्त किया।

पुष्पचूला को प्रतिबंध देने रूप पुष्पवती देवी की यह 'पारिणामिकी बुद्धि' थी।

५ उदितोदय राजा की रक्षा

पुरिमताल नगर में उदितोदय राजा राज्य करता था। वह श्रावक था। उसकी रानी का नाम श्रीकान्ता था। उसकी धर्म पर विशेष रुचि थी। उसने श्राविका के व्रत अंगीकार किए थे। राजा और रानी, आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करते थे।

एक समय वहाँ एक परिव्राजिका आई। वह अन्तःपुर में रानी के पास गई और अपने शुचि-धर्म का उपदेश देने लगी। रानी ने उसका किसी प्रकार का आदर सत्कार नहीं किया। इससे वह परिव्राजिका कुपित हो गई। उसने रानी से बदला लेने का उपाय सोचा। वहाँ से निकलकर वह वाणारसी नगरी के राजा धर्मरुचि के पास गई। परिव्राजिका ने उस राजा के सामने श्रीकान्ता रानी के रूप-लावण्य की बहुत प्रशंसा की। परिव्राजिका की बात सुन कर राजा धर्मरुचि, श्रीकान्ता को प्राप्त करने के लिये बहुत व्याकुल हो उठा। वह सेना लेकर पुरिमताल नगर पर चढ़ आया और नगर को घेर लिया।

उदितोदय राजा सोचने लगा—'बिना कारण यह एकाएक

‡ यह पुष्पचूला सोलह सतियों में से चौदहवीं सती है।

मेरे पर चढ़ाई करके चला आया है। यदि मैं इसके साथ युद्ध करने को तैयार होता हूँ, तो निष्कारण हजारों सैनिकों का विनाश होगा। मुझे अब आत्मरक्षा कैसे करनी चाहिए ?" बहुत सोच विचार कर राजा ने अट्ठम तप किया और वैश्रमण देव की आराधना की। तप के प्रभाव से वैश्रमण देव उपस्थित हुआ। उसके सामने राजा ने अपनी इच्छा प्रकट की। देव ने पुरिमताल नगर का संहरण करके उसे दूसरे स्थान पर रख दिया। प्रातःकाल धर्मरुचि राजा ने देखा कि पुरिमताल नगर का कहीं पता ही नहीं है। सामने खाली मैदान पड़ा हुआ है। विवश होकर धर्मरुचि राजा ने अपनी सेना वहाँ से हटा ली और वापिस वाणारसी चला गया।

राजा उदितोदय ने निष्कारण जन-संहार न होने दिया और बुद्धिमत्तापूर्वक अपनी और प्रजा की—दोनों की रक्षा कर ली। यह राजा की पारिणामिकी बुद्धि थी।

६ नन्दिषेण की युक्ति

राजगृह के स्वामी राजा श्रेणिक के एक पुत्र का नाम 'नन्दिषेण' था। यौवन अवस्था आने पर राजा ने नन्दिषेण का विवाह अनेक राजकन्याओं के साथ किया। उन रानियों का रूप-लावण्य अनुपम था उनके सौन्दर्य को देख कर अप्सराएं भी लज्जित होती थीं। कुमार नन्दिषेण उनके साथ सुखपूर्वक समय बिताने लगा।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह पधारे।

राजा श्रेणिक, भगवान् को वन्दना करने गया। कुमार नन्दिषेण भी अपने अन्तःपुर के साथ भगवान् को वन्दना नमस्कार करने गया। भगवान् ने धर्मोपदेश दिया। उपदेश सुनकर नन्दिषेण को वैराग्य उत्पन्न हो गया। राजा श्रेणिक की आज्ञा लेकर नन्दिषेण कुमार ने भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार कर ली। उसकी बुद्धि अति तीक्ष्ण थी। थोड़े ही समय में उसने बहुत-सा ज्ञान उपार्जन कर लिया। उसके उपदेश से प्रभावित हो कर कई भव्यात्माओं ने उसके पास दीक्षा अंगीकार कर ली। कालान्तर में भगवान् की आज्ञा लेकर वह अपने शिष्यों सहित पृथक् विचरने लगा।

कुछ समय बाद उसके शिष्य वर्ग में से किसी एक शिष्य के चित्त में काम-वासना उत्पन्न हो गई। वह साधुव्रत को छोड़ देना चाहता था। शिष्य के चित्त की चञ्चलता को जान कर नन्दिषेण मुनि ने विचार किया कि किसी उपाय से इसे पुनः संयम में स्थिर करना चाहिए। ऐसा सोच कर वे अपने सभी शिष्यों को साथ लेकर राजगृह आये।

मुनियों का आगमन सुन कर राजा श्रेणिक, मुनि-वन्दन करने गया। उसके साथ उसका अन्तःपुर तथा नन्दिषेण कुमार का अन्तःपुर भी था। रानियों के अनुपम रूप-सौन्दर्य को देख कर उस मुनि के मन में विचार उत्पन्न हुआ—'धन्य है मेरे गुरु महाराज को, जो अप्सरा सरीखी सुन्दर रानियों को तथा इस वैभव को छोड़ कर शुद्ध भाव से संयम का पालन कर रहे हैं। मुझ पापात्मा को धिक्कार है जो संयमव्रत लेकर भी ऐसा नीच

विचार कर रहा हूँ। इन विचारों को हृदय से निकाल कर मुझे दृढ़तापूर्वक संयम का पालन करना चाहिए।' ऐसा विचार कर वह साधु, संयम में विशेष रूप से स्थिर हो गया।

मुनि नन्दिषेण ने अपनी बुद्धि से उन मुनि को संयम में स्थिर किया यह उनकी 'पारिणामिकी बुद्धि' थी।

७ प्राण रक्षा

(धनदत्त)

राजगृह नगर में धनदत्त नामका एक सार्थवाह रहता था। उसकी स्त्री का नाम भद्रा था। उसके पाँच पुत्र और सुंसुमा नामक एक पुत्री थी। 'चिलात' नाम का एक दासपुत्र उस लड़की को खेलाया करता था, किन्तु साथ खेलनेवाले दूसरे बच्चों को वह अनेक प्रकार से दुःख देता था। वे अपने माता पिता से इसकी शिकायत करते थे। इन बातों को जान कर धनदत्त सार्थवाह ने उसे अपने घर से निकाल दिया। स्वच्छन्द बन कर चिलात, सातों व्यसनों में आसक्त हो गया। नगरजनों से तिरस्कृत होकर वह सिंहगुफा नाम की चोरपल्ली में, चोर-सेनापति विजय के पास चला गया। उसके पास रह कर उसने चोर की सभी विद्याएँ सीख लीं और चोरी करने में अत्यन्त निपुण हो गया। कुछ समय के बाद विजय चोर की मृत्यु हो गई। उसके स्थान पर चिलात को चोरों का सेनापति नियुक्त किया।

एक समय उस चिलात चोर-सेनापति ने अपने पाँच सौ चोरों से कहा—"चलो, राजगृह नगर में चल कर धन्ना सार्थ-

वाह के घर को लूटें। लूट में जो धन आवे, वह सब तुम रख लेना और सेठ की पुत्री सुंसुमा को मैं रखूँगा।" ऐसा विचार कर उन्होंने धन्ना सार्थवाह के घर डाका डाला। बहुत-सा धन और सुंसुमा कुमारी को लेकर वे चोर भाग गए। अपने पाँच पुत्रों को तथा कोतवाल और सुभटों को साथ लेकर धन्ना सार्थवाह ने चोरों का पीछा किया। चोरों से धन लेकर राज-सेवक तो वापिस लौट गये, किंतु धन्ना सार्थवाह और उसके पाँच पुत्रों ने सुंसुमा को लेने के लिए चिलात का पीछा किया। उन को पीछे आते देखकर चिलात थक गया और सुंसुमा को लेकर भागने में असमर्थ हो गया। इसलिए तलवार से सुंसुमा का सिर काट कर धड़ को वहीं छोड़ दिया और सिर हाथ में लेकर भाग गया। जंगल में दौड़ते दौड़ते उसे बड़े जोर से प्यास लगी। पानी नहीं मिलने से उसकी मृत्यु हो गई।

धन्ना सार्थवाह और उसके पांचों पुत्र, चिलात चोर के पीछे दौड़ते दौड़ते थक गये और भूख प्यास से व्याकुल होकर वापिस लौटे। रास्ते में पड़े हुए सुंसुमा के मृतशरीर को देख कर वे अत्यन्त शोक करने लगे। वे सब लोग भूख और प्यास से घबराने लगे। तब धन्ना सार्थवाह ने अपने पाँचों पुत्रों से कहा—"तुम मुझे मार डालो और मेरे मांस से भूख, और खून से प्यास को शान्त करके राजगृह नगर में पहुँच जाओ।" यह बात उसके पुत्रों ने स्वीकार नहीं की। वे कहने लगे—"आप हमारे पिता हैं। हम आपको कैसे मार सकते हैं?" तब कोई उपाय न देखकर पिता ने कहा—"सुंसुमा तो मर चुकी है।

अपने को इसके मांस और रुधिर से भूख और प्यास बुझा कर राजगृह नगर में पहुंच जाना चाहिए।" इस बात को सबने स्वीकार किया और वैसा ही करके वे राजगृह नगर में पहुंच गये * ।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में पधारे। जनता दर्शनार्थ गई और धन्ना सार्थवाह भी गया। भगवान् का धर्मोपदेश सुन कर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की। कई वर्षों तक संयम का पालन किया और यहाँ की आयु पूर्ण होने पर प्रथम सौधर्म देवलोक में देव हुआ। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

उपरोक्त रीति से धन्ना सार्थवाह ने अपने और अपने पुत्रों के प्राण बचा लिए। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

८ पति रक्षा

(श्रावक)

किसी नगर में एक सेठ रहता था। वह बड़ा धर्मात्मा एवं श्रावक व्रत का पालन करता था। एक दिन उसने किसी दूसरे श्रावक की स्त्री को देखा। वह अत्यन्त रूपवती थी। उसे देख कर वह उस पर मोहित हो गया। लज्जा के कारण उसने

---

* उस समय धन्ना सार्थवाह जैन नहीं था। बाद में भगवान् महावीर स्वामी के धर्मोपदेश से जैन साधु बन कर सुगति को प्राप्त हुआ।

(ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र)

अपनी इच्छा किसी के सामने प्रकट नहीं की। उसकी इच्छा बहुत प्रबल थी। वह दिन-प्रतिदिन दुर्बल होने लगा। जब उसकी स्त्री ने बहुत आग्रह पूर्वक दुर्बलता का कारण पूछा, तो श्रावक ने सच्ची बात कह दी।

श्रावक की बात सुन कर उसकी स्त्री ने विचार किया–'ये श्रावक हैं। स्वदार-संतोष व्रत के धारक हैं। फिर भी मोह-कर्म के उदय से इन्हें ऐसे कुविचार उत्पन्न हुए हैं। यदि इन कुविचारों में इनकी मृत्यु हो गई, तो दुर्गति में चले जाएँगे। इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे इनके ये कुवि-चार भी हट जायँ और व्रत भी खण्डित नहीं हो।' कुछ सोच कर उसने कहा–"स्वामिन्! आप चिन्ता मत कीजिये। वह मेरी सखी है। मेरे कहने से वह आज ही आ जायगी।" ऐसा कह कर वह अपनी सखी के पास गई और वे ही कपड़े माँग लाई–जिन्हें पहने हुए उसे श्रावक ने देखा था। कपड़े लाकर उसने अपने पति से कह दिया कि–"आज शाम को वह आएगी। उसे लज्जा आती है, इसलिए आते ही दीपक बुझा देगी।" श्रावक ने उसकी बात मान ली।

शाम के समय श्रावक की स्त्री ने अपनी सखी के लाये हुए कपड़े पहिन कर, उसके समान अपना शृंगार कर लिया। इसके बाद प्रतीक्षा में बैठे हुए अपने पति के पास चली गई।

दूसरे दिन श्रावक को बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसने सोचा–"मैंने अपना लिया हुआ व्रत खण्डित कर दिया। मैंने बहुत बुरा किया।" इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए श्रावक फिर

दुर्बल होने लगा। स्त्री ने अपने पति से सच्ची बात कह कर रहस्य प्रकट कर दिया, जिसे सुन कर श्रावक बहुत प्रसन्न हुआ और गुरु के पास जा कर मानसिक कुविचार और परस्त्री के संकल्प से विषय सेवन के लिए प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हुआ।

उस श्रावक की स्त्री ने अपने पति के व्रत और प्राण दोनों की रक्षा कर ली। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

ब्रह्मदत्त की रक्षा

(मंत्री)

कम्पिलपुर में ब्रह्म नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम चुलनी था। एक समय सुखशय्या पर सोती हुई रानी ने चक्रवर्ती के जन्म सूचक चौदह महास्वप्न देखे और एक परम प्रतापी पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम 'ब्रह्म-दत्त' था। जब वह बालक था, उसी समय ब्रह्म राजा का देहान्त हो गया। ब्रह्मदत्त कुमार छोटा था, इसलिए राज्य का कार्य ब्रह्म राजा के मित्र दीर्घपृष्ठ को सौंपा गया। दीर्घपृष्ठ बड़ी योग्यता पूर्वक राज्य कार्य चलाने लगा। वह निःशंक होकर अन्तःपुर में आता जाता था। कुछ समय पश्चात् रानी चुलनी के साथ उसका स्नेह हो गया। वे दोनों विषय-सुख का भोग करते हुए आनन्द पूर्वक समय विताने लगे।

ब्रह्म राजा के मन्त्री का नाम 'धनु' था। वह राजा का परम हितैषी था। राजा की मृत्यु के पश्चात् वह हर प्रकार से ब्रह्म-दत्त की रक्षा करता था। मन्त्री के पुत्र का नाम 'वरधनु' था।

ब्रह्मदत्त और वरधनु दोनों मित्र थे।

राजा दीर्घपृष्ठ और रानी चुलनी के अनैतिक सम्बन्ध का पता धनु मन्त्री को लग गया। उसने ब्रह्मदत्त को इस बात की सूचना की तथा अपने पुत्र वरधनु को सदा राजकुमार की रक्षा के लिए आदेश दिया। माता के दुश्चरित्र को सुनकर कुमार ब्रह्मदत्त को बहुत क्रोध आया। यह बात उसके लिये असह्य हो गई। उसने किसी उपाय से उन्हें समझाने का यत्न किया। एक दिन वह एक कौआ और एक कोयल को पकड़ कर लाया और अन्तःपुर में जाकर उसने उच्च स्वर से कहा– "इन पक्षियों की तरह जो वर्णसंकरपना करेंगे, उन्हें मैं अवश्य दण्ड दूंगा।"

कुमार की बात सुनकर दीर्घपृष्ठ ने रानी से कहा–" कुमार यह बात अपने को लक्षित करके कह रहा है। मुझे कौआ और तुझे कोयल बताया है। यह अपने को अवश्य दण्ड देगा।" रानी ने कहा–" आप इसकी चिन्ता नहीं करें। यह बालक है, बालक्रीड़ा करता है।"

एक समय श्रेष्ठ जाति की हथिनी के साथ तुच्छ जाति के हाथी को देखकर कुमार ने उन्हें मृत्यु सूचक शब्द कहे। इसी प्रकार एक समय कुमार, एक हंसनी और एक बगुले को पकड़ कर लाया और अन्तःपुर में जाकर उच्च स्वर से कहने लगा– " इस हंसनी और बगुले के समान जो रमण करेंगे, उन्हें मैं मृत्यु दण्ड दूंगा"।

कुमार के वचनों को सुनकर दीर्घपृष्ठ ने रानी से कहा– "कुमार यह बात अपने को लक्षित करके कह रहा है। बड़ा

होने पर यह हमारे लिए अवश्य विघ्नकर्त्ता होगा। इसलिए इस विष-वृक्ष को उगते ही उखाड़ देना ठीक है"। रानी ने कहा– "आपका कहना ठीक है। इसके लिये कोई उपाय सोचिये, जिससे अपना कार्य भी पूरा हो जाय और लोक-निन्दा भी न हो।" दीर्घपृष्ट ने कहा–"इसका एक उपाय है और वह यह है कि कुमार का विवाह शीघ्र कर दिया जाय। उसके निवास के लिए एक लाख का घर बनवाया जाय। जब कुमार उसमें सोने के लिए जाय, तो रात्री में उस महल को आग लगा दी जाय, जिससे वधु सहित कुमार जल कर समाप्त हो जाय।"

कामान्ध बनी हुई रानी ने दीर्घपृष्ठ की बात स्वीकार कर ली। उसने एक लाक्षा-गृह तैयार करवाया। फिर पुष्पचूल राजा की कन्या के साथ कुमार ब्रह्मदत्त का विवाह कर दिया।

जब धनु मन्त्री को दीर्घपृष्ठ और चुलनी रानी के षड्यन्त्र का पता चला, तो उसने दीर्घपृष्ठ के पास आकर निवेदन किया– "स्वामिन्! अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। शेष जीवन ईश्वर भजन में व्यतीत करना चाहता हूँ। मेरा पुत्र वरधनु अब सब तरह से योग्य हो गया है। वह आपकी सेवा करेगा।" इस प्रकार निवेदन करके धनुमन्त्री गंगा नदी के किनारे पर आया। वहां एक बड़ी दानशाला खोल कर दान देने लगा। दान देने के बहाने उसने अपने विश्वसनीय पुरुषों द्वारा उस लाक्षागृह में एक सुरंग बनवाई। इसके पश्चात् उसने राजा पुष्पचूल को भी इस सारी बात की सूचना कर दी। इससे उसने अपनी पुत्री को न भेज कर एक दासी को भेज दिया।

रात्रि को सोने के लिये ब्रह्मदत्त को उस लाक्षागृह में भेजा। ब्रह्मदत्त अपने साथ मन्त्रीपुत्र वरधनु को भी ले गया। आधी रात के समय दीर्घपृष्ठ और चुलनी रानी द्वारा भेजे हुए पुरुष ने उस लाक्षागृह में आग लगा दी। आग चारों तरफ फैलने लगी। ब्रह्मदत्त ने वरधनु से पूछा कि 'यह क्या बात है? तब उसने दीर्घपृष्ठ और चुलनी रानी द्वारा किये गये षड्यन्त्र का सारा भेद बतलाया और कहा कि–'आप घबराइये नहीं। मेरे पिताजी ने इस महल में एक सुरंग खुदाई है, जो गंगा नदी के किनारे जाकर मिलती है।' वरधनु की यह बात सुनकर कुमार ब्रह्मदत्त और वरधनु दोनों उस सुरंग द्वारा गंगा नदी के किनारे जाकर निकले। वहाँ धनु मन्त्री ने दो घोड़े तय्यार रखे थे, उन पर सवार होकर वे वहाँ से बहुत दूर निकल गये।

इसके पश्चात् वरधनु के साथ ब्रह्मदत्त अनेक नगर एवं देशों में गया और अनेक राजकन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ। उसके पास चक्रवर्ती के चौदह रत्न प्रकट हुए। वह छह खण्ड पृथ्वी को जीत कर चक्रवर्ती बना।

धनु मन्त्री ने सुरंग खुदवा कर अपने स्वामी-पुत्र ब्रह्मदत्त की रक्षा करली। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

१० नागदत्त मुनि की क्षमा

(साधु)

किसी समय एक तपस्वी साधु, पारणे के दिन भिक्षा के

लिये गये। वापिस लौटते समय रास्ते में उनके पैर से दब कर एक मेढक मर गया। शिष्य ने उन्हें शुद्ध होने के लिये कहा, किन्तु उन्होंने शिष्य की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। शाम को प्रतिक्रमण के समय शिष्य ने उनको फिर याद दिलाई। शिष्य के वचनों को सुन कर उन्हें क्रोध आ गया। वे शिष्य को मारने के लिये उठे, किंतु अन्धेरे में एक स्तम्भ से सिर टकरा जाने से उनकी उसी समय मृत्यु हो गई। मर कर वे ज्योतिषी देवों में उत्पन्न हुए। वहाँ से चव कर वह दृष्टि-विष सर्प हुआ। उस सर्प को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। वह अपने पूर्व भव को देख कर पश्चात्ताप करने लगा। 'मेरी दृष्टि से किसी जीव की हिंसा न हो जाय'—ऐसा सोच कर वह प्रायः अपने विल में ही रहता था, बाहर बहुत कम निकलता था।

एक समय किसी सर्प ने वहाँ के राजा के पुत्र को डस लिया, जिससे राजकुमार की मृत्यु हो गई। इस कारण राजा को सर्पों पर बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ। सर्प पकड़नेवाले गारुड़ियों को बुला कर उसने राज्य के सभी सर्पों को मार देने की आज्ञा दी। सर्पों को मारते हुए वे लोग, उस दृष्टि-विष सर्प के बिल के पास पहुँचे। उन्होंने उसके बिल पर औषधि डाली। औषधि के प्रभाव से वह बिल से बाहर खींचा जाने लगा। 'मेरी दृष्टि से मुझे मारनेवाले पुरुषों का विनाश न हो जाय' ऐसा सोच कर वह पूँछ की तरफ से बाहर निकलने लगा। वह ज्यों ज्यों बाहर निकलता गया, त्यों त्यों वे लोग उसके टुकड़े करते गये, किन्तु उसने समभाव रखा। उन लोगों पर लेशमात्र

भी क्रोध नहीं किया। परिणामों की सरलता के कारण वहाँ से मर कर वह उसी राजा के घर पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। उसका नाम 'नागदत्त' रखा गया। बाल्यावस्था में ही उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया, जिससे उसने दीक्षा लेली।

विनय, सरलता, समभाव आदि अनेक असाधारण गुणों के कारण वह देवों का वन्दनीय हो गया। उसे वन्दना करने के लिये देव, भक्तिपूर्वक आते थे। पूर्वभव में तिर्यञ्च होने के कारण उसे भूख बहुत लगती थी। विशेष तप उससे नहीं होता था।

उसी गच्छ में चार तपस्वी साधु थे। वे एक एक से बढ़कर थे। नागदत्त, उन तपस्वी मुनियों की खूब विनय वैयावृत्य किया करता था। एक बार उसे वन्दना करने के लिये देवता आये। यह देखकर उन तपस्वी मुनियों के हृदय में ईर्षा उत्पन्न हो गई। एक दिन नागदत्त मुनि अपने लिए गोचरी लेकर आया। उसने विनयपूर्वक उन मुनियों को आहार दिखलाया। ईर्षावश उन्होंने उसमें थूक दिया। यह देखकर भी नागदत्त मुनि शान्त बने रहे। उनके हृदय में किसी प्रकार का क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ। वे अपनी निन्दा और तपस्वी मुनियों की प्रशंसा करने लगे। उपशान्त चित्तवृत्ति के कारण तथा परिणामों की विशुद्धता बढ़ते बढ़ते उनको केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया। केवलज्ञान का उत्सव मनाने के लिये देव आने लगे। यह देखकर उन तपस्वी मुनियों को भी अपने हीन कार्य के लिए पश्चात्ताप होने लगा। परिणामों की विशुद्धता के चलते उनको भी केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

नागदत्त मुनि ने प्रतिकूल संयोग में भी समभाव रखा,

जिसके परिणाम स्वरूप उसको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। यह उसकी 'पारिणामिकी बुद्धि' थी।

११ वरधनु की चतुराई

(अमात्य पुत्र)

कम्पिलपुर में ब्रह्म नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम चुलनी था। रानी ने एक प्रतापी पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम 'ब्रह्मदत्त' रखा गया। ब्रह्म राजा के मन्त्री का नाम धनु था। धनु के पुत्र का नाम वरधनु था। ब्रह्मदत्त और वरधनु दोनों में गहरी मित्रता थी।

कुमार ब्रह्मदत्त जब बालक था, उसी समय ब्रह्म राजा की मृत्यु हो गई। कुमार छोटा था। इसलिए राज्य का कार्य ब्रह्म राजा के मित्र "दीर्घपृष्ठ' को सौंपा गया। कुछ समय पश्चात् रानी चुलनी का दीर्घपृष्ठ के साथ स्नेह हो गया। उन दोनों ने कुमार ब्रह्मदत्त को अपने प्रेम में बाधक समझ कर उसे मार डालने के लिए षड्यन्त्र रचा। तदनुसार उन्होंने एक लाक्षागृह तय्यार करवाया। ब्रह्मदत्त कुमार का विवाह किया और दम्पती को सोने के लिए लाक्षागृह में भेजा। कुमार के साथ वरधनु भी लाक्षागृह में गया। आधी रात के समय दीर्घ-पृष्ठ और चुलनी रानी के द्वारा भेजे हुए पुरुष ने लाक्षागृह में आग लगा दी। उस समय मन्त्री द्वारा बनवाई हुई गुप्त सुरंग से ब्रह्मदत्त कुमार और मन्त्री-पुत्र वरधनु बाहर निकल कर भाग गये। भागते हुए जब वे एक घने जंगल में पहुँचे तो ब्रह्म-

दत्त को बड़े जोर से प्यास लगी। उसे एक वट वृक्ष के नीचे विठा कर वरधनु पानी लाने के लिये गया।

इधर दीर्घपृष्ठ को जब मालुम हुआ कि कुमार ब्रह्मदत्त लाक्षागृह से जीवित निकल कर भाग गया है, तो उसने चारों ओर अपने सैनिक भेजे और आदेश दिया कि "जहाँ भी ब्रह्मदत्त और वरधनु मिलें, उन्हें पकड़ कर मेरे पास लाओ।"

इन दोनों की खोज करते हुए सैनिक उसी वन में पहुँच गये। जब वरधनु पानी लेने के लिए एक सरोवर के पास पहुँचा, तो राजपुरुषों ने उसे देख लिया और पकड़ लिया। उसने उसी समय उच्च स्वर से संकेत किया, जिससे ब्रह्मदत्त समझ गया और वहाँ से उठ कर तत्काल भाग निकला।

सैनिकों ने वरधनु से ब्रह्मदत्त के विषय में पूछा, किंतु उसने कुछ नहीं बताया। तब वे उसे मार-पीट करने लगे। वह जमीन पर गिर पड़ा और सांस रोक कर निश्चेष्ट वन गया। 'यह मर गया है'—ऐसा समझ कर राजपुरुष उसे वहीं छोड़ कर चले गये।

सैनिकों के चले जाने के बाद वरधनु उठा और राजकुमार को ढूँढने लगा, किंतु उसका कहीं भी पता नहीं लगा। तब वह अपने कुटुम्बियों की खबर लेने के लिए कम्पिलपुर की ओर चला। मार्ग में उसे संजीवन और निर्जीवन नाम की दो गुटिकाएँ प्राप्त हुई। उन्हें लेकर वह आगे चलने लगा। कम्पिलपुर के पास पहुँचने पर उसे एक चाण्डाल मिला। उसने वरधनु को बतलाया कि 'तुम्हारे सब कुटुम्बियों को राजा ने कैद कर लिया है।' तब वरधनु ने कुछ लालच देकर उस चाण्डाल को

अपने वश में करके उसे निर्जीवन गुटिका दी और सारी बात समझा दी।

चाण्डाल ने जाकर वह गुटिका वरधनु के पिता धनु को दी। उसने अपने सब कुटुम्बीजनों की आँखों में उसका अंजन किया, जिससे वे तत्काल निर्जीव सरीखे हो गये। उन सब को मरे हुए जान कर दीर्घपृष्ठ राजा ने उन्हें श्मशान में ले जाने के लिये उस चाण्डाल को आज्ञा दी। वरधनु ने जो स्थान बताया था, उसी स्थान पर वह चाण्डाल उन सभी को छोड़ आया। इसके बाद वरधनु ने आकर उन सब की आँखों में संजीवन गुटिका का अंजन किया, जिससे वे सब स्वस्थ हो गये। वरधनु को अपने सामने देख कर वे सब आश्चर्य करने लगे। वरधनु ने उनसे सारी हकीकत कह सुनाई। तत्पश्चात् वरधनु ने उन सब को अपने किसी सम्बन्धी के यहाँ रख दिया और वह स्वयं ब्रह्मदत्त को ढूंढ़ने के लिये निकल गया। ढूँढते ढूँढते वह वहुत दूर एक सघन वन में पहुंच गया। वहाँ उसे ब्रह्मदत्त मिल गया। फिर वे अनेक नगरों और देशों को जीतते हुए आगे बढ़ते गये। अनेक राजकन्याओं के साथ ब्रह्मदत्त का विवाह हुआ। छह खण्ड पृथ्वी को विजय करके वे वापिस कम्पिलपुर लौटे। दीर्घपृष्ठ राजा को मारकर ब्रह्मदत्त ने वहाँ का राज्य प्राप्त किया। चक्रवर्ती की ऋद्धि का उपभोग करते हुए सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगा।

मन्त्रीपुत्र वरधनु ने राजकुमार ब्रह्मदत्त की और अपने सभी कुटुम्बीजनों की रक्षा कर ली। यह उसकी पारिणामिकी

बुद्धि थी।

× × × × ×

मन्त्रीपुत्र का दृष्टान्त दूसरे प्रकार से भी दिया जाता है। यथा–

एक राजकुमार और मन्त्रीपुत्र दोनों सन्यासी का वेष बना कर अपने राज्य से निकल गये। चलते हुए वे एक नदी किनारे पहुँचे। रात्रि व्यतीत करने के लिए वे वहीं ठहर गये। वहाँ एक भविष्यवेत्ता पहले से ठहरा हुआ था। रात्रि को एक श्रृगाली चिल्लाने लगी। राजकुमार ने उस भविष्यवेत्ता से पूछा–"यह श्रृगाली क्या कह रही है?" नैमित्तिक ने कहा–"यह श्रृगाली यह कह रही है कि नदी में एक मुर्दा बहता हुआ जा रहा है। उसकी कमर में सौ मोहरें बंधी हुई हैं।" यह सुन कर राजकुमार नदी में कूद पड़ा और उस मुर्दे को बाहर निकाल लाया। उसकी कमर में बंधी हुई सौ मोहरें उसने ले लीं और उस मृतकलेवर को श्रृगाली की तरफ फेंक दिया। राजकुमार अपने स्थान पर आकर सो गया। श्रृगाली फिर चिल्लाने लगी। राजकुमार ने नैमित्तिक से इसका कारण पूछा। उसने कहा–"यह श्रृगाली अपनी कृत्तज्ञता प्रकाशित करती हुई कहती है–"हे राजकुमार! तुमने बहुत अच्छा किया।" नैमित्तिक का कथन सुन कर राजकुमार बहुत खुश हुआ।

मन्त्रीपुत्र इस सारी बातचीत को चुपचाप सुन रहा था। उसने विचार किया–"राजकुमार ने मुर्दे में से जो सौ मोहरें ग्रहण की है, वे कृपण भाव से ग्रहण की, या वीरता से ग्रहण

की ? मुझे इस बात की परीक्षा करनी चाहिये। यदि इसने कृपण भाव से ग्रहण की है, तब तो यह समझना चाहिये कि इसमें राजा के योग्य उदारता और वीरता आदि गुण नहीं हैं, इसलिए इसे राज्य प्राप्त नहीं होगा। ऐसी दशा में इसके साथ फिर कर व्यर्थ कष्ट उठाने से क्या लाभ ? यदि राजकुमार ने ये मोहरें अपनी वीरता बतलाने के लिये ग्रहण की है, तो इसे राज्य अवश्य मिलेगा।" इस प्रकार सोच कर प्रातःकाल होने पर मन्त्रीपुत्र ने राजकुमार से कहा–"मेरा पेट बहुत दुखता है। मैं आपके साथ चल नहीं सकूँगा। इसलिये आप मुझे यहाँ छोड़ कर जा सकते हैं।" राजकुमार ने कहा–"मित्र! ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकता। तुम सामने दिखाई देने वाले गाँव तक चलो। वहाँ किसी वैद्य से तुम्हारा इलाज करवायेंगे।" मन्त्रीपुत्र वहाँ तक गया। राजकुमार ने एक चतुर वैद्य को बुलाकर उसे दिखाया और कहा–"ऐसी बढ़िया दवा दो, जिससे इसके पेट का दर्द तत्काल दूर हो जाय।" यह कह कर राजकुमार ने दवा के मूल्य के रूप में वैद्य को वे सौ मोहरें दे दीं।

राजकुमार की उदारता देख कर मन्त्रीपुत्र को दृढ़ विश्वास हो गया कि इसे अवश्य राज्य प्राप्त होगा। थोड़े दिनों में ही राजकुमार को राज्य प्राप्त हो गया।

राजकुमार की उदारता को देख कर उसे राज्य प्राप्त होने की बात सोच लेना, मन्त्रीपुत्र की पारिणामिकी बुद्धि थी।

१२ चाणक्य का चन्द्र पान करवाना

चाणक्य की बुद्धि के वहुतसे उदाहरण हैं। उनमें से यहाँ एक उदाहरण दिया जाता है।

एक समय पाटलिपुत्र के राजा नन्द ने 'चाणक्य' नाम के ब्राह्मण को अपने नगर से निकलजाने की आज्ञा दी। वहाँ से निकल कर चाणक्य ने सन्यासी का वेष बना लिया और घूमता हुआ वह मौर्यग्राम में पहुँचा। वहाँ एक गर्भवती क्षत्रियाणी को चन्द्रमा पीने का दोहला उत्पन्न हुआ। उसका पति बहुत असमंजस में पड़ा कि इस दोहले को कैसे पूरा किया जाय? दोहला पूर्ण न होने से वह क्षत्रियाणी प्रतिदिन दुर्बल होने लगी। सन्यासी के वेष में गांव में घूमते हुए चाणक्य को उस राजपूत ने इस विषय में पूछा। उसने कहा-"मैं इस दोहले को अच्छी तरह पूर्ण करवा दूंगा।" चाणक्य ने गाँव के बाहर एक मण्डप बनवाया। उसके ऊपर कपड़ा तान दिया गया। चाणक्य ने कपड़े में चन्द्रमा के आकार का एक गोल छिद्र करवा दिया। पूर्णिमा को रात के समय उस छेद के नीचे एक थाली में खीर रखवा दी और उस दिन उस क्षत्रियाणी को भी वहां बुला लिया। जब चन्द्रमा बराबर उस छेद के ऊपर आया और उसका प्रतिबिम्ब उस थाली में पड़ने लगा, तो चाणक्य ने क्षत्रियाणी से कहा-"लो, यह चन्द्रमा है, इसे पी जाओ।" हर्षित होती हुई क्षत्रियाणी ने उसे पी लिया। ज्यों ही वह पी चुकी, त्यों ही चाणक्य ने उस छेद के ऊपर दूसरा कपड़ा डाल कर उसे बन्द करवा दिया। चन्द्रमा का प्रकाश पड़ना बन्द हो गया, तो क्षत्रि-

याणी ने समझा-'मैं सचमुच चन्द्रमा को पी गई हूँ।" अपने दोहले को पूर्ण हुआ जान कर क्षत्रियाणी को बहुत हर्ष हुआ। वह पहले की तरह स्वस्थ हो गई और सुखपूर्वक अपने गर्भ का पालन करने लगी। गर्भ-काल पूर्ण होने पर एक परम तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। गर्भ के समय माता को चन्द्र पीने का दोहला उत्पन्न हुआ था, इसलिए उसका नाम 'चन्द्रगुप्त' रखा गया। जब चन्द्रगुप्त जवान हुआ, तब वह चाणक्य की सहायता से पाटलिपुत्र का राजा बना।

चन्द्र पीने के दोहले को पूरा कराने में चाणक्य की पारिणामिकी बुद्धि थी।

१३ स्थूलभद्र का त्याग

पाटलिपुत्र में नन्द नाम का राजा राज्य करता था। उसके मन्त्री का नाम सकडाल था। उसके स्थूलभद्र और सिरीयक नाम के दो पुत्र थे। यक्षा, यक्षदत्ता, भूता. भूतदत्ता, सेणा, वेणा और रेणा नाम की सात पुत्रियाँ थीं। उनकी स्मरण शक्ति बहुत तेज थी। यक्षा की स्मरण शक्ति इतनी तीव्र थी कि जिस बात को वह एक बार सुन लेती, वह ज्यों की त्यों उसे याद हो जाती थी। इसी प्रकार यक्षदत्ता को दो बार, भूता को तीन बार, भूतदत्ता को चार बार, सेणा को पाँच बार, वेणा को छह बार और रेणा को सात बार सुनने से याद हो जाती थी।

पाटलिपुत्र में वररुचि नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह बहुत विद्वान् था। प्रतिदिन वह १०८ नये श्लोक बना

कर राजसभा में लाता और राजा नन्द की स्तुति करता। श्लोकों को सुन कर राजा, मन्त्री की तरफ देखता, किन्तु मन्त्री इस विषय में कुछ न कहकर चुपचाप बैठा रहता। मन्त्री को मौन बैठा देख कर राजा, वररुचि को कुछ भी पुरस्कार नहीं देता। इस प्रकार वररुचि को सदैव खाली हाथ लौटना पड़ता। वररुचि की स्त्री उससे कहती कि "तुम कमाकर कुछ भी नहीं लाते, घर का खर्च किस प्रकार चलेगा ?" इस प्रकार स्त्री के बारबार कहने से वररुचि तंग आ गया। उसने सोचा-"जब तक सकडाल मन्त्री, राजा से कुछ न कहेगा, तब तक राजा मुझे इनाम नहीं देगा।" यह सोचकर वह सकडाल के घर गया और सकडाल की स्त्री की बहुत प्रशंसा करने लगा। उसने पूछा-"पण्डितराज ! आज आपके आने का क्या प्रयोजन है ?" वररुचि ने उसके आगे अपनी सारी बात कही। उसने कहा-"ठीक है, आज इस विषय में मैं उनसे कहूँगी।" वररुचि वहाँ से चला गया।

शाम को सकडाल की स्त्री ने उससे कहा-

"स्वामिन् ! वररुचि हमेशा एक सौ आठ श्लोक नये बना कर लाता है और राजा की स्तुति करता है। क्या वे श्लोक आपको पसन्द नहीं हैं ?"

सकडाल-"उसके श्लोक मुझे पसन्द है।"

स्त्री-"तो फिर आप उसकी प्रशंसा क्यों नहीं करते ?"

सकडाल-"वह मिथ्यात्वी है। इसलिए मैं उसकी प्रशंसा नहीं करता।"

स्त्री–"स्वामिन् ! आपका कहना ठीक है, किंतु आपके कहने मात्र से यदि किसी गरीब का भला हो जाय, तो इसमें आपका क्या बिगड़ता है ?"

सकडाल–"अच्छा कल देखा जायगा ।"

दूसरे दिन राजसभा में आकर सदैव की तरह वररुचि ने एक सौ आठ श्लोकों द्वारा राजा की स्तुति की । राजा ने मन्त्री की ओर देखा । मन्त्री ने कहा–"सुभाषित है ।" राजा ने वररुचि को एक सौ आठ मोहरें इनाम में दीं । वररुचि हर्षित होता हुआ अपने घर चला आया । उसके चले जाने पर सकडाल ने राजा से कहा–

"आपने वररुचि को मोहरें क्यों दीं ?"

राजा–'वह नित्य एक सौ आठ श्लोक नये बनाकर लाता है और आज तुमने उसकी प्रशंसा भी की, इसलिए मैंने उसे पुरस्कार दिया ।"

सकडाल–"राजन् ! वह लोक में प्रचलित पुराने श्लोक ही सुनाता है ।"

राजा–"तुम ऐसा कैसे कह सकते हो ?"

मन्त्री–"मैं ठीक कहता हूँ । जो श्लोक वररुचि सुनाता है, वे मेरी लड़कियों को भी याद हैं । यदि आपको विश्वास न हो, तो कल ही मैं अपनी लड़कियों से वररुचि द्वारा कहे हुए श्लोकों को ज्यों के त्यों कहलवा सकता हूँ ।"

राजा ने मन्त्री की बात मान ली ।

दूसरे दिन अपनी लड़कियों को लेकर मन्त्री राजसभा में आया और पर्दे के पीछे उन्हें बिठा दिया । इसके बाद वररुचि राजसभा में आया और उसने अपने बनाये हुए एक सौ आठ श्लोक सुनाये । जब वह सुना चुका, तो सकडाल की बड़ी लड़की यक्षा उठ कर सामने आई और उसने वे सारे श्लोक ज्यों के त्यों सुना दिये । क्योंकि वह उन श्लोकों को एक बार सुन चुकी थी । इसके बाद क्रमशः दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी और सातवीं लड़की ने भी वे श्लोक ज्यों के त्यों सुना दिये । यह देख कर राजा, वररुचि पर बहुत क्रुद्ध हुआ । उसने अपमान पूर्वक वररुचि को राजसभा से निकलवा दिया ।

वररुचि बहुत खिन्न हुआ । उसने सकडाल को अपमानित करने का निश्चय किया । लकड़ी का एक लम्बा पटिया लेकर वह गंगा नदी के किनारे आया । उसने पटिये का एक हिस्सा जल में रख दिया और दूसरा जल के बाहर रहने दिया । एक थैली में उसने एक सौ आठ मोहरें रखीं और रात्रि में गंगा के किनारे जाकर उस पटिये के जल में डूबे हुए हिस्से पर उसने उस थैली को रख दिया । प्रातःकाल वह पटिये के बाहर के हिस्से पर बैठ कर गंगा की स्तुति करने लगा । जब स्तुति समाप्त हुई, तो उसने पटिये को दबाया, जिससे वह मोहरों की थैली ऊपर आ गई । थैली दिखाते हुए उसने लोगों से कहा—"राजा मुझे पुरस्कार नहीं देता, तो क्या हुआ ? गंगा प्रसन्न होकर मुझे पुरस्कार देती है ।" इसके बाद वह थैली लेकर घर चला आया । अब वह प्रतिदिन इसी तरह करने लगा । वररुचि के कार्य को

देख कर लोग आश्चर्य करने लगे। जब यह बात सकडाल को मालूम हुई, तो उसने खोज करके उसके रहस्य को मालूम कर लिया।

लोग, वररुचि के कार्य की बहुत प्रशंसा करने लगे। धीरे धीरे यह बात राजा के पास भी पहुँची। राजा ने सकडाल से कहा। सकडाल ने कहा-"राजन्! यह सब उसका ढोंग है। ढोंग करके लोगों को आश्चर्य में डालता है। आपने लोगों से सुना है। सुनी हुई बात पर सहसा विश्वास नहीं करना चाहिये। उसे स्वयं देख कर फिर विश्वास करना चाहिये।" राजा ने कहा-"ठीक है। कल प्रातःकाल गंगा के किनारे चल कर हमें सारी घटना अपनी आँखों से देखनी चाहिये।"

घर आकर मन्त्री ने अपने एक विश्वस्त सेवक को बुला कर कहा-"जाओ, आज रातभर तुम गंगा के किनारे छिप कर बैठे रहो। रात में जब वररुचि आकर मोहरों की थैली पानी में रख कर चला जाय, तब तुम वह थैली उठा कर ले आना।" नौकर ने वैसा ही किया। वह गंगा के किनारे छिप कर बैठ गया। आधी रात के समय वररुचि आया और मोहरों की थैली पानी में रख कर चला गया। पीछे से सकडाल का सेवक उठा और पानी में से थैली निकाल कर ले आया। उसने थैली लाकर सकडाल मन्त्री को सौंप दी।

प्रातःकाल वररुचि सदा की भाँति गंगा के किनारे गया और पटिये पर बैठ कर गंगा की स्तुति करने लगा। इतने में राजा भी अपने मन्त्री सकडाल को साथ लेकर गंगा के किनारे

आया। जब वररुचि स्तुति कर चुका, तो उसने पटिये को दबाया, किंतु थैली बाहर नहीं आई। वररुचि हतबुद्धि हो गया। उसे असह्य आघात लगा। तत्काल सकडाल ने कहा—"पण्डित-राज ! वहां क्या देखते हो ? आपकी रखी हुई थैली तो यह रही।" ऐसा कह कर मन्त्री ने वह थैली सब लोगों को दिखाई और उसका सारा रहस्य प्रकट कर दिया। लोग वररुचि को मायावी, कपटी, धोखेबाज आदि कहकर अपमान एवं निन्दा करने लगे। वररुचि बहुत लज्जित हुआ। उसने इसका बदला लेने का निश्चय किया और वह सकडाल का छिद्रान्वेषण करने लगा।

कुछ समय पश्चात् सकडाल मन्त्री के घर उसके छोटे लड़के सिरीयक के विवाह की तैयारी होने लगी। उसके घर राजा को भेंट देने के लिए बहुत से शस्त्र बनाये जा रहे थे। वररुचि को इस बात का पता लगा। उसने बदला लेने के लिये यह अवसर ठीक समझा। उसने अपने शिष्यों को निम्न लिखित श्लोक कण्ठस्थ करवा दिया—

तं ण विजाणेइ लोओ, जं सकडालो करेसइ।
णंदरायं मारे वि करि, सिरीयउं रज्जे ठवेसइ॥

अर्थात्—सकडाल मन्त्री क्या षड्यन्त्र रच रहा है, इस बात का पता लोगों को नहीं है। वह नन्द राजा को मार कर अपने पुत्र सिरीयक को राजा बनाना चाहता है। शिष्यों को यह श्लोक कण्ठस्थ करवा कर वररुचि नें उनसे कहा कि शहर की प्रत्येक गली में इस श्लोक को बोलते फिरो। उसके शिष्य ऐसा

ही करने लगे। एक समय राजा ने यह श्लोक सुन लिया। उसने सोचा—'मुझे इस बात का कुछ भी पता नहीं है कि सकडाल मेरे विरुद्ध ऐसा षड्यन्त्र रच रहा है।'

दूसरे दिन प्रातःकाल सकडाल मन्त्री ने आकर सदा की भाँति राजा को प्रणाम किया। मन्त्री को देखते ही राजा ने मुँह फेर लिया। यह देख कर मन्त्री बहुत भयभीत हुआ। घर आकर उसने सारी बात सिरीयक को कही और कहा—"पुत्र! राजकोप बड़ा भयंकर होता है। कुपित हुआ राजा, वंश का समूल नाश कर सकता है। इसलिए पुत्र! मेरी राय यह है कि कल प्रातः काल मैं राजा को नमस्कार करने जाऊँ और यदि मुझे देख कर राजा मुँह फेर ले, तो उसी समय तू मेरी गरदन उड़ा देना।"

पुत्र ने कहा—"पिताजी! मैं ऐसा महापाप और लोकनिन्दनीय कार्य कैसे कर सकता हूँ?"

सकडाल ने कहा—"पुत्र! मैं उसी समय अपने मुंह में विष रख लूंगा। इसलिये मेरी मृत्यु तो विष के कारण होगी, किन्तु उस समय मेरी गरदन पर तलवार लगाने से तुम पर से राजा का कोप दूर हो जायगा। इस प्रकार अपने वंश की रक्षा हो जायगी।" वंश की रक्षा के लिए सिरीयक ने अपने पिता की बात मान ली।

दूसरे दिन सिरीयक को साथ लेकर सकडाल मन्त्री राजा को प्रणाम करने के लिये गया। उसे देखते ही राजा ने मुंह फेर लिया। ज्यों ही वह प्रणाम करने के लिये नीचे झुका,

त्यों ही सिरीयक ने उसकी गरदन पर तलवार मार दी। यह देख कर राजा ने कहा—"सिरीयक ! तुमने यह क्या कर दिया ?" सिरीयक ने कहा—"स्वामिन् ! जो व्यक्ति आपको इष्ट न हो, वह हमें इष्ट कैसे हो सकता है ?" सिरीयक के उत्तर से राजा का कोप शांत हो गया। उसने कहा—"सिरीयक ! अब तुम मन्त्रीपद स्वीकार करो।" सिरीयक ने कहा—"देव ! मैं मन्त्री पद नहीं ले सकता, क्योंकि मुझसे बड़ा भाई एक और है, उसका नाम स्थूलभद्र है। बारह वर्ष हो गये वह कोशा नाम की वेश्या के घर रहता है।"

सिरीयक की बात सुन कर राजा ने एक अधिकारी को आज्ञा दी कि "कोशा वेश्या के घर से स्थूलभद्र को सम्मान पूर्वक यहां ले आओ। उसे मन्त्री पद दिया जायगा।"

राजा की आज्ञा पाकर अधिकारी, कोशा वेश्या के घर पहुंचा। वहाँ जाकर उसने स्थूलभद्र को राजाज्ञा सुनाई। पिता की मृत्यु के समाचार सुन कर स्थूलभद्र को बहुत खेद हुआ। आगत अधिकारी ने विनयपूर्वक स्थूलभद्र से प्रार्थना की—"हे महानुभाव ! आप राजसभा में पधारिये, राजा आपको बुलाते हैं।" उनकी बात सुन कर स्थूलभद्र राजसभा में आया। राजा ने सम्मानपूर्वक उसे आसन पर बिठाया और कहा—"तुम्हारे पिता की मृत्यु हो चुकी है, इसलिये अब तुम मन्त्रीपद स्वीकार करो।" राजा की बात सुन कर स्थूलभद्र विचार करने लगा— "जो मन्त्रीपद मेरे पिता की मृत्यु का कारण हुआ, वह मेरे लिये श्रेयस्कर कैसे हो सकेगा ? संसार में मुद्रा (माया—परिग्रह)

दुःखों का कारण है, आपत्तियों का घर है। कहा भी है—

मुद्रेयं खलु पारवश्यजननी, सौख्यच्छिदे देहिनां।
नित्यं कर्कश कर्मबन्धनकरी, धर्मान्तरायावहा॥
राजार्थैकपरैव सम्प्रति पुनः, स्वार्थं प्रजार्थापहृत्।
तद् ब्रूमः किमतः परं मतिमतां, लोकद्वयापायकृत्॥

अर्थात्—यह मुद्रा (परिग्रह—माया) स्वतन्त्रता का अपहरण कर परतन्त्र बनानेवाली, प्राणियों के सुख को नष्ट करनेवाली, कठोर कर्मों का बन्ध करानेवाली और धर्म कार्यों में अन्तराय करनेवाली है। फिर यह मनुष्यों को सुख देनेवाली कैसे हो सकती है? धन के लोभी राजा, प्रजा को अनेक प्रकार का कष्ट देकर उसका धन हरण करलेते हैं। विशेष क्या कहा जाय, यह माया इसलोक और परलोक दोनों में दुःख देनेवाली है।

इस प्रकार गहरा चिन्तन करते हुए स्थूलभद्र को वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह राजसभा से निकल कर 'आर्य सम्भूति-विजय' के पास आया और दीक्षा अंगीकार करली।

स्थूलभद्र के दीक्षा लेने पर राजा ने सिरीयक को मन्त्री-पद पर स्थापित किया। सिरीयक वड़ी होशियारी के साथ राज्य का कार्य चलाने लगा।

स्थूलभद्र मुनि दीक्षा लेकर ज्ञान ध्यान में तल्लीन रहने लगे। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए स्थूलभद्र मुनि, अपने गुरु के साथ पाटलिपुत्र पधारे। चतुर्मास का समय नजदीक आ जाने से गुरु ने वहीं चतुर्मास कर दिया। तब गुरु के समक्ष

चार मुनियों ने भिन्न-भिन्न चातुर्मास करने की आज्ञा माँगी। एक मुनि ने सिंह की गुफा में, दूसरे ने सर्प के बिल पर, तीसरे ने कुएँ के किनारे पर और चौथे मुनि स्थूलभद्र ने कोशा वेश्या के घर चातुर्मास करने की आज्ञा माँगी। गुरु ने चारों मुनियों को आज्ञा दे दी। सब अपने अपने इष्ट स्थान पर चले गये। जब स्थूलभद्र मुनि कोशा वेश्या के घर गये, तो वह बहुत हर्षित हुई। वह सोचने लगी-" बहुत समय का बिछुड़ा हुआ मेरा प्रेमी, आज वापिस मेरे घर आ गया।" ठहरने के लिये मुनि ने कोशा से आज्ञा माँगी। उसने मुनि को अपनी चित्रशाला में ही ठहरने की आज्ञा दी। फिर वह श्रृंगार आदि करके बहुत हाव-भाव पूर्वक मुनि को चलित करने का प्रयत्न करने लगी, किन्तु स्थूल-भद्र अब पहलेवाले स्थूलभद्र नहीं थे। भोगों को किंपाक फल के समान महादुःखदायी समझकर वे उन्हें ठुकरा चुके थे। उनके रग रग में वैराग्य घर कर चुका था। इसलिए काया से चलित होना दूर, वे मन से भी चलित नहीं हुए। मुनि की निर्वि-कार मुखमुद्रा देख कर वेश्या शान्त हो गई। तब मुनि ने हृदय-स्पर्शी शब्दों में उसे उपदेश दिया, जिससे उसे प्रतिबोध हो गया। भोगों को दुःख की खान समझ कर उसने राजाज्ञा के अतिरिक्त भोगों का त्याग कर दिया और वह श्राविका बन गई।

चतुर्मास समाप्त होने पर सिंहगुफा, सर्पद्वार और कुएँ पर चतुर्मास करने वाले मुनियों ने आकर गुरु महाराज को वन्दना नमस्कार किया। तब गुरु महाराज ने कहा-' कृत दुष्करा:" अर्थात् हे मुनियों! तुमने दुष्कर कार्य किया है। जब स्थूलभद्र आये,

तो गुरु महाराज तत्काल खड़े हो गये और कहा–"कृत दुष्कर दुष्कर:" अर्थात् हे मुनिश्वर ! तुमने महान् दुष्कर कार्य किया है।

गुरु की बात सुन कर तीनों मुनियों को ईर्ष्याभाव उत्पन्न हो गया। जब दूसरा चतुर्मास आया, तब सिंह की गुफा में चतुर्मास करनेवाले मुनि ने कोशा वेश्या के घर चतुर्मास करने की आज्ञा माँगी। गुरु ने आज्ञा नहीं दी, फिर भी वह यहाँ चतुर्मास करने के लिये चला गया। वेश्या के रूप लावण्य को देखकर उसका चित्त चलित हो गया। वह वेश्या से प्रार्थना करने लगा। वेश्या तो श्राविका बन चुकी थी। मुनि को सद्-मार्ग पर लाने के लिये उसने कहा–"मुझे लाख मोहरें दो।" मुनि ने कहा–"हम तो भिक्षुक हैं। हमारे पास धन कहाँ ?" वेश्या ने कहा–"नैपाल का राजा प्रत्येक साधु को एक रत्न कम्बल देता है। उसका मूल्य एक लाख मोहर है। इसलिए तुम वहाँ जाओ और एक रत्न कम्बल लाकर मुझे दो। वेश्या की बात सुनकर वह मुनि नैपाल गया। वहाँ के राजा से रत्न कम्बल लेकर वापिस लौटा। मार्ग में अटवी में उसे कुछ चोर मिले। उन्होंने उससे रत्नकम्बल छीन ली। वह बहुत निराश हुआ। वह दूसरी बार नैपाल गया। उसने राजा से आपबीती सुना कर दूसरी रत्नकम्बल की याचना की। राजा ने उसे दूसरी रत्नकम्बल दे दी। अबकी बार उसने रत्नकम्बल को बाँस की लकड़ी में डाल कर छिपा लिया। जंगल में उसे फिर चोर मिले। उसने कहा–"मैं तो भिक्षुक हूँ। मेरे पास कुछ नहीं है।" उसके ऐसा कहने से चोर चले गये। मार्ग

में भूख-प्यास के अनेक कष्टों को सहन करते हुए उस मुनि ने बड़ी सावधानी के साथ रत्नकम्बल लाकर उस वेश्या को दी। रत्नकम्बल लेकर वेश्या ने अशुचि में फेंक दी, जिससे वह खराब हो गई। यह देख कर मुनि ने कहा—"तुमने यह क्या किया ? इसको यहाँ लाने में मुझे अनेक कष्ट उठाने पड़े हैं।" वेश्या ने कहा—"हे मुने ! मैंने यह सब कार्य तुमको समझाने के लिये किया है। जिस प्रकार अशुचि में पड़ने से यह रत्न-कम्बल खराब हो गई है, उसी प्रकार काम-भोग रूपी कीचड़ में फँस कर तुम्हारी आत्मा भी मलिन हो जायगी, पतित हो जायगी। हे मुने ! जरा विचार करो। इन विषय-भोगों को किंपाक फल के समान दुखदायी समझ कर तुमने ठुकरा दिया था। अब वमन किये हुए कामभोगों को तुम फिर से स्वीकार करना चाहते हो। वमन किये हुए की इच्छा तो कौए और कुत्ते किया करते हैं। हे मुने ! जरा सोचो, समझो और अपनी आत्मा को सम्भालो।"

वेश्या का मार्मिक उपदेश सुन कर मुनि की गिरती हुई आत्मा पुनः संयम में स्थिर हो गई। मुनि ने उसी समय अपने पाप कार्य के लिए 'मिच्छामि दुक्कडं' दिया और कहा;—

स्थूलभद्रः स्थूलभद्रः, स एकोऽखिल साधुषु।
युक्तं दुष्करदुष्कर-कारको गुरुणा जगे॥

अर्थात्—सभी साधुओं में एक स्थूलभद्र मुनि ही महान् दुष्कर क्रिया के करनेवाले हैं। जिस वेश्या के यहाँ बारह वर्ष रहे, उसीकी चित्रशाला में चतुर्मास किया। वेश्या ने बहुत हावभाव

में भूख-प्यास के अनेक कष्टों को सहन करते हुए उस मुनि ने बड़ी सावधानी के साथ रत्नकम्बल लाकर उस वेश्या को दी। रत्नकम्बल लेकर वेश्या ने अशुचि में फेंक दी, जिससे वह खराब हो गई। यह देख कर मुनि ने कहा—"तुमने यह क्या किया? इसको यहाँ लाने में मुझे अनेक कष्ट उठाने पड़े हैं।" वेश्या ने कहा—"हे मुने! मैंने यह सब कार्य तुमको समझाने के लिये किया है। जिस प्रकार अशुचि में पड़ने से यह रत्न-कम्बल खराब हो गई है, उसी प्रकार काम-भोग रूपी कीचड़ में फँस कर तुम्हारी आत्मा भी मलिन हो जायगी, पतित हो जायगी। हे मुने! जरा विचार करो। इन विषय-भोगों को किंपाक फल के समान दुखदायी समझ कर तुमने ठुकरा दिया था। अब वमन किये हुए कामभोगों को तुम फिर से स्वीकार करना चाहते हो। वमन किये हुए की इच्छा तो कौए और कुत्ते किया करते हैं। हे मुने! जरा सोचो, समझो और अपनी आत्मा को सम्भालो।"

वेश्या का मार्मिक उपदेश सुन कर मुनि की गिरती हुई आत्मा पुनः संयम में स्थिर हो गई। मुनि ने उसी समय अपने पाप कार्य के लिए 'मिच्छामि दुक्कडं' दिया और कहा;—

स्थूलभद्रः स्थूलभद्रः, स एकोऽखिल साधुषु।
युक्तं दुष्करदुष्कर-कारको गुरुणा जगे॥

अर्थात्—सभी साधुओं में एक स्थूलभद्र मुनि ही महान् दुष्कर क्रिया के करनेवाले हैं। जिस वेश्या के यहाँ बारह वर्ष रहे, उसीकी चित्रशाला में चतुर्मास किया। वेश्या ने बहुत हावभाव

नन्द राजा ने स्थूलभद्र को मन्त्रीपद लेने के लिये आग्रह पूर्वक बहुत कुछ कहा, किंतु भोगभावना को नाश का कारण और संसार के सम्बन्ध को दुःखों का कारण जान कर उन्होंने मन्त्रीपद को ठुकरा दिया और संयम स्वीकार कर आत्मकल्याण में लग गये। यह स्थूलभद्र की पारिणामिकी बुद्धि थी।

१४ सुन्दरीनन्द को प्रतिबोध

(नासिक)

नासिकपुर नाम का एक नगर था। वहाँ नन्द नाम का एक सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम सुन्दरी था। सुन्दरी, नाम के अनुसार ही रूप-लावण्य से सुन्दर थी। नन्द का उस पर बहुत प्रेम था। वह उसे बहुत प्रिय थी। वह उसमें इतना अनुरक्त था कि उससे एक क्षण भर के लिये भी दूर रहना नहीं चाहता था। इसलिये लोग उसे 'सुन्दरीनन्द' कहने लग गये। उसकी आसक्ति बहुत अधिक थी।

सुन्दरीनन्द के एक छोटा भाई था। वह मुनि हो गया था। जब मुनि को मालुम हुआ कि बड़ा भाई सुन्दरी में अत्यन्त आसक्त है, तो उसे प्रतिबोध देने के लिये वह नासिकपुर आया और उद्यान में ठहर गया। नगर की जनता धर्मोपदेश सुनने के लिये गई। किन्तु सुन्दरीनन्द नहीं गया। धर्मोपदेश के पश्चात् मुनि, गोचरी के लिये शहर में पधारे। अनुक्रम से गोचरी करते हुए वे अपने भाई सुन्दरीनन्द के घर गये। अपने भाई की स्थिति को देख कर मुनि को बड़ा विचार उत्पन्न

हुआ। उन्होंने सोचा कि यह सुन्दरी में अत्यन्त आसक्त है। इसलिये जब तक इसको इससे अधिक का प्रलोभन नहीं दिया जायगा, तब तक इसमें इसका राग कम नहीं हो सकेगा। ऐसा सोच कर उन्होंने वैक्रिय लब्धि द्वारा एक सुन्दर बन्दरी बनाई और भाई से पूछा—

"क्या यह सुन्दरी सरीखी सुन्दर है ?"

उसने कहा—"यह सुन्दरी से आधी सुन्दर है।"

फिर मुनि ने एक विद्याधरी बना कर भाई से पूछा—"क्या यह सुन्दरी जैसी है ?"

सुन्दरीनन्द ने उत्तर दिया—"हां, यह सुन्दरी के समान है।"

इसके बाद मुनि ने एक देवी बनाई और पूछा—"यह कैसी है ?"

उसे देख कर सुन्दरीनन्द ने कहा—"यह तो सुन्दरी से भी अधिक सुन्दर है।"

मुनि ने कहा—"थोड़ा-सा धर्म का आचरण करने से तुम भी ऐसी अनेक देवियाँ प्राप्त कर सकते हो।"

इस प्रकार मुनि के प्रबोध से सुन्दरीनन्द का सुन्दरी में राग कम हो गया। कुछ समय पश्चात् उसने दीक्षा लेली।

अपने भाई को प्रतिबोध देने के लिये मुनि ने जो कार्य किया, वह उनकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

१५ वज्रस्वामी

अवन्ती देश में 'तुम्ब वन' नाम का एक नगर था। वहाँ एक इभ्य (धनवान्) सेठ रहता था। उसके पुत्र का नाम धन-

गिरि था। उसका विवाह धनपाल सेठ की पुत्री सुनन्दा के साथ हुआ था। विवाह के कुछ ही दिनों के पश्चात् धनगिरि दीक्षा लेने के लिये तय्यार हुआ, किंतु उस समय उसकी स्त्री ने उसे रोक दिया।

कुछ समय पश्चात् देवलोक से चव कर एक पुण्यवान् जीव सुनन्दा की कुक्षि में आया। धनगिरि ने सुनन्दा से कहा–"यह भावी पुत्र तुम्हारे लिये आधार होगा। अब मुझे दीक्षा की आज्ञा देदो।" धनगिरि को उत्कृष्ट वैराग्य हुआ जान कर सुनन्दा ने उसे आज्ञा देदी। दीक्षा के लिये आज्ञा हो जाने पर धनगिरि ने सिंहगिरि नामक आचार्य के पास दीक्षा लेली। सुनन्दा के भाई आर्यसमित ने भी इन्हीं आचार्य के पास दीक्षा ली थी।

गर्भ समय पूरा होने पर सुनन्दा की कुक्षि से एक महान् पुण्यशाली पुत्र का जन्म हुआ। जब उसका जन्मोत्सव मनाया जा रहा था, तब किसी स्त्री ने कहा–"यदि इस बालक के पिता ने दीक्षा न ली होती, तो अच्छा होता।" बालक बहुत बुद्धिमान् था। स्त्री के उपरोक्त वचनों को सुन कर वह विचारने लगा कि "मेरे पिता ने दीक्षा ली है, अब मुझे क्या करना चाहिये ?" इस विषय पर गहरा चिन्तन करते हुए उस बालक को जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने विचार किया कि मुझे ऐसा कोई उपाय करना चाहिए, जिससे मैं इन सांसारिक बन्धनों से छूट जाऊँ तथा माता को भी वैराग्य उत्पन्न हो और वह भी इन सांसारिक बन्धनों से छूट जाय। ऐसा सोच कर उसने रात दिन रोना शुरू किया। अनेक प्रकार के खिलौने देकर माता

उसे शांत करने का प्रयत्न करती थी, किंतु बालक ने रोना बन्द नहीं किया। इससे उसकी माता खिन्न होने लगी।

आचार्य सिंहगिरि ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वापिस तुम्बवन में पधारे। गुरु महाराज की आज्ञा लेकर धनगिरि और आर्यसमित, भिक्षा के लिए शहर में जाने लगे। उस समय होते हुए शुभ शकुन को देख कर गुरु महाराज ने उनसे कहा—"आज तुम्हें कोई महान् लाभ होने वाला है, इसलिए सचित्त या अचित्त जो भी भिक्षा मिले उसे ले आना।" गुरु महाराज की आज्ञा शिरोधार्य करके वे मुनि शहर में गये।

उस समय सुनन्दा अपनी सखियों के साथ बैठी थी और रोते हुए बालक को शांत करने का प्रयत्न कर रही थी। उसी समय वे मुनि उधर से निकले। उन्हें देख कर सुनन्दा ने धनगिरि मुनि से कहा—"इतने दिन इस बालक की रक्षा मैंने की, अब इसे आप ले जाइये और इसकी रक्षा कीजिये।" यह सुन कर धनगिरि मुनि उसके सामने अपना पात्र खोल कर खड़े रहे। सुनन्दा ने उस बालक को उनके पात्र में रख दिया। श्रावक और श्राविकाओं की साक्षी से मुनि ने उस बालक को ग्रहण कर लिया। उसी समय बालक ने रोना बन्द कर दिया। उसे लेकर वे गुरु के पास आये। आते हुए उन्हें गुरु ने दूर से देखा। उनकी झोली को विशेष भारी देख कर गुरु ने दूर से ही कहा—"यह वज्र सरीखा भारी पदार्थ क्या ले आये हो?" निकट आकर मुनि ने अपनी झोली खोल कर गुरु महाराज को दिखलाई। अत्यन्त तेजस्वी और प्रतिभाशाली बालक को

देख कर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"यह बालक शासन के लिए आधारभूत होगा।" उसका नाम "वज्र" रखा गया। इसके पश्चात् वह बालक संघ को सौंप दिया गया। मुनि वहाँ से अन्यत्र विहार कर गए। अब बालक सुखपूर्वक बढ़ने लगा। कुछ दिनों के बाद उसकी माता सुनन्दा, अपना पुत्र वापिस लेने के लिए आई, किंतु संघ ने कहा कि—'यह तो दूसरों की धरोहर है। हम इसे कैसे दे सकते हैं?' ऐसा कह कर संघ ने उस बालक को देने से इन्कार कर दिया।

एक समय आचार्य सिंहगिरि अपने शिष्य परिवार सहित वहाँ पधारे। धनगिरि मुनि भी उनके साथ थे। उनका आगमन सुन कर सुनन्दा उनके पास आई और अपना पुत्र माँगने लगी। जब साधुओं ने उसे देने से इन्कार कर दिया, तो सुनन्दा ने राजा के पास जाकर पुकार की। राजा ने कहा—"एक तरफ बालक की माता बैठ जाय और दूसरी तरफ बालक का पिता। बुलाने पर बालक जिसके पास चला जायगा, वह उसी का होगा।"

दूसरे दिन सभी एक जगह एकत्रित हुए। एक ओर बहुत से नगर निवासियों के साथ बालक की माता सुनन्दा बैठी हुई थी। उसके पास खाने के बहुत से पदार्थ और खिलौने आदि थे। दूसरी ओर संघ के साथ आचार्य सिंहगिरि तथा धनगिरि आदि साधु बैठे हुए थे। राजा ने कहा—"पहले बालक का पिता इसे अपनी तरफ बुलावें।" उसी समय नगर निवासियों ने कहा—"देव! बालक की माता दया करने योग्य है। इसलिए पहले

इसे बुलाने की आज्ञा दीजिये।" उन लोगों की बात को स्वीकार कर राजा ने पहले माता को आज्ञा दी। इस पर माता ने खाने की बहुत सी चीजें और खिलौने आदि दिखा कर बालक को अपनी ओर बुलाने की बहुत कोशीश की।

बालक ने सोचा–'यदि मैं दृढ़ रहा, तो माता का मोह दूर हो जायगा और वह भी व्रत अंगीकार कर लेगी,जिससे दोनों का कल्याण होगा।" ऐसा सोच कर बालक अपने स्थान से जरा भी नहीं हिला। इसके पश्चात् राजा ने उसके पिता से बालक को अपनी तरफ बुलाने के लिये कहा। पिता ने बालक से कहा–

"जइसि कयज्झवसाओ, धम्मज्झय मूसियं इमं वइर।
गिण्ह लहुं रयहरणं, कम्मरयपमज्जणं धीर॥

अर्थात्–हे वज्र! यदि तुमने निश्चय कर लिया है, तो धर्माचरण के चिन्हभूत तथा कर्म-रज को साफ करनेवाले इस रजोहरण को स्वीकार करो।

उपरोक्त वचन सुनते ही बालक, मुनियों की ओर गया और रजोहरण उठा लिया। राजा ने वह बालक साधुओं को सौंप दिया। राजा और संघ की अनुमति से आचार्य ने उसी समय उसे दीक्षा दे दी।

यह घटना देख कर सुनन्दा ने सोचा–"मेरे भाई ने, पति ने और पुत्र ने–सभी ने दीक्षा ले ली। अब मुझे संसार से क्या मतलब है?" यह सोच कर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने भी दीक्षा लेली।

कुछ साधुओं के साथ बालमुनि को वहीं छोड़ कर आचार्य,

दूसरी ओर विचरने लगे। कुछ समय के पश्चात् वज्र मुनि भी आचार्य के पास आये और उनके साथ विहार करने लगे। दूसरे मुनियों को अध्ययन करते हुए सुन कर वज्र मुनि को ग्यारह अंगों का ज्ञान स्थिर हो गया। इसी प्रकार सुन कर ही उन्होंने पूर्वों का बहुत-सा ज्ञान भी प्राप्त कर लिया।

एक समय आचार्य, शौच निवृत्ति के लिये बाहर गये थे और दूसरे साधु गोचरी के लिये गये थे। पीछे वज्रमुनि उपाश्रय में अकेले थे। उन्होंने साधुओं के उपकरणों को (पातरे, चादर आदि को) एक जगह इकट्ठे किये और उन्हें पंक्ति रूप में स्थापित कर आप स्वयं उनके बीच में बैठ गये। उपकरणों में शिष्यों की कल्पना करके सूत्रों की वाचना देने लगे। इतने में आचार्य महाराज लौट कर आ गये। उपाश्रय में से आनेवाली आवाज उन्हें दूर से सुनाई पड़ी। आचार्य विचारने लगे—"क्या शिष्य, इतनी जल्दी वापिस लौट आये हैं?" कुछ निकट आने पर उन्हें वज्र मुनि की आवाज सुनाई पड़ी। आचार्य कुछ पीछे हट कर थोड़ी देर खड़े रहे और वज्रमुनि का वाचना देने का ढंग देखने लगे। उनका ढंग देख कर आचार्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके पश्चात् वज्रमुनि को सावधान करने के लिये ऊँचे स्वर से 'णिसीहिया' (नैषेधिकी) का उच्चारण किया। वज्रमुनि ने तत्काल उन सब उपकरणों को यथास्थान रख दिया और उठ कर विनयपूर्वक गुरु महाराज के पैरों को पोंछा।

'वज्र मुनि श्रुतधर हैं, किंतु इसे छोटा समझ कर दूसरे इसकी अवज्ञा न कर दें'—ऐसा सोच कर आचार्य ने पांच छह

दिनों के लिये दूसरी जगह विहार कर दिया। साधुओं को वाचना देने का कार्य वज्र मुनि को सौंपा गया। सभी साधु भक्तिपूर्वक वज्रमुनि से वाचना लेने लगे।

वज्रमुनि, शास्त्रों का सूक्ष्म रहस्य भी इस प्रकार समझाने लगे कि मन्द बुद्धि शिष्य भी बड़ी आसानी के साथ उन तत्त्वों को समझ लेते। पहले पढ़े हुए श्रुतज्ञान में से भी साधुओं ने बहुत सी शंकाएं की, उनका खुलासा भी वज्रमुनि ने अच्छी तरह कर दिया। साधु, वज्रमुनि को बहुत मानने लगे।

कुछ समय के पश्चात् आचार्य वापिस लौट आये। उन्होंने साधुओं से वाचना के विषय में पूछा। उन्होंने कहा–"हमारा वाचना का कार्य बहुत अच्छा चल रहा है। कृपा कर अब सदा के लिये हमारी वाचना का कार्य वज्र मुनि को सौंप दीजिये।" गुरु ने कहा–"तुम्हारा कहना ठीक है। वज्र मुनि के प्रति तुम्हारा विनय और सद्भाव अच्छा है। तुम लोगों को वज्र मुनि का माहात्म्य बतलाने के लिये ही मैंने वाचना देने का कार्य वज्रमुनि को सौंपा था। वज्रमुनि ने यह सारा ज्ञान सुन कर ही प्राप्त किया है, किंतु गुरुमुख से ग्रहण नहीं किया। गुरुमुख से ज्ञान ग्रहण किये बिना कोई भी वाचना गुरु नहीं हो सकता।" इसके बाद गुरु ने अपना सारा ज्ञान वज्र मुनि को सिखा दिया।

एक समय विहार करते हुए आचार्य दशपुर नगर में पधारे। उस समय अवन्ती नगरी में भद्रगुप्त आचार्य वृद्धावस्था के कारण स्थिरवास विराज रहे थे। आचार्य ने दो साधुओं के साथ वज्र-

मुनि को उनके पास भेजा। उनके पास रह कर वज्रमुनि ने विनयपूर्वक दस पूर्व का ज्ञान पढ़ा। आचार्य सिंहगिरि ने अपने पाट पर वज्रमुनि को बिठाया। इसके पश्चात् आचार्य अनशन करके स्वर्ग सिधार गये।

ग्रामानुग्राम विहार कर धर्मोपदेश द्वारा वज्रमुनि, जनता का कल्याण करने लगे। अनेक भव्यात्माओं ने उनके पास दीक्षा ली। सुन्दर रूप, शास्त्रों का ज्ञान तथा विविध लब्धियों के कारण वज्रमुनि का प्रभाव दूर दूर तक फैल गया।

बहुत समय तक संयम का पालन कर वज्रमुनि देवलोक में पधारे। वज्रमुनि का जन्म विक्रम संवत २६ में हुआ था और स्वर्गवास विक्रम संवत् ११४ में हुआ था। वज्रमुनि की आयु ८८ वर्ष की थी।

वज्र स्वामी ने बचपन में भी माता के प्रेम की उपेक्षा कर संघ का बहुमान किया अर्थात् माता द्वारा दिये जानेवाले खिलौने आदि न लेकर संयम के चिन्हभूत रजोहरण को लिया। ऐसा करने से माता का मोह भी दूर हो गया, जिससे उसने दीक्षा ली और आप स्वयं ने भी दीक्षा लेकर शासन के प्रभाव को दूर दूर तक फैलाया। यह वज्र स्वामी की पारिणामिकी बुद्धि थी।

१६ वृद्धों की बुद्धि

(चलन आहत)

एक राजा था। वह तरुण था। एक समय कुछ तरुण सेवकों ने मिल कर राजा से निवेदन किया—"देव! आप नव-

युवक हैं। इसलिये आपको चाहिये कि नवयुवकों को ही आप अपनी सेवा में रखें। वे आपके सभी कार्य बड़ी योग्यता पूर्वक सम्पादित करेंगे। बूढ़े आदमियों के केश पक कर सफेद हो जाते हैं। उनका शरीर जीर्ण हो जाता है। वे लोग आपकी सेवा में रहते हुए शोभा नहीं देते।"

नवयुवकों की बात सुन कर उनकी बुद्धि की परीक्षा करने के लिये राजा नें उनसे पूछा–"यदि कोई सिर पर पांव का प्रहार करे, तो उसे क्या दण्ड देना चाहिये?" नवयुवकों ने तत्काल उत्तर दिया–"महाराज! तिल जितने छोटे छोटे टुकड़े करके उसको मरवा देना चाहिये।"

राजा ने यही प्रश्न वृद्ध पुरुषों से किया। वृद्ध पुरुषों ने कहा–"स्वामिन्! हम विचार कर उत्तर देंगे।" फिर वे सभी, एक जगह इकट्ठे हुए और विचार करने लगे–"रानी के सिवाय दूसरा कौन पुरुष, राजा के सिर पर पाँव का प्रहार कर सकता है? रानी तो विशेष सम्मान करने के लायक होती है।" इस प्रकार सोच कर वृद्ध पुरुष, राजा की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने कहा–"स्वामिन्! उसका विशेष सत्कार करना चाहिये।" उनका उत्तर सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और सदा वृद्ध पुरुषों को ही अपनी सेवा में रखने लगा। प्रत्येक विषय में उनकी सलाह लेकर कार्य किया करता था, इसलिए थोड़े ही दिनों में उसका यश चारों ओर फैल गया।

यह राजा और वृद्धपुरुषों की पारिणामिकी बुद्धि थी।

१७ आंवला

किसी कुम्हार ने एक मनुष्य को एक बनावटी आंवला दिया। वह रंग, रूप और आकार में बिलकुल आंवले सरीखा था। उसे लेकर उस मनुष्य ने सोचा कि 'यह रंग रूप में तो आंवले सरीखा दिखता है, किंतु इसका स्पर्श कठोर मालूम होता है, तथा यह आंवले फलने की ऋतु भी नहीं है।' ऐसा सोच कर उस आदमी ने समझ लिया कि यह आंवला असली नहीं है, किंतु बनावटी है। यह उस पुरुष की पारिणामिकी बुद्धि थी।

१८ मणि

एक जंगल में एक साँप रहता था। उसके मस्तक पर मणि थी। वह रात्रि में वृक्षों पर चढ़ कर पक्षियों के बच्चों को खाया करता था। एक दिन वह अपने भारी शरीर को न संभाल सका और वृक्ष से नीचे गिर पड़ा। उसके मस्तक की मणि वृक्ष पर ही रह गई। वृक्ष के नीचे एक कुआं था। मणि की प्रभा के कारण उसका पानी लाल दिखाई देने लगा। प्रातःकाल कुएँ के पास खेलते हुए किसी बालक ने यह आश्चर्य की बात देखी। वह दौड़ा हुआ अपने वृद्ध पिता के पास आया और उनसे सारी बात कही। बालक की बात सुन कर वह कुएं के पास आया। उसने अच्छी तरह देखा और कारण का पता लगा कर मणि को प्राप्त कर लिया। यह वृद्ध पुरुष की पारिणामिकी बुद्धि थी।

१६ चंडकौशिक सर्प

(साँप)

चौबीसवें तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दीक्षा लेकर पहला चतुर्मास अस्थिक ग्राम में किया। चतुर्मास की समाप्ति के बाद विहार करके भगवान् श्वेताम्बिका नगरी की ओर पधारने लगे। थोड़ी दूर जाने पर कुछ ग्वालों के लड़कों ने भगवान् से प्रार्थना की–"भगवन्! श्वेताम्बिका जाने के लिये यह मार्ग छोटा एवं सीधा तो है, किंतु बीच में एक दृष्टि-विष सर्प रहता है। इसलिए आप दूसरे मार्ग से श्वेताम्बिका पधारिये।" बालकों की प्रार्थना सुन कर भगवान् ने विचार किया–' वह सर्प, बोध पाने योग्य है"–ऐसा सोच कर भगवान् उसी मार्ग से पधारने लगे। चलते चलते भगवान् उस सर्प के बिल के पास पहुँचे। वहाँ जाकर बिल के पास ही कायोत्सर्ग करके खड़े हो गये। थोड़ी देर बाद वह सर्प बिल से बाहर निकला। अपने बिल के पास ध्यानस्थ भगवान को देख कर उसने सोचा–' यह कौन व्यक्ति है, जो यहाँ आकर खड़ा है? इसको मेरा जरा भी भय नहीं है।" ऐसा सोच कर उसने अपनी विषभरी दृष्टि भगवान् पर डाली, किंतु इससे भगवान् का कुछ भी नहीं बिगड़ा। अपने प्रयत्न को निष्फल देखकर सर्प का क्रोध बहुत बढ़ गया। एक बार सूर्य की तरफ देख कर उसने भगवान् पर फिर विष भरी दृष्टि फेंकी, किंतु इससे भी उसे सफलता नहीं मिली। तब कुपित होकर वह भगवान् के

समीप आया और उसने भगवान् के पैर के अंगूठे को डस लिया। इतना होने पर भी भगवान् अपने ध्यान से चलित नहीं हुए। भगवान् के अंगूठे के रक्त का स्वाद चण्डकौशिक को विलक्षण लगा। रक्त का विशिष्ट आस्वाद जान कर वह सोचने लगा– "यह कोई सामान्य पुरुष नहीं है। कोई अलौकिक पुरुष मालूम होता है"–ऐसा विचार करते हुए उसका क्रोध शांत हो गया। वह शांत दृष्टि से भगवान् के सौम्य मुख की ओर देखने लगा।

उपदेश के लिए उपयुक्त समय जान कर भगवान् ने फरमाया–"हे चण्डकौशिक ! समझो और अपने पूर्वभव को याद करो।"

"हे चण्डकौशिक ! तुमने पूर्व भव में दीक्षा ली थी। तुम एक तपस्वी साधु थे। पारणे के दिन गोचरी लेकर वापिस लौटते हुए तुम्हारे पैर के नीचे दब कर एक मेंढ़क मर गया था। उसी समय तुम्हारे एक शिष्य ने उस पाप की आलोचना करने के लिये तुम्हें कहा, किंतु तुमने उसके कथन पर कोई ध्यान नहीं दिया। गुरु महाराज महान् तपस्वी हैं। अभी नहीं, तो शाम को आलोचना कर लेंगे–ऐसा सोच कर शिष्य मौन रहा। शाम को प्रतिक्रमण करके तुम बैठ गये, परन्तु तुमने उस पाप की आलोचना नहीं की। 'सम्भव है गुरु महाराज आलोचना करना भूल गये हों'–ऐसा सोच कर तुम्हारे शिष्य ने सरल बुद्धि से तुमको वह पाप फिर याद दिलाया। शिष्य के वचन सुनते ही तुम्हें क्रोध आ गया। तीव्र क्रोध करके तुम शिष्य को मारने के लिये उसकी तरफ दौड़े। बीच में स्तम्भ से तुम्हारा सिर

टकरा गया, जिससे तुम्हारी मृत्यु हो गई। हे चण्डकौशिक ! तुम वही हो। क्रोध में मृत्यु होने से तुम्हें यह सर्प योनि प्राप्त हुई है। अब फिर क्रोध करके तुम अपने जन्म को क्यों विगाड़ रहे हो ? समझो ! समझो !! बोध प्राप्त करो !!!"

भगवान् के उपरोक्त वचनों को सुन कर चण्डकौशिक को उसी समय जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। वह अपने पूर्व-भव को देखने लगा। भगवान् को पहचान कर उसने विनय-पूर्वक वन्दना नमस्कार किया और वह अपने अपराध के लिये वारवार पश्चात्ताप करने लगा।

जिस क्रोध के कारण सर्प योनि प्राप्त हुई, उस क्रोध पर विजय प्राप्त करने के लिये और मेरी विपैली दृष्टि से कहीं किसी प्राणी को कष्ट न हो, इसलिये चण्डकौशिक ने भगवान् के समक्ष ही अनशन कर लिया। उसने अपना मुँह विल में डाल दिया और शरीर को विल के बाहर ही रहने दिया। जब ग्वालों के लड़कों ने भगवान् को सकुशल देखा, तो वे भी वहाँ आये। सर्प की यह अवस्था देख कर उन्हें वहुत आश्चर्य हुआ। वे पत्थर और ढेले मार कर तथा लकड़ी आदि से साँप को छेड़ने लगे, किंतु साँप ने इन सब कष्टों को समभाव से सहन किया और निश्चल रहा। तब उन लड़कों ने जाकर लोगों से यह वात कही। लड़कों की वात सुन कर वहुत से स्त्री पुरुष आकर सर्प को देखने लगे। वहुत-सी ग्वालिनें, घी, दूध आदि से उसकी पूजा करने लगी। उनकी सुगन्ध के कारण सर्प के शरीर में चींटियाँ लग गई। चींटियों ने काट काट कर साँप के शरीर को

चालनी सरीखा बना दिया। इस असह्य वेदना को भी सर्प, समभाव पूर्वक सहन करता रहा और विचारता रहा कि मेरे पापों की तुलना में यह कष्ट तो कुछ नहीं है। 'मेरे भारी शरीर से दब कर कोई चींटी मर न जाय'–ऐसा सोच कर उसने अपने शरीर को किंचित्मात्र भी नहीं हिलाया और सभी कष्टों को समभाव पूर्वक सहन करता हुआ शांत चित्त बना रहा। पन्द्रह दिन का अनशन करके इस शरीर को छोड़ कर वह आठवें सहस्रार देवलोक में महर्द्धिक देव हुआ।

भगवान् महावीर स्वामी के विशिष्ट एवं अलौकिक रक्त का आस्वाद पाकर चण्डकौशिक ने विचार किया और ज्ञान प्राप्त करके अपना जन्म सुधार लिया। यह चण्डकौशिक की पारिणामिकी बुद्धि थी।

२० गेंडे का भव सुधार

(खड्गी)

किसी नगर में एक श्रावक था। वह श्रावक के व्रतों का पालन करते हुए आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करता था। अल्प आयुष्य के कारण युवावस्था में ही उसकी मृत्यु हो गई। व्रत विराधना तथा अशुभ परिणति के कारण मृत्यु पाकर वह 'गेंडा' नामक एक जंगली हिंसक जानवर हो गया। वह बहुत पापी एवं क्रूर था और उस वन में आनेवाले मनुष्य को खा जाता था।

एक समय उस वन में होकर कुछ साधु जा रहे थे। उन्हें देख कर उसने उन पर आक्रमण करना चाहा, किंतु वह अपने

प्रयत्न में सफल नहीं हो सका। मुनियों के शांत मुख को देख कर उसका क्रोध भी शांत हो गया। इस पर विचार करते करते उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने अपने पूर्व भव को जाना। इस भव को सुधारने के लिये उसने उसी समय अनशन कर लिया। आयुष्य पूरा करके वह देवलोक में गया।

उसने अपने वर्त्तमान भव को सुधारने के लिये अनशन कर लिया। यह उस गेंडे की पारिणामिकी वुद्धि थी।

२१ विशाला नगरी का विनाश

(स्तूप)

चेड़ा कुणिक संग्राम में, इन्द्रों की सहायता से, कोणिक की विजय होने पर महाराजा चेटक विशाला नगरी में आ गये और नगरी के द्वार वन्द करवा दिये। कोणिक ने नगरी के कोट को गिराने की वहुत कोशिश की, किंतु वह उसे नहीं गिरा सका। तव इस तरह की आकाश वाणी हुई;–

समणे जदि फुलवालुए, मागधियं गणियं गमिस्सए।
राया य असोगचंदे य, वेसालिं णगरीं गहिस्सए॥

अर्थात्–यदि कुलवालुक नामक साधु, चारित्र से पतित होकर मागधिका वेश्या से गमन करे, तो कोणिक राजा, कोट को गिरा कर विशाला नगरी को ले सकता है। यह सुन कर कोणिक राजा ने राजगृह से मागधिका वेश्या को वुला कर उसे सारी वात समझा दी। मागधिका ने कुलवालुक को कोणिक

के पास लाना स्वीकार किया।

किसी आचार्य के पास एक साधु था। आचार्य जब भी उसे कोई हित की बात कहते, तो वह अविनीत होने के कारण सदा उसका विपरीत अर्थ लेता और आचार्य पर क्रोध करता। एक समय आचार्य विहार करके जा रहे थे। वह शिष्य भी साथ में था। जब आचार्य एक छोटी पहाड़ी पर से उतर रहे थे, तो उन्हें मार देने के विचार से उस शिष्य ने पीछे से एक बड़ा पत्थर लुढ़का दिया। ज्यों ही पत्थर लुढ़क कर निकट आया, कि आचार्य सम्हल गये और अपने दोनों पैरों को फैला दिये, जिससे वह पत्थर उनके पैरों के बीच में होकर निकल गया। आचार्य को शिष्य की शत्रुता देख कर क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—"अरे नीच! तू इतना दुष्ट एवं गुरु-घातक बन गया? जा, तू किसी स्त्री के संयोग से पतित हो जायगा।" शिष्य ने विचार किया—"मैं गुरु के इन वचनों को झूठा सिद्ध करूँगा। मैं ऐसे निर्जन स्थान में जाकर रहूँगा, जहाँ स्त्रियों का आवागमन ही न हो। फिर उनके संयोग से पतित होने की कल्पना ही कैसे हो सकती है,"— ऐसा विचार कर वह एक नदी के किनारे जाकर ध्यान करने लगा। वर्षा ऋतु में नदी का प्रवाह बड़े वेग से आया, किंतु उसके तप के प्रभाव से नदी, दूसरी ओर बहने लगी। इसलिए उसका नाम 'कुलवालुक' हो गया। वह गोचरी के लिए नगर में नहीं जाता था, किंतु उधर से निकलने वाले मुसाफिरों से, महीने पन्द्रह दिन में आहार ले लिया करता था। इस प्रकार वह कठोर तप करता था।

मागधिका वेश्या कपट श्राविका बन कर साधुओं की सेवा भक्ति करने लगी। धीरे धीरे उसने कुलबालुक साधु का पता लगा लिया। वह उसी नदी के किनारे जाकर रहने लगी और कुलबालुक की सेवा भक्ति करने लगी। उसकी भक्ति और आग्रह के वश होकर एक दिन वह वेश्या के यहाँ गोचरी गया। उसने विरेचक औषधी मिश्रित लड्डू बहराये, जिससे उसे अतिसार हो गया। तब वह वेश्या उसके शरीर की सेवा शुश्रूषा करने लगी। उसके स्पर्श आदि से मुनि का चित्त विचलित हो गया। वह उसमें आसक्त हो गया। उसे पूर्ण रूप से अपने वश में करके वह वेश्या उसे कोणिक के पास ले आई।

कोणिक ने कुलबालुक से पूछा–"विशाला नगरी का कोट किस प्रकार गिराया जा सकता है?" कुलबालुक ने कहा–"मैं विशाला नगरी में जाता हूँ। जब मैं सफेद वस्त्र द्वारा संकेत करूँ, तब आप अपनी सेना लेकर कुछ पीछे हटते जाना।" इस प्रकार कोणिक को समझा कर वह नैमित्तिक का रूप बना कर विशाला नगरी में चला आया।

उसे भविष्यवेत्ता समझ कर विशाला के लोग उससे पूछने लगे–"कोणिक हमारी नगरी के चारों ओर घेरा डाल कर पड़ा हुआ है। यह उपद्रव कब दूर होगा?" उसने कहा–"तुम्हारी नगरी के बीच में श्रीमुनिसुव्रत स्वामी का 'पादुका चिन्ह' है। उसके कारण यह उपद्रव बना हुआ है। यदि उसे उखाड़ कर फेंक दिया जाय, तो यह उपद्रव तत्काल दूर हो सकता है।

नैमित्तिक के वचन पर विश्वास करके लोग उस स्तूप को

खोदने लगे। उसी समय उसने सफेद वस्त्र को ऊँचा करके कोणिक को इशारा किया, जिससे वह अपनी सेना को लेकर पीछे हटने लगा। उसे पीछे हटते देख कर लोगों को नैमित्तिक के वचन पर पूरा विश्वास हो गया। उन्होंने स्तूप को उखाड़ कर फेंक दिया। अब नगरी प्रभाव रहित हो गई। कुलवालुक के संकेत के अनुसार कोणिक ने आकर नगरी पर आक्रमण कर दिया। उसके कोट को गिरा दिया और नगरी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

श्रीमुनिसुव्रत स्वामी के स्तूप को उखड़वा देने से विशाला नगरी का कोट गिराया जा सकता है'—ऐसा जानना कुलवालुक की पारिणामिकी बुद्धि थी। इसी प्रकार कुलवालुक साधु को अपने वश में करने की मागधिका वेश्या की पारिणामिकी बुद्धि थी।

——:‡✻✕✻‡:——

यहां मतिज्ञान की कथाएँ—औपत्तिकी बुद्धि की २७ (इनमें रोहक की प्रथम कथा के अन्तर्गत १४ उपकथाएँ भी सम्मिलित है। इस प्रकार औत्पत्तिकी बुद्धि की कुल ४१ कथाएँ हुईं) वैनयिकी बुद्धि की १५, कार्मिकी बुद्धि की १२ और पारिणामिकी बुद्धि की २१, इस प्रकार चारों प्रकार की बुद्धि को सरलता से समझानेवाली कुल ७५ कथाएँ (उपकथा सहित ८९) हुईं।

अब सूत्रकार श्रुतनिश्रित मतिज्ञान का वर्णन करते हैं।

से किं तं सूयनिस्सियं ? सुयनिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं तं जहा–उग्गहे १ ईहा २ अवाओ ३ धारणा ४।

प्रश्न–वह श्रुतनिश्रित मतिज्ञान क्या है ?

उत्तर–श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के चार भेद हैं। यथा–१ अवग्रह २ ईहा ३ अवाय और ४ धारणा।

१ अवग्रह–ग्रहण करना, सम्बन्ध होना और जानना। २ ईहा–विचारणा करना। ३ अवाय (अपाय) व्यवसाय करना, निश्चय करना, निर्णय करना। ४ धारणा-ज्ञान में धारण करना।

विवेचन–जिस मतिज्ञान का श्रुतज्ञान से सम्बन्ध हो, जिस मतिज्ञान में सीखा हुआ श्रुतज्ञान काम आता हो, जिस मतिज्ञान पर पहले सीखे हुए श्रुतज्ञान का प्रभाव हो, उस मतिज्ञान को–'श्रुतनिश्रित मतिज्ञान' कहते हैं, इसका दूसरा नाम 'मति' है।

से किं तं उग्गहे ? उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–अत्थुग्गहे य वंजणुग्गहे य ॥२७॥

प्रश्न–वह अवग्रह क्या है ?

उत्तर–अवग्रह के दो भेद इस प्रकार हैं–१ अर्थ अवग्रह और २ व्यञ्जन अवग्रह।

विवेचन-श्रोत्र आदि उपकरण द्रव्यों के साथ शब्दादि पुद्गलों का सम्बन्ध होना और श्रोत्रादि भाव इन्द्रियों के द्वारा शब्दादि पुद्गलों को अव्यक्त रूप में जानना–'अवग्रह' कहलाता है।

खोदने लगे। उसी समय उसने सफेद वस्त्र को ऊँचा करके कोणिक को इशारा किया, जिससे वह अपनी सेना को लेकर पीछे हटने लगा। उसे पीछे हटते देख कर लोगों को नैमित्तिक के वचन पर पूरा विश्वास हो गया। उन्होंने स्तूप को उखाड़ कर फेंक दिया। अब नगरी प्रभाव रहित हो गई। कुलबालुक के संकेत के अनुसार कोणिक ने आकर नगरी पर आक्रमण कर दिया। उसके कोट को गिरा दिया और नगरी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

श्रीमुनिसुव्रत स्वामी के स्तूप को उखड़वा देने से विशाला नगरी का कोट गिराया जा सकता है'—ऐसा जानना कुलबालुक की पारिणामिकी बुद्धि थी। इसी प्रकार कुलबालुक साधु को अपने वश में करने की मागधिका वेश्या की पारिणामिकी बुद्धि थी।

——:‡※×※‡:——

यहां मतिज्ञान की कथाएँ—औपत्तिकी बुद्धि की २७, (इनमें रोहक की प्रथम कथा के अन्तर्गत १४ उपकथाएँ भी सम्मिलित है। इस प्रकार औत्पत्तिकी बुद्धि की कुल ४१ कथाएँ हुईं) वैनयिकी बुद्धि की १५, कार्मिकी बुद्धि की १२ और पारिणामिकी बुद्धि की २१, इस प्रकार चारों प्रकार की बुद्धि को सरलता से समझानेवाली कुल ७५ कथाएँ (उपकथा सहित ८९) हुईं।

अब सूत्रकार श्रुतनिश्रित मतिज्ञान का वर्णन करते हैं।

से किं तं सूयनिस्सियं ? सुयनिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं तं जहा—उग्गहे १ ईहा २ अवाओ ३ धारणा ४।

प्रश्न—वह श्रुतनिश्रित मतिज्ञान क्या है ?

उत्तर—श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के चार भेद हैं। यथा—१ अवग्रह २ ईहा ३ अवाय और ४ धारणा।

१ अवग्रह—ग्रहण करना, सम्बन्ध होना और जानना। २ ईहा—विचारणा करना। ३ अवाय (अपाय) व्यवसाय करना, निश्चय करना, निर्णय करना। ४ धारणा-ज्ञान में धारण करना।

विवेचन—जिस मतिज्ञान का श्रुतज्ञान से सम्बन्ध हो, जिस मतिज्ञान में सीखा हुआ श्रुतज्ञान काम आता हो, जिस मति-ज्ञान पर पहले सीखे हुए श्रुतज्ञान का प्रभाव हो, उस मतिज्ञान को—'श्रुतनिश्रित मतिज्ञान' कहते हैं, इसका दूसरा नाम 'मति' है।

से किं तं उग्गहे ? उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अत्थुग्गहे य वंजणुग्गहे य ॥२७॥

प्रश्न—वह अवग्रह क्या है ?

उत्तर—अवग्रह के दो भेद इस प्रकार हैं—१ अर्थ अवग्रह और २ व्यञ्जन अवग्रह।

विवेचन-श्रोत्र आदि उपकरण द्रव्यों के साथ शब्दादि पुद्गलों का सम्बन्ध होना और श्रोत्रादि भाव इन्द्रियों के द्वारा शब्दादि पुद्गलों को अव्यक्त रूप में जानना—'अवग्रह' कहलाता है।

से किं तं वंजणुग्गहे ? वंजणुग्गहे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–सोइंदियवंजणुग्गहे, घाणिंदियवंजणुग्गहे, जिब्भिदियवंजणुग्गहे, फासिंदियवंजणुग्गहे। से त्तं वंजणुग्गहे।२८

प्रश्न–वह व्यञ्जन अवग्रह क्या है ?

उत्तर–व्यञ्जनावग्रह के चार भेद हैं–१ श्रोत्रेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह २ घ्राणेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह ३ जिव्हेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह तथा ४ स्पर्शनेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह। यह व्यञ्जनावग्रह का प्ररूपण हुआ।

विवेचन–श्रोत्र आदि उपकरण द्रव्य इन्द्रियों के साथ शब्दादि पुदगलों का व्यंजन–सम्बन्ध–संयोग होना–'व्यंजन अवग्रह' कहाता है।

१ श्रोत्र इन्द्रिय व्यञ्जन अवग्रह–श्रोत्र उपकरण द्रव्य इंद्रिय के साथ शब्द पुद्गलों का सम्बन्ध होना। २ घ्राण इंद्रिय व्यञ्जन अवग्रह–घ्राण उपकरण द्रव्य इन्द्रिय के साथ, गंध पुद्गलों का सम्बन्ध होना। ३ जिव्हा इन्द्रिय व्यञ्जन अवग्रह–जिव्हा उपकरण द्रव्य इन्द्रिय के साथ, रस पुद्गलों का सम्बन्ध होना। ४ स्पर्शन इन्द्रिय व्यंजन अवग्रह–स्पर्शन इन्द्रिय के साथ, स्पर्श पुद्गलों का सम्बन्ध होना।

विशेष–१ श्रोत्र २ घ्राण ३ जिव्हा और ४ स्पर्शन, ये चार भाव इन्द्रियाँ ही, शब्दादि पदार्थों को श्रोत्र आदि उपकरण द्रव्य इन्द्रिय के साथ सम्बन्ध होने पर जानती हैं। अतएव इन चार इन्द्रियों का ही व्यंजन अवग्रह कहा है।

भाव चक्षुइन्द्रिय और भाव मन, रूप आदि को उनका

चक्षु उपकरण द्रव्य इंद्रिय और द्रव्य मन के साथ सम्बन्ध हुए बिना ही जानते हैं, अतएव चक्षु इंद्रिय का और मन का व्यंजन अवग्रह नहीं कहा है।

से किं तं अत्थुग्गहे ? अत्थुग्गहे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-सोइंदियअत्थुग्गहे, चक्खिदियअत्थुग्गहे, घाणिंदियअत्थुग्गहे, जिब्भिंदियअत्थुग्गहे, फासिंदियअत्थुग्गहे, नोइंदियअत्थुग्गहे ।।२६।।

प्रश्न-वह अर्थ अवग्रह क्या है ?

उत्तर-अर्थावग्रह के छह भेद हैं-१ श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह २ चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह ३ घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह ४ जिव्हेन्द्रिय अर्थावग्रह ५ स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह तथा ६ अनिन्द्रिय अर्थावग्रह।

विवेचन-श्रोत्र आदि उपकरण द्रव्य इन्द्रियों के निमित्त से श्रोत्र आदि भाव इंद्रियों के द्वारा शब्दादि रूपी अरूपी पदार्थों को अव्यक्त रूप में जानना, उसे-'अर्थ अवग्रह' कहते हैं।

१ श्रोत्र इंद्रिय अर्थ अवग्रह-श्रोत्र उपकरण द्रव्य इन्द्रिय के निमित्त से, श्रोत्र भावेन्द्रिय के द्वारा पुद्गलों के शब्द को अव्यक्त रूप से जानना। २ चक्षु इन्द्रिय अर्थ अवग्रह-चक्षु उपकरण द्रव्य इन्द्रिय के निमित्त से, चक्षु भाव इन्द्रिय के द्वारा पुद्गलों के रूप को अव्यक्त रूप से जानना। ३ घ्राण इन्द्रिय अर्थ अवग्रह-घ्राण उपकरण द्रव्य इन्द्रिय के निमित्त से, घ्राण भाव इन्द्रिय के द्वारा पुद्गलों के गन्ध को अव्यक्त रूप में जानना। ४ जिव्हा इन्द्रिय अर्थ अवग्रह-जिव्हा उपकरण द्रव्य इन्द्रिय के निमित्त से, जिव्हा भाव इन्द्रिय के द्वारा पुद्गलों के

रस को अव्यक्त रूप में जानना । ५ स्पर्शन इन्द्रिय अर्थ अवग्रह–स्पर्शन उपकरण द्रव्य इन्द्रिय के निमित्त से, स्पर्शन भाव इंद्रिय के द्वारा पुद्‌गलों के स्पर्श को जानना । ६ अनिन्द्रिय अर्थ अवग्रह–द्रव्य मन के निमित्त से भाव मन के द्वारा रूपी अरूपी पदार्थों को अव्यक्त रूप में जानना ।

विशेष–इस पदार्थ का नाम क्या है, इस पदार्थ की जाति क्या है, इस पदार्थ का गुण क्या है, इत्यादि ज्ञान जिसमें व्यक्त न हो, ऐसी मन्दतम ज्ञान मात्रा को 'अव्यक्त ज्ञान' कहते हैं । अर्थ अवग्रह में मात्र ऐसा अव्यक्त ज्ञान ही होता है । क्योंकि अर्थ अवग्रह का काल एक समय ही है और एक समय में नाम, जाति, गुण, क्रिया आदि का व्यक्त ज्ञान छद्मस्थों को संभव नहीं हो सकता ।

तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा–ओगेण्हणया, उवधारणया, सवणया, अवलंबणया, मेहा । से त्तं उग्गहे ॥३०॥

अर्थ–उसके एक अर्थ वाले पर भिन्न भिन्न घोष तथा भिन्न भिन्न व्यञ्जन वाले ये पांच नाम हैं–१ अवग्रहण २ उपधारण ३ श्रवण ४ आलंबन तथा ५ मेधा । यह अवग्रह का प्ररूपण हुआ ।

विवेचन–एकार्थक नाम–उस अवग्रह के ये पाँच एकार्थिक नाम हैं । जो नाना घोष वाले और नाना व्यञ्जन वाले हैं–जिनकी मात्राएँ और अक्षर एक समान नहीं हैं ।

विशेष–ये पांचों नाम एकार्थिक हैं ।' यह कथन सामान्य अपेक्षा से समझना चाहिए । विशेष अपेक्षा से ये भिन्न अवग्रह

के नाम हैं।

अवग्रह के दो भेद हैं–१ व्यञ्जन अवग्रह और २ अर्थ अव-ग्रह। ये दोनों पहले बता दिये हैं। अवग्रह का एक तीसरा भेद है–३ व्यावहारिक या औपचारिक अर्थ अवग्रह।

एक बार अर्थ अवग्रह के पश्चात् ईहा और अवाय हो जाते हैं, उसके पश्चात् भी यदि नई ईहा जगे, तो उस नई ईहा की अपेक्षा पिछले अवाय में अवग्रह का उपचार करके उसे व्यवहार में अवग्रह मानते हैं। 'ईहा के पहले जो होता है, वह अवग्रह होता है।' इस अपेक्षा नई ईहा के पूर्ववर्ती अवाय में अवग्रह का उपचार किया जाता है।

यदि उस दूसरी ईहा के पश्चात् अवाय होकर तीसरी ईहा और भी जगे, तो वह दूसरा अवाय भी तीसरी ईहा की अपेक्षा उपचार करके अवग्रह माना जाता है। इस प्रकार जिस अवाय के पश्चात् नई ईहा जगे, उसे उपचार से व्यवहार में अवग्रह मानते हैं। जिस अवाय के पश्चात् नई ईहा नहीं जगती, उसे अवाय ही मानते हैं।

जैसे किसी शब्द पुद्गल का श्रवण होने पर ईहा और अवाय होकर जब यह निर्णय हो जाय कि 'मैंने जिसे जाना है, वह शब्द ही है, रूपादि नहीं।' यदि उसके पश्चात् यह जिज्ञासा उत्पन्न हो कि 'वह शब्द किसका है? शंख का, या धनुष्य का?' तो इस जिज्ञासा की अपेक्षा पूर्व का वह निर्णय उपचार से व्यवहार में अवग्रह माना जाता है। यदि इसका भी निर्णय हो जाय कि 'यह शंख का ही शब्द है, धनुष्य का नहीं।' और

फिर यह जिज्ञासा उत्पन्न हो कि 'यह शंख का शब्द, नवयुवक ने बजाया है, या वृद्ध ने' ? तो इस जिज्ञासा की अपेक्षा पूर्व का दूसरा निर्णय भी उपचार से व्यवहार में अवग्रह माना जाता है। अस्तु !

इन पाँच नामों में से पहले के दो नाम व्यञ्जन अवग्रह के हैं, तीसरा नाम अर्थ अवग्रह का और पिछले दो नाम व्यावहारिक अर्थ अवग्रह के हैं। वे इस प्रकार हैं–

१ अवग्रहणता–व्यञ्जन अवग्रह के पहले समय में आये हुए शब्दादि पुद्गलों का उपकरण द्रव्य इंद्रिय के द्वारा ग्रहण करना, 'अवग्रहणता' है। २ उपधारणता–व्यञ्जन अवग्रह के दूसरे तीसरे आदि समयों में आते हुए नये नये शब्दादि पुद्गलों का, उपकरण द्रव्य इंद्रिय द्वारा ग्रहण करना और पुराने पुराने ग्रहण किये हुए पुद्गलों का धारण करना 'उपधारणता' है। ३ श्रवणता–अर्थ अवग्रह में भाव इंद्रिय के द्वारा पदार्थ को अव्यक्त रूप में जानना 'श्रवणता' है। ४ अवलम्बनता–नई दूसरी ईहा के लिए प्रथम अवाय का अवलम्बन रूप होना 'अवलम्बनता' है। ५ मेधा–दूसरे तीसरे आदि अवायों में पहले अवाय से अधिक बुद्धि का होना 'मेधा' है।

सूचना–आगे अर्थ अवग्रह के लिए जो भी दृष्टान्त दिये जायेंगे, वे नैश्चयिक अर्थ अवग्रह के न होकर व्यावहारिक अर्थ अवग्रह के होंगे। इसका कारण यह है कि दृष्टान्त वही दिया जाता है–जो कि अनुभव गम्य हो और शब्द द्वारा प्रकट किया जा सकता हो। नैश्चयिक अर्थ अवग्रह एक समय का होने से

उसका ज्ञान इतना अव्यक्त है कि 'छद्मस्थ उसका अनुभव नहीं कर सकता और केवली उसे जानते हुए भी प्रकट नहीं कर सकते। व्यावहारिक अर्थ अवग्रह ही ऐसा है, जो छद्मस्थ के लिए अनुभव गम्य है, और वाणी द्वारा प्रकट किया जा सकता है। इसीलिए उसका नाम व्यावहारिक रखा गया है।

ईहा आदि के जो दृष्टान्त होंगे, वे भी व्यावहारिक अर्थ अवग्रह के पीछे होनेवाले ही होंगे। यह अवग्रह है।

से किं तं ईहा ? ईहा छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—सोइंदियईहा, चक्खिदियईहा, घाणिंदियईहा, जिब्भिंदियईहा, फासिंदियईहा, नोइंदियईहा।

प्रश्न—वह ईहा क्या है ?

उत्तर—ईहा के छह भेद हैं—१ श्रोतेन्द्रिय ईहा २ चक्षुरिन्द्रिय ईहा ३ घ्राणेन्द्रिय ईहा ४ जिव्हेन्द्रिय ईहा ५ स्पर्शनेन्द्रिय ईहा तथा ६ अनिन्द्रिय ईहा।

विवेचन—अवग्रह के द्वारा अव्यक्त रूप में जाने हुए पदार्थ की यथार्थ सम्यग् विचारणा करना—'ईहा' है। जैसे अंधकार में सर्प के सदृश रस्सी का स्पर्श होने पर—'यह रस्सी होनी चाहिए सर्प नहीं'—ऐसी यथार्थ सम्यग् विचारणा होना।

वहाँ 'यह सर्प होना चाहिए, रस्सी नहीं'—ऐसा विचार होना अयथार्थ भ्रान्त विचारणा है।

१ श्रोत्र इन्द्रिय ईहा—भाव श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा शब्द की विचारणा होना, जैसे शंख का शब्द सुनाई देने पर 'यह शंख का

शब्द होना चाहिए, धनुष्य का नहीं,' ऐसी यथार्थ विचारणा होना । २ चक्षु इंद्रिय ईहा–भाव चक्षु इंद्रिय के द्वारा रूप की विचारणा होना, जैसे ठूँठ के दिखाई देने पर 'ठूँठ होना चाहिए, पुरुष नहीं'–ऐसी यथार्थ विचारणा होना । ३ घ्राण इंद्रिय ईहा–भाव घ्राण इंद्रिय के द्वारा गन्ध की विचारणा होना, जैसे 'कस्तूरी की गन्ध आने पर यह कस्तूरी की ही गन्ध है, केशर की नहीं'–ऐसी यथार्थ विचारणा होना । ४ जिव्हा इंद्रिय ईहा–भाव जिव्हा इंद्रिय के द्वारा रसकी विचारणा होना, जैसे ईख का रस चखने पर–'यह ईख का ही रस होना चाहिए, गुड़ का पानी नही ।' ऐसी यथार्थ विचारणा होना । ५ स्पर्शन इंद्रिय ईहा–भाव स्पर्शन इंद्रिय के द्वारा स्पर्श की विचारणा होना, जैसे कोमल रस्सी का स्पर्श होने पर 'यह रस्सी का ही स्पर्श होना चाहिए, सर्प का नहीं',–ऐसा यथार्थ विचार होना । ६ अनिन्द्रिय ईहा--भाव मन के द्वारा रूपी अरूपी पदार्थ की विचारणा होना जैसे--उगते हुए सूर्य का स्वप्न देखने पर 'यह उदय होते हुए सूर्य का स्वप्न होना चाहिए, अस्त होते हुए सूर्य का नहीं–' ऐसी यथार्थ विचारणा होना ।

स्पष्टीकरण–जो मन रहित असंज्ञी जीव हैं, वे ही मात्र उस उस श्रोत्र आदि भाव इंद्रियों के द्वारा शब्द आदि की ईहा आदि करते हैं, परंतु जो मन सहित संज्ञी जीव हैं, वे तो उस उस श्रोत्र आदि भाव इंद्रियों के साथ साथ भावमन से भी शब्द आदि की ईहा आदि करते हैं ।

तीसेणं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच

नामधिज्जा भवंति, तं जहा–आभोगणया, मग्गणया गवेसणया, चिंता, वीमंसा, से त्तं ईहा ॥३१॥

अर्थ–ईहा के पाँच नाम एकार्थिक हैं, जो नानाघोष और नानाव्यञ्जन वाले हैं। वे इस प्रकार हैं– १ आभोगनता २ मार्गणता ३ गवेषणता ४ चिन्ता और ५ विमर्श। यह ईहा की प्ररूपणा हुई।

विवेचन–विशेष अपेक्षा से ईहा की विभिन्न पाँच अवस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं–१ आभोगनता–अर्थावग्रह से पदार्थ को अव्यक्त रूप में ग्रहण करने के पश्चात् निरन्तर ग्रहीत पदार्थ का प्राथमिक विचार करना–'आभोगनता' है। जैसे किसी ने द्रव्य से पुरुष सदृश ठूंठ को देखा, क्षेत्र से–जहाँ मनुष्यों का आवागमन अल्प होता था, ऐसे निर्जन वन में दूर से देखा। काल से–सूर्य अस्त के पश्चात् जब प्रकाश घट रहा था और अंधकार बढ़ रहा था, तब देखा। उस समय उसका उस देखे हुए ठूंठ के प्रति यह प्राथमिक विचार होना कि 'क्या यह ठूंठ है?'-आभोगनता है।

२ मार्गणता–अवग्रह से जाने हुए पदार्थ में पाये जानेवाले और न पाये जानेवाले धर्मों स्वभावों का विचार करना–'मार्गणता' है। जैसे उक्त ठूंठ के विषय में यह विचार होना कि 'जो ठूंठ होता है, उसमें निश्चलता, २ लताओं का चढ़ना, ३ कौओं का बैठना–मंडराना आदि धर्म पाये जाते हैं और जो पुरुष होता है, उसमें १ चलमानता, २ अंगोपांगता, ३ सिर खुजलाना आदि धर्म पाये जाते हैं। ठूंठ में पुरुष के धर्म नहीं पाये

जाते और पुरुष में ठूँठ के धर्म नहीं पाये जाते। मुझे जो यह दिखाई दे रहा है, उसमें ठूँठ में पाये जानेवाले धर्म है, या ठूँठ में न पाये जानेवाले, किंतु पुरुष में पाये जानेवाले धर्म हैं ? ऐसा विचार होना मार्गणता है।

३ गवेषणता—अवग्रह से जाने हुए पदार्थ में, न पाये जाने वाले धर्मों को त्यागते हुए उसमें पाये जानेवाले धर्मों का विचार करना—'गवेषणता' है। जैसे उक्त ठूँठ के प्रति यह विचार होना कि इस ठूँठ में पुरुष में पाये जानेवाले—सचल होना, हाथ पैर आदि अंगोपांग होना, सिर खुजलाना आदि कोई धर्म नहीं पाया जाता, परंतु ठूँठ में पाये जानेवाले—अचल होना, लताओं का चढ़ना, कौओं का मंडराना आदि धर्म पाये जाते हैं'—गवेषणता' है।

४ चिन्ता—अवग्रह से जाने हुए पदार्थ में पाये जानेवाले धर्मों का वारंवार चिन्तन करना—'चिन्ता' है। जैसे—उक्त ठूँठ के निर्णय के लिए आँखें मलकर, आँख को पुनः पुनः खोलते वन्द करते हुए, सिर को ऊंचा नीचा कर देखते हुए, बारबार इसका विचार करना कि 'मैं जो इसमें ठूँठ में पाये जानेवाले धर्म देख रहा हूँ, क्या वह यथार्थ है ? अथवा कहीं कुछ भ्रान्ति है ?' —चिन्ता है।

५ विमर्श—अवग्रह से जाने हुए पदार्थ में पाये जानेवाले धर्मों का स्पष्ट विचार करना—'विमर्श' है। जैसे ठूँठ के कुछ निकट जाकर, उसे देखकर, यह विचार करना कि इसमें स्पष्टतः ठूँठ में पाये जानेवाले धर्म दिखाई देते हैं'—विमर्श है। यह ईहा है।

से किं तं अवाए ? अवाए छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-सोइंदियअवाए, चक्खिदियअवाए, घाणिदियअवाए, जब्भिदियअवाए, फासिंदियअवाए, नोइंदियअवाए ।

प्रश्न-वह अवाय क्या है ?

उत्तर-अवाय के छह भेद हैं । १ श्रोत्रेन्द्रिय अवाय २ चक्षुरिन्द्रिय अवाय ३ घ्राणेन्द्रिय अवाय ४ जिव्हेन्द्रिय अवाय ५ स्पर्शनेन्द्रिय अवाय तथा ६ अनिन्द्रिय अवाय ।

विवेचन-ईहा के द्वारा यथार्थ सम्यग् विचार किये गये पदार्थ का सम्यग् निर्णय करना-अवाय है ।

१ श्रोत्रइंद्रिय अवाय-भाव श्रोत्र इंद्रिय के द्वारा शब्द का निर्णय करना । जैसे शंख का शब्द सुनाई देने पर-'यह शंख का ही शब्द है, धनुष्य का नहीं'-ऐसा निर्णय करना । २ चक्षुइंद्रिय अवाय-भाव चक्षुइंद्रिय के द्वारा रूप का निर्णय करना, जैसे ठूंठ दिखाई देने पर-'यह ठूंठ ही है, पुरुष नहीं'-ऐसा निर्णय करना । ३ घ्राण इंद्रिय अवाय-भाव घ्राण इंद्रिय के द्वारा गंध का निर्णय करना, जैसे कस्तूरी की गंध आने पर 'यह कस्तूरी की ही गंध है, केशर की नहीं,'-ऐसा निर्णय करना, ४ जिव्हा इंद्रिय अवाय-भाव जिव्हा इंद्रिय के द्वारा रस का निर्णय करना, जैसे ईख का रस चखने पर-'यह ईख का ही रस है, गुड़ का पानी नहीं'-ऐसा निर्णय करना । ५ स्पर्शन इंद्रिय अवाय-भाव स्पर्शन इंद्रिय के द्वारा स्पर्श का निर्णय करना, जैसे रस्सी का स्पर्श होने पर-'यह रस्सी का ही स्पर्श है, सर्प का नहीं,'-ऐसा निर्णय होना । ६ अनिन्द्रिय अवाय-भाव मन के द्वारा रूपी

अरूपी पदार्थ का निर्णय करना, जैसे उदय होते हुए सूर्य का स्वप्न देखकर–'यह उदय होते हुए सूर्य का ही स्वप्न है, अस्त होते हुए सूर्य का नहीं'–ऐसा निर्णय होना।

तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा–आउट्टणया, पच्चाउट्टणया, अवाए, बुद्धि, विण्णाणे, से त्तं अवाए ॥३२॥

अर्थ–अवाय के ये एकार्थक पाँच नाम हैं। जो विषम मात्रा और विषम अक्षरवाले हैं। वे इस प्रकार हैं–१ आवर्तनता २ प्रत्यावर्तनता ३ अवाय ४ बुद्धि और ५ विज्ञान। यह अवाय है।

विवेचन–विशेष अपेक्षा से ये अवाय की विभिन्न पाँच अवस्थाओं के नाम हैं। वे इस प्रकार–१ आवर्तनता–ईहा से अवाय की ओर मुड़ना आवर्तनता है। जैसे उक्त ठूँठ के प्रति यह निर्णय होना कि इसमें ठूँठ में पाये जानेवाले धर्म मिलते हैं, अतएव यह ठूँठ होना चाहिए। २ प्रत्यावर्तनता–ईहा से अवाय के सन्निकट पहुँच जाना, प्रत्यावर्तनता है। जैसे–उक्त ठूँठ के प्रति यह निर्णय होना कि 'यह ठूँठ ही होना चाहिए।' ३ अवाय–ईहा की सर्वथा निवृत्ति हो जाना अवाय है। जैसे–उक्त ठूँठ के प्रति यह निर्णय होना कि 'यह ठूँठ है'। ४ बुद्धि– निर्णय किये हुए पदार्थ को स्थिरता पूर्वक बारबार स्पष्ट रूप में जानना, बुद्धि है। जैसे–उक्त ठूँठ को यों जानना कि–'यह ठूँठ ही है'। ५ विज्ञान–निर्णय किये हुए पदार्थ का विशिष्ट ज्ञान होना, 'विज्ञान' है। जैसे–

उक्त ठूंठ के प्रति यह ज्ञान होना कि-यह अवश्यमेव ठूंठ ही है। यह अवाय ज्ञान है।

से किं तं धारणा ? धारणा छव्विहा पण्णत्ता तं जहा-सोइंदियधारणा, चक्खिंदियधारणा, घाणिंदिय-धारणा, जिब्भिंदियधारणा, नोइंदियधारणा।

प्रश्न-वह धारणा क्या है ?

उत्तर-धारणा के छह भेद हैं-१ श्रोत्रेन्द्रिय धारणा २ चक्षुरिन्द्रिय धारणा ३ घ्राणेन्द्रिय धारणा ४ जिव्हेन्द्रिय धारणा ५ स्पर्शनेन्द्रिय धारणा तथा ६ अनिन्द्रिय धारणा।

विवेचन-अवाय के द्वारा निर्णय किये गये पदार्थ ज्ञान को ज्ञान में धारण करना, 'धारणा' है।

१ श्रोत्रइंद्रिय धारणा-भाव श्रोत्र इंद्रिय के द्वारा शब्द ज्ञान धारण करना, जैसे सुने हुए शंख शब्द का ज्ञान धारण करना। २ चक्षु इंद्रिय धारणा-भाव चक्षु इंद्रिय के द्वारा रूप का ज्ञान धारण करना, जैसे देखे हुए ठूँठ के रूप का ज्ञान धारण करना। ३ घ्राण इंद्रिय धारणा-भाव घ्राण इंद्रिय के द्वारा गंध का ज्ञान धारण करना। जैसे सूंघी हुई कस्तूरी के गंध का ज्ञान धारण करना। ४ जिव्हा इंद्रिय धारणा-भाव जिव्हा इंद्रिय के द्वारा रस का ज्ञान धारण करना। जैसे चखे हुए ईख के रस का ज्ञान धारण करना। ५ स्पर्शन इंद्रिय धारणा-भाव स्पर्शन इंद्रिय के द्वारा स्पर्श का ज्ञान धारण करना। जैसे छुए हुए रस्सी के स्पर्श का ज्ञान धारण करना। ६ अनिन्द्रिय धारणा-भाव

मन के द्वारा, रूपी अरूपी पदार्थ का ज्ञान धारण करना, जैसे देखे हुए उदयमान सूर्य के स्वप्न का ज्ञान धारण करना।

तीसे णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा–धरणा, धारणा, ठवणा, पइट्ठा, कोट्ठे। से त्तं धारणा ॥३३॥

अर्थ–धारणा के विभिन्न घोष और विभिन्न व्यंजनवाले एकार्थक पाँच नाम हैं। यथा–१ धरणा २ धारणा ३ स्थापना ४ प्रतिष्ठा और ५ कोष्ठ।

विवेचन–जैसे अवग्रह के तीन भेद हैं, वैसे ही धारणा के भी तीन भेद हैं। वे इस प्रकार–१ अविच्युति–अवाय के द्वारा निर्णय के पश्चात्, मध्य में अन्तर रहित वह निर्णय ज्ञान कुछ काल तक उपयोग में रहना। २ वासना–उक्त अविच्युति के कारण पुनः कालान्तर में स्मृति हो सके, ऐसी आत्मा में ज्ञानलब्धि–ज्ञान संस्कार का बनना और रहना। ३ स्मृति–उस ज्ञानलब्धि से कालान्तर में उपयोग लगाकर पहले निर्णय किये गये पदार्थ के रूपादि का स्मरण करना।

धारणा के इन पाँच नामों में पहला नाम अविच्युति का है, दूसरा नाम स्मृति का है और पिछले तीन नाम वासना के हैं। वे इस प्रकार हैं–१ धरणा–जाने हुए पदार्थज्ञान को अन्तर्मुहूर्त तक दृढ़तापूर्वक उपयोग में धारण किये रहना–'धरणा' है। २ धारणा–जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट असंख्यात काल के बाद भी उस पदार्थ ज्ञान का स्मरण होना,–'धारणा' है। ३ स्थापना–उस पदार्थज्ञान को हृदय में जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट असंख्येय

काल तक स्थापन किये रखना–'स्थापना' है। ४ प्रतिष्ठा-उस पदार्थ ज्ञान को भेद प्रभेद पूर्वक हृदय में रखना–'प्रतिष्ठा' है। ५ कोष्ठ--जैसे कोठे में रक्खा हुआ धान कणशः पूर्णतः सुरक्षित रहता है, वैसे उक्त पदार्थ ज्ञान का शब्दशः पूर्णतया हृदय में रहना–'कोष्ठ' है।

विशेष--जो जातिस्मरण ज्ञान है, वह धारणा के तीसरे भेद--स्मृति के अन्तर्गत है।

जातिस्मरण ज्ञान का अर्थ है--'पूर्व जन्म में जो शब्द आदि रूपी अरूपी पदार्थों का ज्ञान किया था, उसका वर्त्तमान जन्म में स्मरण में आना।

पूर्व जन्म स्मरण रूप जातिस्मरण ज्ञान, केवल पर्याप्ति संज्ञी जीवों को ही होता है।

जाति स्मरण से पिछले संज्ञी भव ही स्मरण में आते हैं। यदि पिछले लगातार सैंकड़ों भव संज्ञी के किये हों, तो जाति-स्मरण से वे सैंकड़ों भव भी स्मरण में आ सकते हैं। यह धारणा है।

अब सूत्रकार अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा, इन चारों का काल--स्थिति, बताते हैं।

उग्गहे इक्कसमइए, अंतोमुहुत्तिया ईहा, अंतोमुहुत्तिए अवाए, धारणा संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ॥३४।

अर्थ–अवग्रह का काल 'एक समय' है। २ ईहा का काल 'अन्तर्मुहूर्त' है। ३ अवाय का काल भी 'अन्तर्मुहूर्त है। ४ (वासना

रूप) धारणा का काल एक भव आश्रित संख्यात वर्ष की आयुष्यवालों के लिए संख्यात काल और असंख्यात वर्ष की आयुष्यवालों के लिए असंख्यात काल है।

विशेष--व्यंजन अवग्रह का काल अन्तर्मुहूर्त है। व्यावहारिक अवग्रह का काल अन्तर्मुहूर्त्त है। अविच्युतिरूप धारणा का काल अन्तर्मुहूर्त है। स्मृति रूप धारणा का काल भी अन्तर्मुहूर्त है।

अब सूत्रकार इन चारों में सबसे पहले अवग्रह, उसके अनन्तर ईहा, उसके अनन्तर अवाय और उसके अनन्तर धारणा का क्रम बताते हैं। इनमें सबसे पहले श्रोत्र इंद्रिय विषयक अवग्रह आदि का पूर्वापर क्रम बताते हैं। उसमें भी सर्वप्रथम श्रोत्र इन्द्रिय व्यंजन अवग्रह को सदृष्टान्त स्पष्ट करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

एवं अट्ठावीसइविहस्स आभिणिबोहियणाणस्स वंजणुग्गहस्स परूवणं करिस्सामि पडिबोहगदिट्ठंतेण, मल्लगदिट्ठंतेण य।

अर्थ–इस प्रकार आभिनिबोधिक ज्ञान के अट्ठावीस भेद हैं। अब मैं इसके व्यंजन अवग्रह की दृष्टांतों से प्ररूपणा करूँगा। पहले प्रतिबोधक (जगाने वाले) के दृष्टांत से। दूसरे मल्लक (मिट्टी के शकोरे) के उदाहरण से।

विवेचन–व्यंजन अवग्रह के चार अर्थ, अवग्रह के छह, ईहा के छह, अवाय के छह और धारणा के छह यों (४+६+६+६+६=२८) इस प्रकार श्रुत-निश्रित मतिज्ञान के २८ भेद हैं।

विशेष–इनमें से एक एक भेद के बारह बारह प्रभेद हैं।

वे इस प्रकार–१ बहु–एक काल में एक साथ बहुत पदार्थ जानना। २ अबहु–एक काल में एक पदार्थ जानना। ३ बहुविध–एक काल में एक या अनेक पदार्थों को अनेक गुण पर्यायों से जानना। ४ अबहुविध–एक काल में एक या अनेक पदार्थों के एक गुण पर्याय को जानना। ५ क्षिप्र–एक काल में एक या अनेक पदार्थों के एक या अनेक गुण पर्यायों को शीघ्र जानना। ६ अक्षिप्र (चिर)–उन्हें विलम्ब से जानना। ७ अनिश्रित–उन्हें संकेत आदि की सहायता के बिना, स्वरूप से जानना। ८ निश्रित–उन्हें संकेत आदि की सहायता से जानना। ९ निश्चित–निश्चित रूप में जानना। १० अनिश्चित (संदिग्ध शंका युक्त) जानना। १० ध्रुव–सदा ही बहु आदि रूप से जानना। १२ अध्रुव–कभी बहु आदि रूप से और कभी अबहु आदि रूप से जानना।

उपर्युक्त २८ भेदों को इन बारह भेदों से गुणित करने पर (२८×१२=३३६) तीन सौ छत्तीस भेद होते हैं। इसमें यदि धारणा के अन्तर्गत आनेवाला जातिस्मरण, पृथक् करके सम्मिलित किया जाय ३३६+१=३३७ भेद होते हैं। इसमें अश्रुतनिश्रित चार बुद्धियाँ मिलाकर मतिज्ञान के ३३७+४=३४१ भेद होते हैं।

अब सूत्रकार श्रोत्र इंद्रिय व्यंज अवग्रह को स्पष्ट करने के लिए प्रतिज्ञा अनुसार पहला प्रतिबोधक दृष्टांत प्रस्तुत करते हैं।

से किं तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं ? पडिबोहगदिट्ठंतेणं से जहानामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं सुत्तं पडिबोहिज्जा,

अमुगा अमुगत्ति ?

प्रश्न—प्रतिबोधक दृष्टांत से व्यञ्जन अवग्रह की प्ररूपणा किस प्रकार है ?

उत्तर—कल्पना करो—किसी नामवाला कोई एक पुरुष है। वह किसी अन्य सोये हुए पुरुष को जगाना चाहता है। अतएव वह सोये हुए पुरुष को एक बार शब्द करता है—'अमुक !' पुनः शब्द करता है—'अमुक !'।

विवेचन—गहरी निद्रा में सोये हुए मनुष्य के कानों में, शब्द करनेवाले के पहले दूसरे जो शब्द पहुँचते हैं, उनकी वह धारणा नहीं कर पाता कि 'अमुक ने मुझे शब्द किया'। उनका अवाय—निर्णय भी नहीं कर पाता कि 'अमुक शब्द कर रहा है।' उनकी ईहा—विचारणा भी नहीं कर पाता कि—कौन शब्द कर रहा है ?' यहाँ तक कि वह उनका अर्थ अवग्रह भी नहीं कर पाता कि—'किस का शब्द है.' मात्र उन शब्दों का उसके कानों से सम्बन्ध मात्र होता है। अतएव सिद्ध हुआ कि सबसे पहले धारणा, अवाय, या ईहा नहीं होती, पर अवग्रह होता है, उसमें भी पहले व्यंजन अवग्रह होता है।

अब शिष्य, 'अर्थ अवग्रह कितने समय में होता है'—यह पूछता है—

तत्थ चोयगे पण्णवगं एवं वयासी—किं एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति जाव दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमा-

गच्छंति ? असंखिज्ज समयपविट्ठा पुग्गला गहणमा-
गच्छंति ?

अर्थ–इस प्रकार जब प्रज्ञापक आचार्य दृष्टांत दे रहे थे तब प्रश्नकार शिष्य यों बोला--

क्या एक समय में श्रोत्र उपकरण द्रव्य इंद्रिय में प्रविष्ट शब्द पुद्गल अर्थ अवग्रह से जाने जाते हैं, या दो समय में प्रविष्ट शब्द पुद्गल अर्थ अवग्रह से जाने जाते हैं, या यावत् दश समय में प्रविष्ट शब्द पुद्गल अर्थ अवग्रह से जाने जाते हैं, या संख्येय समय में प्रविष्ट शब्द पुद्गल अर्थ अवग्रह से जाने जाते हैं, या असंख्येय समय में प्रविष्ट शब्द पुद्गल अथ अवग्रह से जाने जाते हैं ?

एवं वयंतं चोयगं पण्णवए एवं वयासी–नो एग-समयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, नो दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, जाव नो दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, नो संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहण-मागच्छंति, असंखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमा-गच्छंति। से त्तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं।

अर्थ--इस प्रकार पूछते हुए शिष्य को प्रज्ञापक आचार्य ने यों उत्तर दिया–

एक समय में श्रोत्र उपकरण द्रव्य इंद्रिय में प्रविष्ट शब्द पुद्गल अर्थ अवग्रह से जाने नहीं जाते। दो समय में प्रविष्ट शब्द पुद्गल अर्थ अवग्रह से जाने नहीं जाते। यावत् दश समय में

प्रविष्ट शब्द पुद्गल अर्थ अवग्रह से जाने नहीं जाते । संख्येय समय में प्रविष्ट शब्द पुद्गल अर्थ अवग्रह से जाने नहीं जाते । परंतु असंख्येय समय में प्रविष्ट शब्द पुद्गल अर्थ अवग्रह से जाने जाते हैं।

विवेचन—जघन्य आवलिका के असंख्येय भाग में जितने असंख्य समय होते हैं, वहाँ तक उत्कृष्ट अनेक श्वासोच्छ्वास काल में जितने असंख्य समय होते हैं, वहाँ तक तो व्यञ्जन अवग्रह ही होता रहता है। उसके पश्चात् के अगले एक समय में नैश्चयिक अर्थ अवग्रह होता है, उसके असंख्य समय पश्चात् प्रथम व्यावहारिक अर्थ अवग्रह होता है।

यह प्रतिबोधक दृष्टांत से व्यञ्जन अवग्रह की प्ररूपणा है।

अब सूत्रकार 'व्यञ्जन अवग्रह में असंख्य समय क्यों लगते हैं और अर्थ अवग्रह एक समय मे क्यों होता है'—यह समझाने के लिये दूसरा दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं--

से किं तं मल्लगदिट्ठंतेणं ? मल्लगदिट्ठंतेणं से जहानामए केइ पुरिसे आवागसीसाओ मल्लगं गहाय तत्थेगं उदगबिंदुं पक्खेविज्जा से णट्ठे अण्णेऽवि पक्खित्ते सेऽवि णट्ठे, एवं पक्खिप्पमाणेसु पक्खिप्पमाणेसु होही से उदगबिंदू, जे णं तं मल्लगं रावेहिइत्ति, होही से उदगबिंदू, जे णं तंसि मल्लगंसि ठाहिति, होहि से उदगबिंदू जेणं तं मल्लगं भरिहिति, होही से उदगबिंदू, जे णं तं मल्लगं पवाहेहिति, एवामेव पक्खिप्पमाणेहिं पक्खिप्पमाणेहिं अणंतेहिं पुग्गलेहिं जाहे तं वंजणं पूरियं

होइ, ताहे 'हुं" ति करेइ, नो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ ?

प्रश्न-- उस मल्लक के दृष्टान्त से व्यञ्जन अवग्रह की प्ररूपणा किस प्रकार है ?

उत्तर–कल्पना करो कि किसी नामवाला कोई पुरुष है। वह कुंभकार के मिट्टी पकाने के स्थान–अवाड़े पर गया। वहाँ अवाड़े के ऊपर से उसने एक मल्लक–(शकोरा) उठाया। (अभी अभी पका हुआ होने के कारण वह अत्यन्त रुक्ष था।) उसमें उसने जल का एक बिन्दु डाला, पर वह शकोरे की रुक्षता से शोषित हो गया। दूसरा जल का बिन्दु डाला, तो वह भी शोषित हो गया। यों एक एक जल का बिन्दु डालते रहने पर कई जल-बिन्दुओं से शकोरे की रुक्षता पूरी नष्ट हो जाने पर एक ऐसा जल-बिन्दु होगा, जो शकोरे में स्वयं शोषित नहीं होगा, पर शकोरे को ही कुछ गीला कर देगा। उसके पश्चात् भी एक एक जल-बिंदु डालते रहने पर कई जल-बिंदुओं से शकोरा पूरा गीला हो जाने के बाद एक ऐसा जल बिंदु होगा–जो शकोरे के तल पर अस्तित्व धारण किये हुए ठहरेगा। उसके पश्चात् एक एक जल-बिंदु डालते रहने पर कई जलबिंदुओं से शकोरा भरते भरते एक ऐसा जलबिंदु होगा, जो शकोरे को पूरा भर देगा और उसके बाद का एक ही जल बिंदु ऐसा होगा– जो उस शकोरे को प्रवाहित कर देगा।

इसी प्रकार जो पूर्वोक्त सोया हुआ पुरुष है, उसे जगाने वाला पुरुष, जब अनेक बार शब्द करता है और वे शब्द उस

सुप्त पुरुष के कानों में प्रविष्ट होते होते, जब अनन्त शब्द पुद्-गलों के द्वारा श्रोत्र इंद्रिय का व्यंजन अवग्रह पूरा हो जाता है, तब उससे अगले समय में, उस सोये हुए पुरुष को एक समय का अर्थ अवग्रह होता है, जिसमें वह शब्द को अव्यक्त रूप में जानता है। उससे अगले असंख्य समय में उसे व्यावहारिक अर्थ अवग्रह होता है, उससे वह 'कोई शब्द करता है'–इस अव्यक्त रूप में शब्द को जानकर 'हुँ' कार करता है। परंतु वह व्यक्त रूप में नहीं जानता कि 'यह कौन शब्द कर रहा है ?'

शकोरे के समान श्रोत्र इंद्रिय है और जल के समान शब्द है। जैसे शकोरा एक जलबिंदु से भर नहीं पाता, उसके भरने में सैंकड़ों जलबिंदु चाहिए, वैसे ही श्रोत्र इंद्रिय शकोरे के समान होने से उसका व्यञ्जन अवग्रह एक समय प्रविष्ट शब्द पुद्गलों से पूरा नहीं हो जाता। उसे पूरा होने में असंख्य समय चाहिए।

जैसे शकोरे का बहना है, वैसे श्रोत्र इंद्रिय का अर्थ अवग्रह है। जिस प्रकार शकोरा भर जाने के पश्चात् उसके बहने में मात्र एक समय चाहिए, उसी प्रकार श्रोत्र इंद्रिय का व्यञ्जन अवग्रह पूरा होने के पश्चात् श्रोत्र इंद्रिय का अर्थ अवग्रह होने में एक समय लगता है।

अब सूत्रकार अवग्रह के पश्चात् क्रम से ईहा अवाय और धारणा का स्वरूप बतलाते हैं।

तओ ईहं पविसई, तओ जाणई अमुगे एस सद्दाइ, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं, असंखिज्जं

वा कालं ।

अर्थ–उस व्यावहारिक अर्थ अवग्रह के अनन्तर वह पुरुष ईहा में प्रवेश करता है कि 'मुझे कौन शब्द कर रहा है ?' उसके अनन्तर वह जानता है कि–'मुझे अमुक शब्द कर रहा है।' यह शब्द का अवाय रूप ज्ञान है। इस ज्ञान के साथ वह अवाय में प्रवेश करता है। उस अवाय के अनन्तर शब्द का निर्णय ज्ञान उसे अविच्युति रूप धारणा से आत्मगत हो जाता है। उसके पश्चात् वह वासना रूप धारणा में प्रवेश करता है, उससे वह पुरुष, उस शब्द के ज्ञान संस्कार को संख्यात काल या असंख्यात काल तक आत्मा में धारण किये रहता है।

विवेचन–किसी विषय का ग्रहण होने पर ही उसकी ईहा (विचारणा) संभव है। अतएव ईहा, अवग्रह के अनन्तर ही होती है। किसी विषय की ईहा के पश्चात् ही उसका अवाय (निर्णय) किया जा सकता है। अतएव अवाय, ईहा के अनन्तर ही होता है। किसी विषय के अवाय के पश्चात् ही उसकी भविष्य के लिए धारणा हो सकती है, अतएव धारणा अवाय के अनन्तर ही होती है।

अथवा यों कहे कि बिना अवाय के धारणा नहीं होती, अतएव धारणा से अवाय पहले होता है, बिना ईहा के अवाय नहीं होता, अतएव अवाय से ईहा पहले होती है। बिना अवग्रह के ईहा नहीं हो सकती, अतएव ईहा से अवग्रह पहले होता है।

इस प्रकार अवग्रहादि का यही पूर्वापर क्रम है, अन्यथा नहीं।

जैसे सोया हुआ पुरुष शब्द सुनता है, उसमें अवग्रह आदि सभी क्रम से घटित होते हैं, वैसे ही जागृत पुरुष शब्द सुनता है, उसमें भी अवग्रह आदि सभी क्रम से घटित होते हैं। यह बताने के लिए सूत्रकार अब 'जागृत पुरुष' का दृष्टांत देते हैं।

से जहाणामए केई पुरिसे अव्वत्तं सद्दं सुणिज्जा, तेणं सद्दोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस सद्दे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं।

अर्थ—कल्पना करो कि किसी नामवाला कोई (जागृत) पुरुष है, उसके श्रोत्र उपकरण द्रव्य इंद्रिय में शब्द पुद्गल प्रवेश करते हैं। तब वह पहले व्यंजन अवग्रह पूरा होने पर एक समय की स्थितिवाले नैश्चयिक अर्थ अवग्रह से अव्यक्त रूप में उस शब्द को सुनता है, फिर असंख्य समय की स्थितिवाला प्रथम व्यावहारिक अर्थ अवग्रह होने पर—'यह शब्द है', इस प्रकार शब्द को जानता है। परंतु उस समय वह यह नहीं जानता है कि—'यह कौन शब्द कर रहा है।' उसके पश्चात् वह पुरुष ईहा में प्रवेश करता है कि 'मुझे कौन शब्द कर रहा है?' उसके अनन्तर वह जानता है कि—'अमुक यह शब्द कर रहा है—' यह शब्द का अवायरूप ज्ञान है। इस ज्ञान के साथ वह अवाय में प्रवेश करता है। उस अवाय के अनन्तर शब्द का निर्णयिक ज्ञान उसे अविच्युति रूप धारणा से आत्मगत हो जाता

है । उसके पश्चात् वह वासना रूप धारणा में प्रवेश करता है। उससे वह शब्द के ज्ञान संस्कार को संख्यात काल,या असंख्यात काल तक आत्मा में धारण किये रहता है ।

विवेचन–कई बार जागृत दशा में अवग्रह आदि के उपर्युक्त क्रम की अनुभूति होती है, परंतु कई बार अनुभूति नहीं भी होती । तब यह भ्रांति हो जाती है कि–'इस बार अवग्रहादि सब हुए ही नहीं, सीधा अवाय ही हुआ, या अवग्रह आदि सभी एक साथ घटित हो गये । परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं होता, जब अनुभूति नहीं होती, तब भी अवग्रह आदि सभी उपर्युक्त क्रम से ही घटित होते हैं । फिर भी जो अनुभूति नहीं होती, उसका कारण यह है कि–जागृत दशा में अवग्रह आदि शीघ्र पूरे हो जाते हैं । जैसे–एक पर एक जमाये हुए सौ कमल के अत्यन्त कोमल पत्ते, तीक्ष्ण धारवाले शस्त्र से बलपूर्वक शीघ्रता से छेदने पर यह भ्रांति हो जाती है कि सब पत्र एक साथ छिद गये । परंतु वास्तविकता यह होती है कि प्रत्येक पत्र क्रम से ही छिदता है । अतएव जब क्रम की अनुभूति नहीं हो, तब भी अवग्रह आदि सभी होते हैं और इसी क्रम से होते हैं, यह जानना चाहिए ।

अब सूत्रकार 'चक्षु इंद्रिय विषयक अवग्रह आदि भी इसी क्रम से होते हैं,'–यह बताते हैं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रूवं पासिज्जा तेणं रूवत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस रूवत्ति; तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस रूवे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ,

तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं ।

भावार्थ-कल्पना करो कि-किसी नामवाला कोई पुरुष है। उसकी आँखों के सामने कोई रूप आता है। तब वह पहले एक समय की स्थितिवाले नैश्चयिक अर्थ अवग्रह से उस रूप को अव्यक्त रूप में देखता है। फिर असंख्य समय की स्थितिवाला व्यावहारिक प्रथम अर्थ अवग्रह होने पर-'यह रूप है।' इस प्रकार रूप को जानता है। परंतु उस समय वह यह नहीं जानता कि-'यह किस का रूप है।' उसके पश्चात् वह पुरुष ईहा में प्रवेश करता है। उसके अनन्तर वह जानता है कि 'यह अमुक रूप है।' यह रूप का अवाय रूप ज्ञान है। इस ज्ञान के साथ वह अवाय में प्रवेश करता है। उस अवाय के अनन्तर वह रूप का निर्णय ज्ञान, उसे अविच्युति रूप धारणा से आत्मगत हो जाता है। उसके पश्चात् वह वासना रूप धारणा में प्रवेश करता है। उससे वह उस रूप के ज्ञान संस्कार को संख्यात काल या असंख्यात काल तक आत्मा में धारण किये रहता है।

अब सूत्रकार 'घ्राण इन्द्रिय विषयक अवग्रह आदि भी इसी क्रम से होते हैं'-यह बताते हैं।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं गंधं अग्घाइज्जा तेणं गंधत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस गंधेत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस गंधे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ।

भावार्थ—कल्पना करोकि—किसी नामवाला पुरुष है। उसकी घ्राण-उपकरण-द्रव्य-इन्द्रिय में कोई गन्ध पुद्गल प्रवेश करते हैं। तब वह पहले व्यञ्जन अवग्रह पूरा होने पर एक समय की स्थितिवाले नैश्चयिक अर्थ अवग्रह से, अव्यक्त रूप से उस गन्ध को सूंघता है। फिर असंख्य समय की स्थिति वाला व्यावहारिक अर्थ अवग्रह होने पर--'यह गन्ध है।' इस प्रकार गन्ध को जानता है। परन्तु उस समय वह यह नहीं जानता कि—'यह कैसी गन्ध है।' उसके पश्चात् वह पुरुष ईहा में प्रवेश करता है कि यह कस्तूरी की गंध है, या केशर की ? उसके अनन्तर वह जानता है कि—'यह अमुक गन्ध है।' यह गंध का अवाय ज्ञान है। इस ज्ञान के साथ वह अवाय में प्रवेश करता है। उस अवाय के अनन्तर वह गंध का निर्णय ज्ञान, उसे अविच्युति रूप धारणा से आत्मगत हो जाता है। उसके पश्चात् वह वासना रूप धारणा में प्रवेश करता है। उससे वह उस गंध के संस्कार ज्ञान को संख्यात काल तक या असंख्यात काल तक आत्मा में धारण किये रहता है।

अब सूत्रकार 'जिव्हा इंद्रिय विषयक अवग्रह आदि भी इसी क्रम से होते हैं'—यह बताते हैं।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रसं आसाइज्जा तेणं रसोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस रसेत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस रसे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं

पविसइ, तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं असंखिज्जं वा कालं।

भावार्थ—कल्पना करो कि—किसी नामवाला कोई पुरुष है। उसकी जिव्हा-उपकरण-द्रव्य-इंद्रिय में कोई रस पुद्‌गल प्रवेश करता है। तब वह पहला व्यञ्जन अवग्रह पूरा होने पर एक समय की स्थितिवाले नैश्चयिक अर्थ-अवग्रह से अव्यक्त रूप से उस रस को चखता है। फिर असंख्य समय की स्थितिवाला प्रथम व्यावहारिक अर्थ-अवग्रह होने पर—'यह रस है'—इस प्रकार रस को जानता है। परंतु उस समय वह यह नहीं जानता कि—'यह कैसा रस है।' उसके पश्चात् वह पुरुष ईहा में प्रवेश करता है। उसके अनन्तर वह जानता है कि—'यह अमुक रस है।' यह रस का अवाय ज्ञान है। इस ज्ञान के साथ वह अवाय में प्रवेश करता है। इस अवाय के अनन्तर वह रस का निर्णयज्ञान उसे अविच्युति रूप धारणा से आत्मगत हो जाता है। उसके पश्चात् वह वासना रूप धारणा में प्रवेश करता है, उससे वह उस रस के संस्कार ज्ञान को संख्यात काल तक, या असंख्यात काल तक आत्मा में धारण किये रहता है।

अब सूत्रकार 'स्पर्शन इन्द्रिय विषयक अवग्रह आदि भी इसी क्रम से होते हैं'—यह बताते हैं।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं फासं पडिसंवेइज्जा तेणं फासेत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस फास-ओत्ति, तओ ईहं पविसइ तओ जाणइ अमुगे एस फासे,

तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ।

भावार्थ–कल्पना करो कि–किसी नामवाला कोई पुरुष है । उसकी स्पर्शन उपकरण द्रव्य इन्द्रिय में कोई स्पर्श पुद्‌गल प्रवेश करता है । तब वह पहले व्यञ्जन अवग्रह पूरा होने पर, एक समय की स्थितिवाला, नैश्चयिक अर्थ अवग्रह से, अव्यक्त रूप से उस स्पर्श को छूता है । फिर असंख्य समय की स्थितिवाला व्यावहारिक अर्थ अवग्रह होने पर–'यह स्पर्श है'– इस प्रकार स्पर्श को जानता है । परन्तु उस समय वह यह नहीं जानता कि–'यह कौन स्पर्श है ।' उसके पश्चात् वह ईहा में प्रवेश करता है । उसके अनन्तर वह जानता है कि–'यह अमुक स्पर्श है ।' यह स्पर्श का अवाय ज्ञान है । इस ज्ञान के साथ वह अवाय में प्रवेश करता है । इस अवाय के अनन्तर वह स्पर्श का निर्णय ज्ञान उसे अविच्युति रूप धारणा से आत्मगत हो जाता है । उसके पश्चात् वह वासना रूप धारणा में प्रवेश करता है । उससे वह उस स्पर्श के संस्कार ज्ञान को संख्यात काल तक या असंख्यात काल तक आत्मा में धारण किये रहता है ।

अब सूत्रकार 'अनिन्द्रिय (मन) विषयक अवग्रह आदि भी इसी क्रम से होते हैं'–यह बताते हैं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सुमिणं पासिज्जा तेणं सुमिणेत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सुमि-

णेत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस सुमिणे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं, से त्तं मल्लगदिट्ठंतेणं ॥३५॥

भावार्थ–कल्पना करो कि–किसी नामवाला कोई पुरुष है। वह आधी नींद में सोया हुआ है। उस समय उसे कोई स्वप्न आता है। तब वह पहले एक समय की स्थितिवाले नैश्चयिक अर्थ अवग्रह से उस स्वप्न को अव्यक्त रूप में देखता है। फिर असंख्य समय की स्थितिवाले प्रथम अर्थ अवग्रह से–'यह स्वप्न है'–इस प्रकार स्वप्न को जानता है। परन्तु उस समय वह यह नहीं जानता कि–'यह कौन-सा स्वप्न है ?' उसके पश्चात् वह ईहा में प्रवेश करता है। इसके अनन्तर वह जानता है कि यह अमुक स्वप्न है। यह स्वप्न का अवाय ज्ञान है। इस ज्ञान के साथ वह अवाय में प्रवेश करता है। उस अवाय के अनन्तर वह स्वप्न का निर्णय ज्ञान, उसे अविच्युति रूप धारणा से आत्मगत हो जाता है। उसके पश्चात् वह वासना रूप धारणा में प्रवेश करता है। उससे वह उस स्वप्न के संस्कार ज्ञान को संख्यात काल तक या असंख्यात काल तक आत्मा में धारण किये रहता है। यह वह मल्लक दृष्टांत है।

अब सूत्रकार आभिनिबोधिक ज्ञान, जघन्य और उत्कृष्ट से कितने द्रव्य, कितना क्षेत्र, कितना काल और कितने भाव जानता है-यह बतलानेवाला तीसरा विषय द्वार कहते हैं।

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा–दव्वओ,

खित्तओ, कालओ, भावओ।

अर्थ—उस आभिनिबोधिक ज्ञान का विषय संक्षेप से चार प्रकार का है। वह इस प्रकार है—१ द्रव्य से २ क्षेत्र से ३ काल से और ४ भाव से।

तत्थ दव्वओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वाइं दव्वाइं जाणइ, न पासइ।

अर्थ—द्रव्य से आभिनिबोधिक ज्ञानी, आदेश से सर्व द्रव्यों को जानता है, देखता नहीं है।

विवेचन—जो आभिनिबोधिक ज्ञानी, जतिस्मरणादि से, या गुरुदेव का वचन श्रवण, शास्त्रपठन आदि से, आगमिक श्रुत-ज्ञान जाने हुए हैं, वे उस श्रुतज्ञान से सम्बन्धित—श्रुतनिश्रित मतिज्ञान से छहों द्रव्यों को जाति रूप सामान्य प्रकार से जानते हैं। जैसे द्रव्य जातियाँ छह हैं—१ धर्म २ अधर्म ३ आकाश ४ जीव ५ पुद्गल और ६ काल। कोई विशेष प्रकार से भी जानते हैं। जैसे—१ धर्म २ अधर्म ३ आकाश—ये तीन द्रव्य, द्रव्य से एक एक हैं। शेष तीन द्रव्य, द्रव्य से अनन्त अनन्त हैं। धर्म, अधर्म और आकाश, ये तीन स्कन्ध से एक एक हैं तथा जीव और पुद्गल—ये दो स्कंध से अनन्त हैं। धर्म और अधर्म—ये दोनों प्रदेश से असंख्य असंख्य प्रदेशी हैं। आकाश अनन्त प्रदेशी हैं। जीव, प्रत्येक असंख्य प्रदेशी हैं। पुद्गल अप्रदेशी, संख्य प्रदेशी, असंख्य प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी हैं, काल अप्रदेशी है, इत्यादि। परन्तु सम्पूर्ण विशेष प्रकार से देखते नहीं है।

खेत्तओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वं खेत्तं जाणइ, न पासइ।

अर्थ-क्षेत्र से आभिनिबोधिक ज्ञानी, आदेश से सभी क्षेत्र को जानते हैं, देखते नहीं।

विवेचन-जो आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञान जानते हैं, वे श्रुतनिश्रित मतिज्ञान से सर्व लोकाकाश और सर्व अलोकाकाश रूप सब क्षेत्र को, जातिरूप सामान्य प्रकार से जानते हैं। कुछ विशेष प्रकार से भी जानते हैं। जैसे आकाश स्कंध, आकाश देश, आकाश प्रदेश आदि। परन्तु सर्व-विशेष प्रकार से नहीं देखते हैं।

कालओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वं कालं जाणइ, न पासइ।

अर्थ-काल से-आभिनिबोधिक ज्ञानी, आदेश से समस्त काल को जानते हैं, देखते नहीं है।

विवेचन-जो आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञान जानते हैं, वे उस श्रुत से निश्रित मतिज्ञान से, सर्व भूतकाल, सर्व वर्त्तमान काल और सर्व भविष्यकाल रूप सभी काल को जातिरूप सामान्य प्रकार से जानते हैं। समय, आवलिका, प्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त आदि कुछ विशेष प्रकार से भी जानते हैं, पर सर्व विशेष प्रकार से देखते नहीं हैं।

भावओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ, न पासइ।

अर्थ-भाव से आभिनिबोधिक ज्ञानी, आदेश से सभी भावों

को जानते हैं, देखते नहीं।

विवेचन-जो आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञान जानते हैं, वे उस श्रुत से निश्रित मतिज्ञान से सभी भावों को जातिरूप सामान्य प्रकार से जानते हैं। जैसे-भाव छह हैं-१ औदयिक २ औपशमिक ३ क्षायिक ४ क्षायोपशमिक ५ पारिणामिक और ६ सान्निपातिक। कुछ विशेष प्रकार से भी जानते हैं। जैसे औदयिक और क्षायिक भाव, आठ कर्मों का होता है। औपशमिक भाव एक मोहनीय कर्म का होता है। क्षायोपशमिक भाव चार घातिकर्मों का होता है। पारिणामिक भाव षड् द्रव्यों में होता है। सान्निपातिक भाव जीव द्रव्य में ही होता है, इत्यादि, परंतु सर्व विशेष प्रकार से नहीं देखते।

जो आभिनिबोधिक ज्ञानी हैं, वे आगमिक श्रुतज्ञान से अनिश्रित मतिज्ञान द्वारा कुछ क्षेत्र और कालवर्ती ज्ञान से अभिन्न आत्म द्रव्य को और घड़ा कपड़ा आदि कुछ रूपी पुद्गल द्रव्य को ही जानते हैं, तथा आत्म द्रव्य के ज्ञान गुण की कुछ पर्यायों को और घड़ा कपड़ा आदि के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि गुण की कुछ पर्यायों को ही जानते हैं।

मतिज्ञानी, मतिज्ञान से जानते हैं और चक्षुदर्शन तथा अचक्षुदर्शन से देखते हैं।

अब सूत्रकार मतिज्ञान का चौथा चूलिका द्वार कहते हैं। उसमें पहले मतिज्ञान के वास्तविक भेद बतलाते हैं।

उग्गह ईहाऽवाओ य, धारणा एव हुंति चत्तारि।
आभिणिबोहियनाणस्स, भेयवत्थू समासेणं ॥८२॥

अर्थ—आभिनिबोधिक ज्ञान के संक्षेप में—१ अवग्रह २ ईहा ३ अवाय और ४ धारणा, ये चार भेद ही होते हैं।

विवेचन—मतिज्ञान के भेद द्वार के आरंभ में श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा—ये चार भेद पृथक् बताये थे और उनसे अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान के औत्पातिकी, वैनेयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी- ये चार भेद भिन्न बतलाये थे। परंतु वे भेद वास्तव में अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा—इन चार भेदों से पृथक् नहीं है। क्योंकि औत्पातिकी, वैनेयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी इन बुद्धियों में भी पदार्थ का (विषय का) ग्रहण, विचारणा, निर्णय और धारणा होती ही है। अतएव उक्त चारों बुद्धियाँ भी अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणात्मक होने से अवग्रहादि से अभिन्न हैं।

'सामान्यरूप में मति ज्ञान, श्रुत का अनुसरण करनेवाला है। किंतु ये चार बुद्धियाँ ग्रंथ आदि रूप श्रुत का अनुसरण करने वाली नहीं है।' इस विशेष बात का ज्ञान कराने के लिए ही सूत्रकार ने पहले मतिज्ञान के श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित—ये दो भेद किये और चारों बुद्धियों को अश्रुतनिश्रित में—श्रुतनिश्रित अवग्रहादि से भिन्न करके बतलाया।

अब सूत्रकार अवग्रह आदि चारों भेदों का अर्थ बतलाते हैं।

अत्थाणं उग्गहणंम्मि, उग्गहो तह वियालणे ईहा।
ववसायम्मि अवाओ, धरणं पुण धारणं बिंति ॥८३॥

अर्थ—१ 'अवग्रह'—पदार्थ के ग्रहण को अवग्रह कहते हैं। २ 'ईहा'—पदार्थ की विचारणा को ईहा कहते हैं। ३ 'अवाय'—

पदार्थ के 'व्यवसाय' को–'अवाय' कहते हैं। ओर ४ 'धारणा–पदार्थ के निर्णयज्ञान के धारण करने को–'धारणा' कहते हैं।

अब सूत्रकार इन चारों का काल, गाथा-बद्ध बतलाते हैं–

उग्गह इक्कं समयं, ईहावाया मुहुत्तमद्धं तु।
कालमसंखं संखं, च धारणा होई नायव्वा ॥८४॥

अर्थ–१ अवग्रह का काल एक समय है। २ ईहा का काल अन्तर्मुहूर्त है। ३ अवाय का काल अन्तर्मुहूर्त है और ४ (वासना रूप) धारणा का काल संख्यात काल या असंख्यात काल है।

अब सूत्रकार 'कौन इंद्रिय, किस प्रकार विषय को ग्रहण करके जानती है–' यह बतलाते हैं।

पुट्ठं सुणेइ सद्दं, रूवं पुण पासइ अपुट्ठं तु।
गंधं रसं च फासं च, बद्धपुट्ठं वियागरे ॥८५॥

अर्थ–श्रोत्रेन्द्रिय, शब्द को स्पर्श होने पर सुनती है, किंतु चक्षु इंद्रिय तो रूप को बिना स्पर्श हुए देखती है, तथा घ्राण इंद्रिय गन्ध को, रसन इंद्रिय रस को और स्पर्शन इंद्रिय स्पर्श को, स्पर्श होने पर और बँधने पर जानती है।

विवेचन–जैसे नये शकोरे पर जल-विन्दु का स्पर्श मात्र होने से, शकोरा उस जल बिंदु को ग्रहण कर लेता है। वैसे ही श्रोत्र (कान) इंद्रिय के साथ शब्द पुद्गलों का मात्र स्पर्श रूप सम्बन्ध होते ही श्रोत्र शब्द को सुन लेती है। क्योंकि श्रोत्र उप-करण द्रव्य-इंद्रिय के पुद्गल बहुत पटु हैं, तथा शब्द के पुद्गल

सूक्ष्म बहुत और अधिक भावुक होते हैं।

जिस प्रकार दर्पण से किसी पदार्थ का स्पर्श हुए बिना ही (केवल सामने आने से ही) पदार्थ के प्रतिबिम्ब को दर्पण ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार चक्षु उपकरण द्रव्य इंद्रिय से पदार्थ का स्पर्श हुए बिना ही (केवल चक्षु के सामने आने से ही) चक्षु, रूप को जान लेती है।

जैसे—लोह को अग्नि का स्पर्श होने से ही नहीं पकड़ता, पर जब अग्नि, लोह में प्रविष्ट होती है, तभी लोह, अग्नि को पकड़ता है, वैसे ही घ्राण, जिव्हा और स्पर्शन-उपकरण-द्रव्य, इन्द्रियों के साथ, गंध रस और स्पर्श पुद्गलों का स्पर्शमात्र होने से, घ्राण, जिव्हा और स्पर्शन लब्धि भावेन्द्रियाँ, गंध, रस और स्पर्श को नहीं जानती, पर जब घ्राण, जिव्हा और स्पर्शन उपकरण द्रव्य इंद्रियों के प्रदेशों से, गन्ध, रस और स्पर्श पुद्गल परस्पर एक मेक हो जाते हैं (एक क्षेत्र अवगाही हो जाते हैं) तभी घ्राण, जिव्हा और स्पर्शन-लब्धि-भाव-इंद्रियाँ, गन्ध रस और स्पर्श को जान सकती हैं। क्योंकि श्रोत्र उपकरण द्रव्य इंद्रियों के पुद्गलों से, घ्राण, जिव्हा और स्पर्शन-उपकरण-द्रव्य-इंद्रिय के पुद्गल क्रमशः उत्तरोत्तर मन्द हैं और गंध, रस और स्पर्श पुद्गल भी क्रमशः वादर, अल्प और मन्द-भावुक हैं।

अब सूत्रकार—'इंद्रियाँ कब कैसे विषय को ग्रहण करती है—' यह बताते हैं।

भासासमसेढीओ, सद्दं जं सुणइ मीसियं सुणइ।
वीसेढी पुण सद्दं, सुणेइ नियमा पराघाए॥८६॥

अर्थ—जो व्यक्ति, समश्रेणी में होता है, वह मिश्र शद्व पुद्गल सुनता है; किंतु जो विषम श्रेणी में होता है, वह नियत रूप से पराघात-वासित शद्व पुद्गल सुनता है।

विवेचन—जो श्रोता, छहों दिशाओं में से किसी भी दिशा में, यदि वक्ता की समश्रेणी में रहा हुआ हो, तो वह जो शब्द सुनता है, वह मिश्रित सुनता है—कुछ वक्ता के द्वारा भाषा-वर्गणा के भाषा रूप में परिणत किये गये शब्द पुद्गल सुनता है और कुछ उन भाषा परिणत शब्द पुद्गलों से प्रभावित होकर शब्द रूप में परिणत शब्द पुद्गल सुनता है। (क्योंकि वक्ता द्वारा शद्व रूप में परिणत पुद्गल छहों दिशाओं में वक्ता की समश्रेणी में गति करते हुए, उत्कृष्ट लोकान्त तक पहुँचते हैं और समश्रेणी में रहे हुए शब्द वर्गणा के पुद्गलों को प्रभावित कर शब्द रूप में परिणत करते जाते हैं।

जो श्रोता, वक्ता की विषमश्रेणी में,किसी भी दिशा में रहा हुआ हो, तो वह जो शब्द सुनता है, वह नियम से प्रभावित शद्व ही सुनता है। वक्ता के द्वारा शब्द रूप में परिणत शद्व पुद्गल नहीं सुनता, परंतु उसके शद्व पुद्गलों से प्रभावित होकर शद्व रूप में परिणत हुए पुद्गल ही सुनता है, क्योंकि शद्व पुद्गल समश्रेणी में ही गति करते हैं, विषम श्रेणी में गति नहीं करते, परंतु वे विषम श्रेणी में रहे हुए शद्व, पुद्गलों को प्रभावित कर, शद्व रूप में परिणत करते जाते हैं।

जिस प्रकार शद्व पुद्गलों के लिए कहा, उसी प्रकार गंध पुद्गल, रस पुद्गल और स्पर्श पुद्गलों के विषय में भी

समझना चाहिए। यथा–जो पुरुष गंधवाले, रसवाले और स्पर्श वाले पुद्गल की समश्रेणी में होता है, वह मिश्रित गंध, रस और स्पर्श पुद्गलों को जानता है और जो विषमश्रेणी में होता है, वह नियम से पराघात (वासित) गंध, रस और स्पर्श पुद्गलों को जानता है।

अब सूत्रकार मतिज्ञान के एकार्थक नाम बतलाते हैं।

ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा।
सन्ना सई मई पन्ना, सव्वं आभिणिबोहियं ॥८७॥

अर्थ–१ ईहा २ अपोह (अवाय) ३ विमर्श ४ मार्गणा ५ गवेषणा ६ संज्ञा ७ स्मृति ८ मति ९ प्रज्ञा–ये सभी आभिनिबोधिक ज्ञान के ही अन्तर्गत हैं। अतएव सामान्यतया आभिनिबोधिक ज्ञान के ही नाम हैं।

विवेचन–विशेष अपेक्षा से, १ 'ईहा'–यथार्थ पर्यालोचना को ईहा कहते हैं। यह मतिज्ञान का दूसरा भेद है। २ 'अपोह'–निश्चय को अपोह कहते हैं। यह मतिज्ञान के तीसरे भेद का पर्यायवाची शब्द है। ३ 'विमर्श'–सत्पदार्थ में पाये जानेवाले धर्म के स्पष्ट विचार को विमर्श कहते हैं। यह ईहा का अन्तिम पाँचवाँ भेद है। ४ मार्गणा–सत्पदार्थ में पाये जानेवाले धर्मों की खोज को 'मार्गणा' कहते हैं। यह ईहा का दूसरा भेद है। ५ गवेषणा–सत्पदार्थ में न पाये जानेवाले धर्मों की विचारणा को 'गवेषणा' कहते हैं। यह ईहा का तीसरा भेद है। ६ संज्ञा–पदार्थ को अव्यक्त रूप में जानने को 'संज्ञा' कहते हैं। यह मतिज्ञान के पहले भेद अवग्रह का पर्यायवाची है। अथवा द्रव्य

इंद्रिय आदि की सहायता के बिना होनेवाले क्षुधा वेदन आदि को 'संज्ञा' कहते हैं। ७ स्मृति—पहले जाने हुए पदार्थ के स्मरण को 'स्मृति' कहते हैं। यह धारणा के दूसरे भेद, धारणा का पर्यायवाची शब्द है। ८ मति—श्रुतनिश्रित मतिज्ञान को 'मति' कहते हैं। अथवा सूक्ष्म पर्यालोचना को 'मति' कहते हैं। ९ प्रज्ञा—अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान को 'प्रज्ञा' कहते हैं। यह बुद्धि का पर्यायवाची शब्द है। अथवा विशिष्ट क्षयोपशमजन्य यथार्थ पर्यालोचना को 'प्रज्ञा' कहते हैं।

से त्तं आभिणिबोहियनाणपरोक्खं। से त्तं मइनाणं।३६।

अर्थ—यह आभिनिबोधिक ज्ञान परोक्ष है। यह मतिज्ञान है।

अब जिज्ञासु श्रुतज्ञान के स्वरूप को जानने के लिए पूछता है।

श्रुत ज्ञान

से किं तं सुयनाणपरोक्खं? सुयनाणपरोक्खं चोद्दसविहं पण्णत्तं, तं जहा—१ अक्खरसुयं २ अणक्खरसुयं ३ सण्णिसुयं ४ असण्णिसुयं ५ सम्मसुयं ६ मिच्छासुयं ७ साइयं ८ अणाइयं ९ सपज्जवसियं १० अपज्जवसियं ११ गमियं १२ अगमियं १३ अंगपविट्ठं १४ अणंगपविट्ठं ॥३७॥

प्रश्न—वह श्रुतज्ञान क्या है?

उत्तर—श्रुतज्ञान के चौदह भेद हैं—१ अक्षरश्रुत २ अनक्षरश्रुत ३ संज्ञिश्रुत ४ असंज्ञिश्रुत ५ सम्यक्श्रुत ६ मिथ्याश्रुत

७ सादिश्रुत ८ अनादिश्रुत ९ सपर्यवसितश्रुत १० अपर्यवसित-श्रुत ११ गमिकश्रुत १२ अगमिकश्रुत १३ अंगप्रविष्टश्रुत १४ अंगबाह्यश्रुत ।

विवेचन–शद्व या अर्थ को (रूपी अरूपी पदार्थ को) मति-ज्ञान से ग्रहणकर या स्मरणकर, उनमें जो परस्पर वाच्य वाचक सम्बन्ध रहा हुआ है, उसकी पर्यालोचना पूर्वक, शद्व उल्लेख सहित, शद्व व अर्थ को जानना–'श्रुतज्ञान' है ।

सामान्यतया गुरु के शद्व सुनने से, या ग्रंथ पढ़ने से, अथवा उनमें उपयोग लगाने से जो ज्ञान होता है, उसे–'श्रुतज्ञान' कहते हैं ।

मति और श्रुत ज्ञान का अन्तर बताते समय 'श्रुतज्ञान के स्वामी चारों गति के सम्यग्दृष्टि हैं–' यह पहले बता दिया है। अतएव अब सूत्रकार शिष्य की जिज्ञासा पूर्ति के लिए श्रुतज्ञान के कितने भेद हैं और श्रुतज्ञान कितने द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को जानता है–ये शेष दो बातें बतायेंगे। सर्व प्रथम श्रुतज्ञान के कितने भेद हैं–यह बतलाने वाला दूसरा भेद द्वार बतलाते हैं।

१ अक्षर श्रुत–वर्णात्मक श्रुत । २ अनक्षर श्रुत–वर्ण व्यति-रिक्त श्रुत । ३ संज्ञीश्रुत–संज्ञीजीवों का श्रुत । ४ असंज्ञीश्रुत–असंज्ञी जीवों का श्रुत । ५ सम्यक्श्रुत–सत्य श्रुत, ६ मिथ्या श्रुत–असत्यश्रुत । ७ सादि श्रुत–आदि सहित श्रुत ८ अनादि श्रुत–आदि रहित श्रुत । ९ सपर्यवसित श्रुत–अन्त सहित श्रुत, १० अपर्यवसित श्रुत–अन्त रहित श्रुत । ११ गमिक श्रुत–सदृश पाठवाला श्रुत, १२ अगमिकश्रुत–असदृश पाठवाला श्रुत ।

१३ अंगप्रविष्ट श्रुत–अंग के अन्तर्गत श्रुत १४ अनंग प्रविष्ट श्रुत–अंगबाह्यश्रुत। (यों १ दो २ दो ३ दो ४ दो ५ दो ६ दो और ७ दो के भेद मिलाकर श्रुतज्ञान के ७×२=चौदह भेद हुए।)

अब सूत्रकार श्रुतज्ञान के पहले और दूसरे भेद का स्वरूप बताते हैं।

से किं तं अक्खरसुयं ? अक्खरसुयं तिविहं पण्णत्तं, तंजहा–सन्नक्खरं, वंजणक्खरं, लद्धिअक्खरं।

प्रश्न–वह अक्षरश्रुत क्या है ?

उत्तर–अक्षरश्रुत के तीन भेद हैं।.... १ संज्ञाक्षर २ व्यंजनाक्षर तथा ३ लब्ध्यक्षर।

विवेचन–जो 'अ' 'क' आदि वर्णात्मक श्रुत है, उसे 'अक्षर श्रुत' कहते हैं।

भेद–अक्षर श्रुत के तीन भेद हैं–१ संज्ञा अक्षर–लिपि, २ व्यञ्जन अक्षर–भाषा और ३ लब्धि अक्षर–लिपि भाषा आदि का ज्ञान।

३ संज्ञा अक्षर और व्यंजन अक्षर अर्थात् लिपियाँ और भाषाएँ–'द्रव्य श्रुत' हैं, क्योंकि ये ज्ञान रूप नहीं है। परन्तु ज्ञान के लिए निमित्तभूत है। तथा लब्धि अक्षर–'भावश्रुत' है। वह स्वयं ज्ञान रूप है आत्मरूप है।

से किं तं सन्नक्खरं ? सन्नक्खरं अक्खरस्स संठाणागिई। से त्तं सन्नक्खरं।

प्रश्न–वह संज्ञा अक्षर श्रुत क्या है ?

उत्तर—अक्षरों के संस्थान—आकृति को अर्थात् लिपि को 'संज्ञाक्षर' कहते हैं। यह संज्ञाक्षर की परिभाषा हुई।

विवेचन—पट्टी, पत्र, पुस्तक, पत्थर, धातु आदि पर निर्मित 'अ' 'क' आदि अक्षरों की आकृति को संज्ञाक्षर कहते हैं। क्योंकि वह आकृति 'अ' 'क' आदि के जानने में निमित्तभूत है। उस आकृति की संज्ञा—नाम, भी 'अ' 'क' आदि है। लोग भी उसे 'अ' 'क' आदि रूप में ही व्यवहार में लाते हैं।

भेद—संज्ञा अक्षर अर्थात् लिपियों के प्राचीन काल में अनेक भेद थे। जैसे—१ ब्राह्मी लिपि २ यवन लिपि, अंक लिपि, गणित लिपि, आदि। वर्त्तमान में भी कई भेद पाये जाते हैं।

से किं तं वंजणक्खरं? वंजणक्खरं—अक्खरस्स वंजणाभिलावो। से त्तं वंजणक्खरं।

प्रश्न—वह व्यञ्जन अक्षरश्रुत क्या है?

उत्तर—अक्षरों के स्पष्ट उच्चारण को अर्थात् भाषा को 'व्यंजनाक्षर' कहते हैं। यह व्यञ्जनाक्षर की परिभाषा हुई।

विवेचन—श्रोता को अर्थ का ज्ञान हो सके, इस प्रकार अक्षरों के स्पष्ट उच्चारण को 'व्यञ्जन अक्षर' कहते हैं। जैसे दीपक से घट पट आदि पदार्थ प्रकट होते हैं, वैसे ही भाषा से वक्ता के अभिप्राय प्रकट होते हैं, इसलिए भाषा को 'व्यञ्जन अक्षर' कहते हैं।

भेद—अर्द्धमागधी, संस्कृत आदि प्राचीन काल में भाषा के कई भेद थे। आज भी कई भेद पाये जाते हैं।

से किं तं लद्धिअक्खरं? लद्धिअक्खरं अक्खरलद्धि—

यस्स लद्धिअक्खरं समुप्पज्जइ, तं जहा—सोइंदियलद्धि-अक्खरं, चक्खिदियलद्धिअक्खरं, घाणिदियलद्धिअक्खरं, रसणिदियलद्धिअक्खरं, फासिदियलद्धिअक्खरं, नोइंदिय-लद्धिअक्खरं। से त्तं लद्धिअक्खरं। से त्तं अक्खरसुयं।

प्रश्न—वह लब्धि अक्षरश्रुत क्या है ?

उत्तर—अक्षर लब्धिवाले जीव को लब्धि अक्षर उत्पन्न होता है। लब्ध्यक्षर के छह भेद हैं—१ श्रोत्रेन्द्रिय लब्ध्यक्षर २ चक्षुरिन्द्रिय लब्ध्यक्षर ३ घ्राणेन्द्रिय लब्ध्यक्षर ४ जिव्हेन्द्रिय लब्ध्यक्षर ५ स्पर्शनेन्द्रिय लब्ध्यक्षर तथा ६ अनिन्द्रिय लब्ध्यक्षर। यह लब्ध्यक्षर का प्ररूपण हुआ। यह अक्षरश्रुत हुआ।

विवेचन—शब्दार्थ को मतिज्ञान से ग्रहणकर, या स्मरण कर, शब्द और अर्थगत वाच्य-वाचक सम्बन्ध को पर्यालोचना पूर्वक (शद्व उल्लेख सहित) शब्द व अर्थ (पदार्थ) जानना, अर्थात् भावश्रुत को 'लब्धि अक्षर' कहते हैं।

स्वामी—जिसमें अक्षर लब्धि होती है अर्थात् लिपि पढ़कर या भाषा सुनकर समझने की शक्ति होती है, ऐसे लब्धि अक्षर वाले को ही अक्षर की लब्धि होती है (अक्षर का ज्ञान प्राप्त होता है)।

भेद—लब्धिरूप अक्षर श्रुतज्ञान के छह भेद हैं। यथा—

१ श्रोत्र इंद्रिय लब्धि अक्षर—श्रोत्र इंद्रिय के निमित्त से उत्पन्न श्रुतज्ञान। जैसे—गुरु के द्वारा कहे हुए—'आत्मा है'—शद्व कान से सुनकर—'आत्मा है' यह शद्व और 'अस्तित्ववान आत्मा'—

पदार्थ गत वाच्य-वाचक सम्बन्ध को पर्यालोचना पूर्वक ('आत्मा है'-यों शब्दोल्लेख पूर्वक) अस्तित्ववान आत्मा का बोध होना। अथवा शंख के शद्ब को सुनकर 'शंख' शद्ब और 'शंख' पदार्थगत वाच्य-वाचक सम्बन्ध का पर्यालोचना पूर्वक ('यह शंख है'-यों शब्द उल्लेख पूर्वक) बोध होना।

२ चक्षु-इंद्रिय लब्धि-अक्षर-चक्षु इंद्रिय के निमित्त से उत्पन्न श्रुतज्ञान। जैसे-'आत्मा नित्य है'-इस शब्द को आँख से पढ़कर-'आत्मा नित्य है'-यह शब्द और नित्य आत्मा' पदार्थ-गत वाच्य-वाचक सम्बन्ध का पर्यालोचना पूर्वक ('आत्मा नित्य है'-यों शद्ब उल्लेख पूर्वक) नित्य आत्म तत्त्व का बोध होना। अथवा 'ठूँठ' को आँख से देखकर 'ठूँठ' शद्ब और ठूँठ' पदार्थगत वाच्य-वाचक संबंध का पर्यालोचना पूर्वक ('यह ठूँठ है'-यों शद्ब उल्लेख पूर्वक 'ठूँठ' पदार्थ का) बोध होना।

३ घ्राण इंद्रिय लब्धि अक्षर-घ्राण इंद्रिय के निमित्त से उत्पन्न श्रुतज्ञान। जैसे-कस्तूरी की गंध को नाक से सूँघकर 'कस्तूरी' शद्ब और 'कस्तूरी' पदार्थगत वाच्य-वाचक सम्वन्ध का पर्यालोचना पूर्वक ('यह कस्तूरी है'-यों शद्बोल्लेख सहित कस्तूरी पदार्थ को) जानना। ४ जिव्हा इंद्रिय लब्धि अक्षर-जिव्हा इंद्रिय के निमित्त से उत्पन्न श्रुतज्ञान। जैसे-जीभ से इक्षुरस चखकर-'ईक्षु रस' शब्द और 'इक्षुरस' पदार्थगत परस्पर वाच्य-वाचक संबंध का पर्यालोचना पूर्वक ('यह 'ईख' का रस है-' यों शद्ब उल्लेख सहित, इक्षु रस का) ज्ञान होना। ५ स्पर्शन इंद्रिय लब्धि अक्षर-स्पर्शन इंद्रिय के निमित्त से उत्पन्न श्रुतज्ञान। जैसे-स्प-

र्शन से रस्सी का स्पर्श होने पर 'रस्सी' शब्द और 'रस्सी' पदार्थ गत परस्पर वाच्य वाचक सम्बन्ध का पर्यालोचना पूर्वक ('यह रस्सी है' यों शद्व के उल्लेख पूर्वक रस्सी का) ज्ञान होना।
६ अनिन्द्रिय लब्धि अक्षर—मन के निमित्त से उत्पन्न श्रुतज्ञान। जैसे-सूर्य का स्वप्न देखकर 'सूर्य' शब्द और 'सूर्य' पदार्थगत परस्पर वाच्य-वाचक सम्बन्ध का पर्यालोचना पूर्वक ('यह सूर्य है'-यों शद्व उल्लेख सहित सूर्य के स्वप्न का) ज्ञान होना।

अथवा 'द्रव्य छह हैं'—इस शास्त्र वचन का स्मरण कर 'द्रव्य छह हैं'—इस शद्व और छह द्रव्य पदार्थगत वाच्य-वाचक सम्बन्ध का पर्यालोचना पूर्वक ('द्रव्य छह है'-यों शब्द उल्लेख पूर्वक छह द्रव्य पदार्थ का) ज्ञान होना।

अपेक्षा—आत्मा आदि शद्वार्थ का ज्ञान जब वाच्य-वाचक सम्बन्ध पर्यालोचना पूर्वक होता है, तब उसे 'श्रुतज्ञान' कहते हैं तथा जब वाच्य-वाचक संबंध पर्यालोचना रहित होता है, तब उसे 'मतिज्ञान' कहते हैं।

विशेष—एकेंद्रियों को भी श्रुत (अ) ज्ञान होता है, पर वह सोये हुए, या मद्य में मत्त, या मूर्च्छित प्राणी के श्रुत ज्ञान के सदृश अव्यक्त होता है। जब वे एकेंद्रियादि जीव, क्षुधा-वेदन आदि के समय 'क्षुधा' शब्द और 'क्षुधा वेदना' इनमें निहित वाच्य-वाचक सम्बन्ध पर्यालोचना पूर्वक और 'मुझे भूख लगी है'—यों अन्तरंग शब्द उल्लेख सहित क्षुधा का वेदन करते हैं, तब उन्हें श्रुतज्ञान होता है, ऐसा समझना चाहिए।

यह लब्धि अक्षरश्रुत है। यह अक्षरश्रुत है।

से किं तं अणक्खरसुयं ? अणक्खरसुयं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा—

ऊससियं नीससियं, निच्छूढं खासियं च छीयं च ।
निस्सिंघियमणुसारं, अणक्खरं छेलियाईयं ॥८८॥

से त्तं अणक्खरसुयं ॥३८॥

प्रश्न— वह अनक्षर श्रुत क्या है ।

उत्तर—अनक्षश्रुत के अनेक भेद हैं ।......१ श्वास लेना २ श्वास छोड़ना ३ थूकना ४ खांसना ५ छींकना ६ 'गूं' गूं करना ७ अधोवायु करना ८ सुड़सुड़ाना । ये अनक्षर श्रुत हैं ।

विवेचन—जो 'अ' 'क' आदि वर्ण रहित श्रुत है, उसे अनक्षर श्रुत कहते हैं ।

उपर्युक्त सभी शाब्दिक क्रियाएँ द्रव्य-श्रुत के अन्तर्गत समझनी चाहिए । क्योंकि ये क्रियाएँ ज्ञानात्मक नहीं है । जब इन शाब्दिक क्रियाओं का प्रयोग करनेवाला, किसी अन्यजन को, किसी पदार्थ विशेष का ज्ञान कराने के अभिप्राय से, इन शाब्दिक क्रियाओं का प्रयोग करता है, तभी इन्हें द्रव्य श्रुतज्ञान के अन्तर्गत समझना चाहिए । जैसे मल त्याग करने के स्थान में मल त्याग करता हुआ पुरुष, अपनी उपस्थिति और उस अवस्था का, अन्य अनभिज्ञ पुरुष को ज्ञान कराने के अभिप्राय से, कंठ के द्वारा अवर्णात्मक विचित्र स्वर करता (खँखारता) है, तो वह स्वर, द्रव्य श्रुतज्ञान के अन्तर्गत है, क्योंकि वह शब्द अन्य अनभिज्ञ पुरुष को उक्त पुरुष की स्थिति जानने

रूप भाव श्रुतज्ञान में निमित्त बनता है।

विशेष–जैसे अक्षर श्रुत के तीन भेद हैं–१ संज्ञा अक्षर श्रुत, २ व्यञ्जन अक्षर श्रुत, और ३ लब्धि अक्षर श्रुत। वैसे ही अनक्षर श्रुत के भी तीन भेद होते हैं–१ संज्ञा अनक्षर श्रुत, २ व्यञ्जन अनक्षर श्रुत और ३ लब्धि अनक्षर श्रुत। इन तीन में अभी जो अनक्षर श्रुत के भेद बताए हैं, उन्हें २ 'व्यञ्जन अनक्षर श्रुत' के अन्तर्गत समझना चाहिए, क्योंकि वे शब्दात्मक हैं। जो हाथ की चेष्टा विशेष आदि हैं, उन्हें १ 'संज्ञा अनक्षर श्रुत' समझना चाहिए, क्योंकि वे चेष्टाएँ संज्ञात्मक हैं तथा जो इन दोनों से सुनकर व देखकर उत्पन्न श्रुतज्ञान है, उसे ३ 'लब्धि अनक्षर श्रुत' समझना चाहिए, क्योंकि वह ज्ञानात्मक हैं। इन दोनों भेदों को यहाँ नहीं कहा है, परन्तु उन्हें उपलक्षण से समझ लेना चाहिए।

अब सूत्रकार, श्रुतज्ञान के तीसरे और चौथे भेद का स्वरूप बताते हैं?

से किं तं सण्णिसुयं ? सण्णिसुयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा–कालिओवएसेणं, हेऊवएसेणं, दिट्ठिवाओवएसेणं।

प्रश्न–वह संज्ञीश्रुत क्या है? (वह ४ असंज्ञी श्रुत क्या है)?

उत्तर–संज्ञी (और असंज्ञी) श्रुत तीन प्रकार के हैं।...... १ कालिकी की अपेक्षा २ हेतु की अपेक्षा तथा ३ दृष्टि की अपेक्षा।

विवेचन–जो जीव, संज्ञा सहित हैं, उनके श्रुत को 'संज्ञीश्रुत' कहते हैं तथा जो जीव संज्ञा रहित हैं, उनके श्रुत को 'असंज्ञी

श्रुत' कहते हैं।

भेद—संज्ञाएँ तीन अपेक्षाओं से हैं, वे इस प्रकारहैं,—१ दीर्घ-कालिक की अपेक्षा २ हेतु की अपेक्षा और ३ दृष्टिवाद की अपेक्षा। अतएव इन त्रिविध संज्ञाओं की विवक्षा से संज्ञी जीव और असंज्ञी जीव भी तीन तीन प्रकार से हैं और इस कारण संज्ञी श्रुत और असंज्ञी श्रुत भी तीन तीन प्रकार से हैं।

से किं तं कालिओवएसेणं ? कालिओवएसेणं जस्स णं अत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिंता, वीमंसा, से णं सण्णीति लब्भइ। जस्सणं नत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिंता वीमंसा, से णं असण्णीति लब्भइ। से त्तं कालिओवएसेणं।

प्रश्न—वह दीर्घकालिक संज्ञा क्या है?, (उसकी अपेक्षा संज्ञी जीव और असंज्ञी जीव कौन कौन हैं और संज्ञी-श्रुत असंज्ञी-श्रुत क्या क्या है?)

उत्तर—जिसमें ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिंता और विमर्श है, वह कालिकी अपेक्षा संज्ञी है और जिसमें ये शक्तियाँ नहीं है वह असंज्ञी है।

विवेचन—लम्बे भूतकाल और लम्बे भविष्यकाल विषयक—१ ईहा करना—सत्पदार्थ की पर्यालोचना करना, २ अपोह करना—निश्चय, अवाय करना, ३ मार्गणा करना—सत्पदार्थ में पाये जाने वाले गुण धर्म का विचार करना, ४ गवेपणा करना—सत्पदार्थ में न पाये जाने वाले गुणधर्म का विचार करना,

५ चिंता करना–भूत में यह कैसे हुआ ? वर्त्तमान में क्या करना ? भविष्य में क्या होगा ? इसका चिंतन करना, ६ विमर्श करना–यह इसी प्रकार घटित होता है, यह इसी प्रकार हुआ, यह इसी प्रकार होगा, इत्यादि, पदार्थ का सम्यक्–यथार्थ निर्णय करना आदि–'दीर्घकालिक संज्ञा' कहलाता है।

२ संज्ञी असंज्ञी जीव–जिन जीवों में यह दीर्घकालिक संज्ञा पायी जाती है, वे इस दीर्घकालिक संज्ञा की अपेक्षा 'संज्ञी जीव' हैं तथा जिनमें ये नहीं पायी जाती, वे 'असंज्ञी जीव' हैं।

यह दीर्घकालिक संज्ञा, जितने भी मनवाले प्राणी हैं–नारक गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य और देव में पायी जाती है। क्योंकि जैसे आँखोंवाला प्राणी दीपक की सहायता से सभी पदार्थों का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करता है, वैसे ही ये भी भाव मनवाले प्राणी, द्रव्यमन की सहायता से दीर्घ भूतकाल और दीर्घ भविष्यकाल विषयक पहले पीछे के विचार द्वारा पदार्थ का स्पष्ट विचार करने में समर्थ होते हैं। तथा जितने भी मन रहित प्राणी हैं–सम्मूर्च्छिम एक इन्द्रिय से लेकर पाँच इंद्रियवाले तिर्यंच और सम्मूर्छिम मनुष्यों में यह संज्ञा नहीं पायी जाती। क्योंकि जैसे अन्धा प्राणी नेत्र और दीपक के अभाव में किसी भी पदार्थ का स्पष्ट ज्ञान करने में असमर्थ होता है, वैसे ही ये भी भावमन और द्रव्यमन के अभाव में (अल्पता में) दीर्घ विचारपूर्वक पदार्थ का स्पष्ट विचार करने में असमर्थ रहते हैं।

(३) संज्ञी असंज्ञी श्रुत–जिन जीवों में यह दीर्घकालिक संज्ञा पायी जाती है, उन जीवों का श्रुत, दीर्घकालिक संज्ञा की

अपेक्षा 'संज्ञी श्रुत' है, तथा जिन जीवों में यह संज्ञा नहीं पायी जाती, उन जीवों का श्रुत, दीर्घकालिक संज्ञा की अपेक्षा 'असंज्ञी श्रुत' है ।

से किं तं हेऊवएसेणं ? हेऊवएसेणं जस्सणं अत्थि अभिसंधारणपुव्विया करणसत्ती से णं सण्णीति लब्भइ। जस्स णं नत्थि अभिसंधारणपुव्विया करणसत्ती से णं असण्णीति लब्भइ। से त्तं हेऊवएसेणं।

प्रश्न--वह हेतु संज्ञा क्या है ? (उसकी अपेक्षा संज्ञी जीव और असंज्ञी जीव कौन कौन है ? और संज्ञीश्रुत असंज्ञीश्रुत क्या क्या है।)

उत्तर–जिनमें अभिसंधारण–बुद्धि पूर्वक कार्य करने की क्षमता हो; वे हेतु की अपेक्षा संज्ञी तथा जिनमें... क्षमता नहीं हो, वे असंज्ञी हैं।

विवेचन–जो प्रायः वर्त्तमान के हेतु का विचार है, अर्थात् निकट भूत एवं निकट भविष्य के हेतु का विचार है, उसे 'हेतु संज्ञा' कहते हैं।

(२) संज्ञी असंज्ञी जीव–जिन जीवों में इस संज्ञा पूर्वक इष्ट में प्रवृत्ति और अनिष्ट से निवृत्ति रूप क्रिया करने की शक्ति पायी जाती है, वे इस हेतु संज्ञा की अपेक्षा 'संज्ञी जीव' हैं, तथा जिनमें नहीं पायी जाती वे 'असंज्ञी जीव' हैं।

यह संज्ञा जो दीर्घकालिक संज्ञा की अपेक्षा असंज्ञी हैं–मन रहित हैं, उनमें से भी जो दो इंद्रियवाले, तीन इंद्रियवाले, चार इंद्रियवाले और सम्मूर्च्छिम पाँच इंद्रियवाले त्रस जीव हैं, उन्हीं

में पायी जाती है। क्योंकि वे स्पर्शन इंद्रिय द्वारा शीत उष्ण आदि का अनुभव कर उसे दूर करने के विचार पूर्वक धूप छाँव आदि में गमन आगमन करते हैं। रहने के लिए स्थान घर आदि बनाते हैं। भूख लगने पर उसे मिटाने की विचारणा पूर्वक इष्ट आहार पाकर उसे खाने की प्रवृत्ति करते हैं। अनिष्ट आहार देखकर उससे निवृत्त होते हैं। जैसे—लट आदि, सुगंध की इच्छा पूर्वक शक्कर आदि इष्ट गंधवाले पदार्थों के निकट पहुँचते हैं, अनिष्ट गंधवाले पदार्थों से हटते हैं। जैसे—चीटिंयाँ आदि। रूप की इच्छा पूर्वक रूपवान, गंधवान, रसवान पुष्प आदि पर पहुँचते हैं, अनिष्ट रूप, गंध, रसवान पुष्प आदि पर नहीं पहुँचते। जैसे भ्रमर आदि। तथा जो एक इन्द्रियवाले स्थावर जीव हैं, उनमें यह संज्ञा नहीं पायी जाती, क्योंकि उनमें वर्त्तमान का विचार भी अत्यन्त मन्द होता है और तत्पूर्वक गमन आगमन की शक्ति भी नहीं होती।

३ संज्ञी असंज्ञी श्रुत—जिन जीवों में यह हेतु संज्ञा पायी जाती है, उन जीवों का श्रुत, हेतु संज्ञा की अपेक्षा 'संज्ञी श्रुत' है तथा जिन जीवों में यह संज्ञा नहीं पायी जाती, उन जीवों का श्रुत, हेतु संज्ञा की अपेक्षा 'असंज्ञी श्रुत' है।

से किं तं दिट्ठिवाओवएसेणं ? दिट्ठिवाओवएसेणं सण्णिसुयस्स खओवसमेणं सण्णी लब्भइ, असण्णिसुयस्स खओवसमेणं असण्णी लब्भइ। से त्तं दिट्ठिवाओवएसेणं। से त्तं सण्णिसुयं। से त्तं असण्णिसुयं ॥३९॥

वह दृष्टिवाद संज्ञा क्या है ? (उसकी अपेक्षा संज्ञी जीव

अपेक्षा 'संज्ञी श्रुत' है, तथा जिन जीवों में यह संज्ञा नहीं पायी जाती, उन जीवों का श्रुत, दीर्घकालिक संज्ञा की अपेक्षा 'असंज्ञी श्रुत' है ।

से किं तं हेऊवएसेणं ? हेऊवएसेणं जस्सणं अत्थि अभिसंधारणपुव्विया करणसत्ती से णं सण्णीति लब्भइ। जस्स णं नत्थि अभिसंधारणपुव्विया करणसत्ती से णं असण्णीति लब्भइ। से त्तं हेऊवएसेणं।

प्रश्न--वह हेतु संज्ञा क्या है ? (उसकी अपेक्षा संज्ञी जीव और असंज्ञी जीव कौन कौन है ? और संज्ञीश्रुत असंज्ञीश्रुत क्या क्या है।)

उत्तर–जिनमें अभिसंधारण–बुद्धि पूर्वक कार्य करने की क्षमता हो; वे हेतु की अपेक्षा संज्ञी तथा जिनमें... क्षमता नहीं हो, वे असंज्ञी हैं।

विवेचन–जो प्राय: वर्त्तमान के हेतु का विचार है, अर्थात् निकट भूत एवं निकट भविष्य के हेतु का विचार है, उसे 'हेतु संज्ञा' कहते हैं ।

(२) संज्ञी असंज्ञी जीव–जिन जीवों में इस संज्ञा पूर्वक इष्ट में प्रवृत्ति और अनिष्ट से निवृत्ति रूप क्रिया करने की शक्ति पायी जाती है, वे इस हेतु संज्ञा की अपेक्षा 'संज्ञी जीव' हैं, तथा जिनमें नहीं पायी जाती वे 'असंज्ञी जीव' हैं ।

यह संज्ञा जो दीर्घकालिक संज्ञा की अपेक्षा असंज्ञी हैं–मन रहित हैं, उनमें से भी जो दो इंद्रियवाले, तीन इंद्रियवाले, चार इंद्रियवाले और सम्मूर्च्छिम पाँच इंद्रियवाले त्रस जीव हैं, उन्हीं

में पायी जाती है। क्योंकि वे स्पर्शन इंद्रिय द्वारा शीत उष्ण आदि का अनुभव कर उसे दूर करने के विचार पूर्वक धूप छाँव आदि में गमन आगमन करते हैं। रहने के लिए स्थान घर आदि बनाते हैं। भूख लगने पर उसे मिटाने की विचारणा पूर्वक इष्ट आहार पाकर उसे खाने की प्रवृत्ति करते हैं। अनिष्ट आहार देखकर उससे निवृत्त होते हैं। जैसे—लट आदि, सुगंध की इच्छा पूर्वक शक्कर आदि इष्ट गंधवाले पदार्थों के निकट पहुँचते हैं, अनिष्ट गंधवाले पदार्थों से हटते हैं। जैसे—चीटियाँ आदि। रूप की इच्छा पूर्वक रूपवान, गंधवान, रसवान पुष्प आदि पर पहुँचते हैं, अनिष्ट रूप, गंध, रसवान पुष्प आदि पर नहीं पहुँचते। जैसे भ्रमर आदि। तथा जो एक इन्द्रियवाले स्थावर जीव हैं, उनमें यह संज्ञा नहीं पायी जाती, क्योंकि उनमें वर्त्तमान का विचार भी अत्यन्त मन्द होता है और तत्पूर्वक गमन आगमन की शक्ति भी नहीं होती।

३ संज्ञी असंज्ञी श्रुत—जिन जीवों में यह हेतु संज्ञा पायी जाती है, उन जीवों का श्रुत, हेतु संज्ञा की अपेक्षा 'संज्ञी श्रुत' है तथा जिन जीवों में यह संज्ञा नहीं पायी जाती, उन जीवों का श्रुत, हेतु संज्ञा की अपेक्षा 'असंज्ञी श्रुत' है।

से किं तं दिट्ठिवाओवएसेणं ? दिट्ठिवाओवएसेणं सण्णिसुयस्स खओवसमेणं सण्णी लब्भइ, असण्णिसुयस्स खओवसमेणं असण्णी लब्भइ। से त्तं दिट्ठिवाओवएसेणं। से त्तं सण्णिसुयं। से त्तं असण्णिसुयं ॥३९॥

वह दृष्टिवाद संज्ञा क्या है? (उसकी अपेक्षा संज्ञी जीव

और असंज्ञी जीव कौन कौन है ? और संज्ञी श्रुत तथा असंज्ञी श्रुत क्या क्या है ?)

उत्तर–दृष्टिवाद की अपेक्षा जिन्हें संज्ञीश्रुत–सम्यक् श्रुत का क्षयोपशम हो, वे संज्ञी । और जिन्हें असंज्ञीश्रुत–मिथ्याश्रुत का क्षयोपशम हो, वे असंज्ञी हैं । दृष्टिवाद की अपेक्षा यह संज्ञी श्रुत तथा असंज्ञीश्रुत का प्ररूपण हुआ ।

विवेचन–सुदेव, सुगुरु, सुधर्म कौन है और कुदेव, कुगुरु और कुधर्म कौन है ? इसका सम्यग्–यथार्थ ज्ञान, जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आश्रव-संवर-निर्जरा, बंध मोक्ष, इन नव तत्वों का सम्यग्–यथार्थज्ञानरूप जो सम्यग्दर्शन है, वह दृष्टिवाद की अपेक्षा संज्ञा है ।

२ संज्ञी असंज्ञी जीव–जिन जीवों में यह दृष्टिवाद की विवक्षावाली संज्ञा पायी जाती है अर्थात् सम्यग्दर्शन पाया जाता है, वे दृष्टिवाद संज्ञा की अपेक्षा 'संज्ञी जीव' हैं, तथा जिनमें नहीं पाया जाता अर्थात् जिनमें मिथ्यादर्शन या मिश्र-दर्शन पाया जाता है, वे दृष्टिवाद संज्ञा की अपेक्षा 'असंज्ञी जीव' हैं ।

यह सम्यग्दृष्टि रूप संज्ञा, जो दीर्घकालिक संज्ञा की अपेक्षा संज्ञी हैं, उनमें से भी जिन्हें दर्शनमोहनीय की तीन और अनन्तानुबन्धी की चार–इन सात प्रकृतियों का क्षयोपशम, उपशम, या, क्षय या इनमें से सम्यक्त्व मोहनीय को छोड़कर छह प्रकृतियों का क्षयोपशम, उपशम, या क्षय होता है, उन सम्यग्दृष्टि नारक, गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय, गर्भज मनुष्य और देवों में ही पायी जाती है । शेप जिन जीवों को मिथ्यादर्शन-मोहनीय और

मिश्र-दर्शनमोहनीय का विचित्र क्षयोपशम होता है, उन मिथ्या-दृष्टि और मिश्रदृष्टि नारक, गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय, गर्भज मनुष्य और देवों में यह संज्ञा नहीं पायी जाती।

३ संज्ञीश्रुत असंज्ञीश्रुत—जिन जीवों में यह दृष्टिवाद संज्ञा पायी जाती है, उन जीवों का सम्यक्श्रुत, दृष्टिवाद संज्ञा की अपेक्षा (सम्यग्दर्शन की अपेक्षा) संज्ञी श्रुत है। तथा जिन जीवों में यह दृष्टिवाद संज्ञा नहीं पायी जाती, उन जीवों का मिथ्या-श्रुत, दृष्टिवाद संज्ञा की अपेक्षा (मिथ्यादर्शन, मिश्रदर्शन की अपेक्षा) 'असंज्ञीश्रुत' है।

विशेष—शास्त्रों में आहारसंज्ञा आदि चार संज्ञाएँ अथवा दश संज्ञाएँ भी पायी जाती हैं। परन्तु उन संज्ञाओं की अपेक्षा संज्ञी असंज्ञी का विभाग नहीं बन सकता, क्योंकि वे संज्ञाएँ एकेंद्रियों में भी पायी जाती है। अतएव उस अपेक्षा को यहाँ ग्रहण नहीं किया है। वे संज्ञाएँ अत्यन्त मन्द रूप होने से भी ग्रहण नहीं की है।

इन चार प्रकार की संज्ञाओं में से लौकोत्तर मोक्षमार्ग की दृष्टि में, दृष्टिवाद की अपेक्षावाली सम्यग्दर्शन रूप संज्ञा ही महत्वपूर्ण और उपादेय है। शेष हेतु की अपेक्षावाली संज्ञा, दीर्घकालिक अपेक्षावाली मनरूप संज्ञा और आहार आदि संज्ञा, तुच्छ और उपक्षेणीय है।

यह दृष्टिवाद की अपेक्षा संज्ञीश्रुत और असंज्ञीश्रुत है। यह संज्ञीश्रुत असंज्ञीश्रुत है।

अब सूत्रकार श्रुतज्ञान के पाँचवें और छठे भेद का स्वरूप

वर्णन करते हैं।

से किं तं सम्मसुयं ? सम्मसुयं जं इमं अरिहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णनाणदंसणधरेहिं तेलुक्कनिरिक्खियमहियपूइएहिं तीयपडुप्पण्णमणागयजाणएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं।

प्रश्न—वह सम्यग्श्रुत क्या है ?

उत्तर—केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, भूत, भविष्य एवं वर्त्तमान के ज्ञाता, देव, दानव और मानव से वंदित, कीर्तित तथा पूजित, अरिहंत प्रभु से प्रणीत यह गणिपिटक (आचार्य-कोष) द्वादशांगी, सम्यक् श्रुत है।

विवेचन—जो देव गुरु और धर्म का, षड्द्रव्य का, नवतत्व का, सम्यग् अनेकान्तवाद पूर्वक, पूर्वापर अविरुद्ध, यथार्थ सम्यग्ज्ञान है, जो सम संवेगादि को उत्पन्न करनेवाला, सम्यक् अहिंसा, संयम तप की प्रेरणा करनेवाला, भव-भ्रमण का नाश करने वाला और मोक्ष पहुँचानेवाला श्रुत है, वह 'सम्यक्श्रुत' है।

प्रवचन की अपेक्षा—जो अर्हन्त हैं—देवेन्द्र आदि के लिए भी पूज्य तीर्थंकर हैं। भगवन्त हैं—समग्र ऐश्वर्य आदि के स्वामी हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्म के क्षय से उत्पन्न केवलज्ञान केवल दर्शन के धारक हैं। तीनों लोक—देव, दानव, मानव के द्वारा निरीक्षित हैं—श्रद्धा भरे नयनों से देखेगये हैं। महित हैं;—यथाअवस्थित असाधारण गुणों के द्वारा महान् माने गये हैं। पूजित हैं—पञ्चाङ्ग वन्दना आदि से नमस्कृत हैं, अतीत

प्रत्युपन्न और अनागत रूप तीनों काल को जानते हैं–ऐसे सर्वज्ञ सवदर्शी के प्रवचन 'सम्यक्श्रुत' है।

आगम की अपेक्षा–उन प्रवचनों को सुनकर प्रविशुद्धमति गणधरों द्वारा ग्रथित, यह बारह अंगोवाला गणिपिटक–ज्ञान का कोष या आचार्य का कोष, 'सम्यक्श्रुत' है।

तं जहा–१ आयारो २ सूयगडो ३ ठाणं ४ समवाओ ५ विवाहपण्णत्ती ६ नायाधम्मकहाओ ७ उवासगदसाओ ८ अंतगडदसाओ ९ अणुत्तरोववाइयदसाओ १० पण्हा-वागरणाइं ११ विवागसुयं १२ दिट्ठिवाओ।

अर्थ–(उस गणिपिटक के बारह अंग) इस प्रकार हैं–१ आचारांग २ सूत्रकृत ३ स्थानांग ४ समवायांग ५ व्याख्या-प्रज्ञप्ति (उपनाम–भगवती) ६ ज्ञाताधर्मकथा ७ उपासकदसा ८ अन्तकृतदसा ९ अनुत्तरौपपातिकदसा १० प्रश्नव्याकरण ११ विपाक १२ दृष्टिवाद।

(ये बारह सूत्र, अंग के अन्तर्गत होने से मूलभूत एवं प्रधान हैं। अतः इनका यहाँ उल्लेख किया है। वैसे अंगबाह्य जो आवश्यक आदि आगम हैं, वे भी 'सम्यक्श्रुत' हैं।)

इच्चेयं दुवालसंगं गणिपिडगं चोद्दसपुव्विस्स सम्म-सुयं, अभिण्णदसपुव्विस्स सम्मसुयं, तेण परं भिण्णेसु भयणा। से त्तं सम्मसुयं ॥४०॥

अर्थ–चौदह पूर्व के ज्ञाता अथवा कम से कम अभिन्न पूर्ण दस पूर्व के ज्ञाता को यह आचार्य कोष द्वादशांगी सम्यक्श्रुत में

परिणत होती है (यह निश्चित है) और शेष व्यक्तियों के लिए अनिश्चित है। यह सम्यक्श्रुत का प्ररूपण हुआ।

विवेचन–१रिणति की अपेक्षा– इस प्रकार का यह बारह अंगोवाला गणिपिटक, चौदह पूर्वियों के लिए सम्यक्श्रुत है, उनसे उतरते उतरते यावत् अभिन्न–पूर्ण, दशपूर्वियों के लिए भी सम्यक्श्रुत है। क्योंकि ऐसे ज्ञानी जीव, नियम से सम्यग्दृष्टि ही होते हैं। अतएव वे इस श्रुत को सम्यक् रूप में ही परिणत करते हैं।

जो मिथ्यादृष्टि होते हैं, वे मिथ्यादृष्टि रहते हुए कभी पूर्ण दशपूर्व नहीं सीख पाते। क्योंकि मिथ्यादृष्टि अवस्था का स्वभाव ही ऐसा है। जैसे अभव्यजीव, ग्रन्थिदेशके निकट आकर भी ग्रन्थि-भेद नहीं कर पाता, ऐसे ही मिथ्यादृष्टि जीव, श्रुत सीखते सीखते कुछ कम दश पूर्व तक ही सीख पाता है, पूरे दश पूर्व आदि सीख नहीं पाता।

जो दशपूर्व से कम के पाठी होते हैं, उनके लिए यह सम्यक् श्रुत हो, इसमें भजना है। अर्थात् कभी यह सम्यक् श्रुत भी हो सकता है और कभी मिथ्याश्रुत भी हो सकता है।

१ जिस आस्था आदि गुणवाले सम्यग्दृष्टि ने इन सम्यक्-श्रुतों को–'ये सम्यक्श्रुत हैं'–इस सम्यक्श्रद्धा के साथ ग्रहण किया है, उसके लिए ये 'सम्यक्श्रुत' हैं।

और ये ही श्रुत जिस आस्था आदि गुण रहित मिथ्यादृष्टि ने इन सम्यक्श्रुतों को–'ये मिथ्याश्रुत हैं'–इस मिथ्या श्रद्धा के साथ ग्रहण किया है, उसके लिए मिथ्याश्रुत है। अथवा–

३ सम्यग्दृष्टि के लिए भी ये ही मिथ्याश्रुत हैं। 'क्यों ?' मिथ्यात्व में निमित्त बन जाते हैं–इसलिए। क्योंकि कई सम्यग्दृष्टि, मिथ्यात्व मोहनीय के उदय के समय इन्हें पढ़-सुनकर सूक्ष्मार्थ समझने में न आने के कारण, या उत्पन्न हुई शंका का निवारण न होने के कारण, या नय, भंग, निक्षेप आदि समझ में न आने के कारण,या दूसरों के द्वारा भ्रांति उत्पन्न करने के कारण या ऐसे ही अन्य कारणों से, इन सम्यक्श्रुतों को– ये मिथ्याश्रुत हैं,–यों मिथ्या श्रद्धापूर्वक ग्रहण करलेते हैं और सम्यग्दृष्टि को छोड़ देते हैं।

४ मिथ्यादृष्टि के लिए सम्यक्श्रुत है। क्यों ? सम्यक्त्व में निमित्त बनते हैं–इसलिए। क्योंकि कई मिथ्यादृष्टि, मिथ्यात्व मोहनीय के क्षयोपशम आदि के समय इन्हें पढ़-सुनकर सूक्ष्मार्थ समझ में आने के कारण, या उत्पन्न शंका का निवारण हो जाने के कारण, या नय, भंग, निक्षेप आदि का ज्ञान हो जाने के कारण, या दूसरों के द्वारा सम्यक् रूप में समझाए जाने के कारण इन सम्यक्श्रुतों को–'ये सम्यक्श्रुत हैं'–यों सम्यक्श्रद्धा के साथ ग्रहण करते हैं और अपनी पूर्व की मिथ्यादृष्टि छोड़ देते हैं। यह सम्यक्-श्रुत है।

से किं तं मिच्छासुयं ? मिच्छासुयं जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं।

प्रश्न–वह मिथ्याश्रुत क्या है ?

उत्तर–कुत्सित ज्ञानियों एवं मिथ्यादृष्टियों द्वारा अपनी स्वच्छंद–आधारहीन बुद्धि कल्पना के सहारे खड़े किये गये

शास्त्र मिथ्याश्रुत है ।

विवेचन–जिसमें सुदेव, सुगुरु और सद्धर्म का, षड् द्रव्य एवं नव तत्त्व के ज्ञान का अभाव है, जो मिथ्या एकान्तवाद पूर्वक, उन्मत्त के सदृश, पूर्वापर विरूद्ध तथा अयथार्थ–मिथ्याज्ञान है। जो विषय कषाय को उत्पन्न करता है, जो सम संवेगादि उत्पन्न नहीं करता, अथवा अप्रशस्त रूप में उत्पन्न करता है, जो हिंसा, असंयम और भोग की प्रेरणा देता है, अहिंसा, संयम, तप की प्रेरणा नहीं देता, या अप्रशस्त रूप में प्रेरणा देता है, जो भव-भ्रमण बढ़ाता है, जो देवगति तक ही सीमित है, जो कर्मबन्ध बढ़ाता है, जो पुण्य तक ही सीमित है, वह मिथ्याश्रुत है ।

२–३ जो प्रवचन और आगम की अपेक्षा अज्ञानी हैं, और कुत्सितज्ञानी है, जो मिथ्यादृष्टि है, जो लोक दृष्टिवाले हैं, जिनकी विशुद्ध मोक्षदृष्टि नहीं है, उनकी स्वच्छन्द (तीर्थंकर अभिप्राय से वाहर) प्रतिकूल, मति और बुद्धि के द्वारा विकल्पित जो प्रवचन और आगम हैं, वे 'मिथ्याश्रुत' हैं ।

तं जहा–भारहं, रामायणं, भीमासुरुक्खं, कोडिल्लयं, सगडभद्दियाओ, खोड (घोडग) मुहं, कप्पासियं, नाग–सुहुमं, कणगसत्तरी वइसेसियं, बुद्धवयणं, तेरासियं, काविलियं, लोगाययं, सट्ठितंतं, माढरं, पुराणं, वागरणं, भागवयं, पायंजली, पुस्सदेवयं, लेहं, गणियं, सउणरुयं नाडयाइं, अहवा वावत्तरि कलाओ, चत्तारि य वेया संगोवंगा ।

अर्थ–मिथ्याश्रुत के अनेक भेद हैं। वे इस प्रकार हैं–१ भारत–यह व्यास रचित है, २ रामायण–यह वालिमकी रचित है। ये दोनों मुख्यत: लौकिक समाज नीति के शास्त्र हैं। ३ भीमासुर रचित शास्त्र। ४ कौटिल्य–चाणक्य रचित राजनीति शास्त्र। ५ शकट भद्रिकाएँ। ६ खोडमुख अथवा घोटक मुख,–यह नवपूर्व पाठी वात्स्यायन रचित है, संभव है यह कामनीति का शास्त्र हो। ७ कार्पासिक, ८ नागसूक्ष्म ९ कनक सतसई,–ये तीनों अर्थ शास्त्र संभव है १० वैशेषिक–रोहगुप्त (षडुलूक) निन्हव प्रवर्तित वैशेषिक मत के ग्रंथ। ११ बुद्ध वचन–धम्मपद त्रिपिटक आदि बौद्धमत के ग्रंथ। १२ त्रैराशिक–गोशालक मत के ग्रंथ। १३ कापिलिक–कपिल ऋषि प्रवर्तित सांख्यमत के शास्त्र। १४ लोकायत और १५ षष्टितन्त्र–तत्वोपप्लवसिंह आदि, चार्वाक मत के ग्रंथ। १६ माठर–माठर आचार्य की सांख्य-कारिकावृत्ति, यह सांख्य मत का शास्त्र है। १७ पुराण-ब्रह्म-पुराण आदि अठारह पुराण, ये व्यास रचित हैं, ब्राह्मण मत के ग्रंथ हैं। १८ व्याकरण–पाणिनी आदि रचित शब्द शास्त्र। १९ भागवत–यह भी व्यास रचित है, यह वैष्णव मत का ग्रंथ है २० पातञ्जलीय–पतञ्जली रचित योग शास्त्र। २१ पुष्य-दैवत। २२ लेख २३ गणित २४ शकुनरुत–पक्षी शब्द विचार आदि निमित्त शास्त्र। ये तीनों बहत्तर कलाओं के अन्तर्गत है। ये सब मिथ्याश्रुत हैं।

अथवा संक्षेप में बहत्तर कला रूप लौकिक शास्त्र और सांगोपांग ऋग्वेद, युजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद आदि रूप कुप्रा-

विवेचन—जो श्रुत आदि सहित है, वह सादिश्रुत है। जो श्रुत अन्त सहित है, वह सपर्यवसित श्रुत है। जो श्रुत आदि रहित है, वह अनादिश्रुत है। जो श्रुत अन्त रहित है, वह अपर्यवसित श्रुत है।

भेद—अभी जो बारह अंगोवाला गणिपिटक बताया, वह (उपलक्षण से आवश्यक आदि अंगबाह्य सम्यक्श्रुत भी) सादि सपर्यवसित श्रुत और अनादि अपर्यवसित श्रुत है।

अपेक्षा—ये द्वादशांग गणिपिटक आदि सम्यक्श्रुत (आरंभ और) व्यवच्छेद नय की अपेक्षा सादि सपर्यवसित है और (अनारंभ और) अव्यवच्छेद नय की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित हैं।

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ।

अर्थ—वह सम्यक्श्रुत संक्षेप से चार प्रकार का है। यथा—१ द्रव्य से २ क्षेत्र से ३ काल से और ४ भाव से।

तत्थ दव्वओ णं सम्मसुयं एगं पुरिसं पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, बहवे पुरिसे य पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं।

अर्थ—१ द्रव्यतः—एक पुरुष की अपेक्षा सम्यक् श्रुत सादि सपर्यवसित है और बहुत—अनन्त पुरुषों की अपेक्षा सम्यक्श्रुत अनादि अपर्यवसित है।

विवेचन—वहाँ द्रव्य से सम्यक्श्रुत एक पुरुष की अपेक्षा

सादि सपर्यवसित है (क्योंकि एक पुरुष की अपेक्षा सम्यक्श्रुत का आरंभ और व्यवच्छेद होता है। वह इस प्रकार है। जब एक पुरुष को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, तब उसके आचारांग आदि सम्यक्श्रुत का आरंभ होता है और पुनः यदि वह मिथ्यात्व में चला जाता है, अथवा उसे केवलज्ञान हो जाता है, तो उसके सम्यक्श्रुत का व्यवच्छेद हो जाता है। अथवा जब सम्यक्त्वी पुरुष, आचारांग आदि सम्यक्श्रुत सीखता है, तब उसके सम्यक्श्रुत का आरंभ होता है और जब वह प्रमाद, रोग, मृत्यु आदि कारणों से उसे भूल जाता है, तो उसके उस सीखे हुए सम्यक्श्रुत का व्यवच्छेद हो जाता है।

बहुत पुरुषों की अपेक्षा सम्यक्श्रुत अनादि अपर्यवसित है (क्योंकि बहुत पुरुषों की अपेक्षा सम्यक्श्रुत का आरंभ और व्यवच्छेद नहीं होता, कारण कि अनादि भूतकाल से विश्व में कई पुरुष सम्यक्त्व, शिक्षण आदि से आचारांग आदि सम्यक्श्रुत प्राप्त करते ही आये हैं और अनन्त भविष्यकाल तक प्राप्त करते ही रहेंगे।

खेत्तओ णं पंच भरहाइं पंचेरवयाइं पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, पंच महाविदेहाइं पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं।

क्षेत्रतः–पाँच भरत, पाँच ऐरवत की अपेक्षा सम्यक्श्रुत सादि सपर्यवसित है, तथा महाविदेह की अपेक्षा सम्यक्श्रुत अनादि अपर्यवसित है।

२ क्षेत्र से–पांच भरत, पांच ऐरवत क्षेत्र की अपेक्षा सम्यक्-

श्रुत सादि सपर्यवसित है, क्योंकि इन क्षेत्रों में सम्यक्श्रुत का आरंभ और व्यवच्छेद होता है। इन क्षेत्रों में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप कालचक्र सदा घूमता रहता है। पाँच महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा सम्यक्श्रुत अनादि अपर्यवसित है, क्योंकि इन क्षेत्रों में सम्यक्श्रुत का आरंभ और व्यवच्छेद नहीं होता। इन क्षेत्रों में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप कालचक्र भी नहीं घूमता। वहां सदा चौथे दुःषम-सुषमा आरे के समान अवस्थित काल रहता है।

कालओ णं उस्सप्पिणिं ओसप्पिणिं च पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, नो उस्सप्पिणिं नोओसप्पिणिं च पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं।

कालतः–उत्सर्पिणी अवसर्पिणी की अपेक्षा सम्यक्श्रुत सादि सपर्यवसित है तथा अनुत्सर्पिणी अनवसर्पिणी की अपेक्षा सम्यक्-श्रुत अनादि अपर्यवसित है।

विवेचन–३ काल से–उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप भरत ऐर-वत क्षेत्र के काल की अपेक्षा सम्यक्श्रुत आदि सपर्यवसित है, क्योंकि इन कालों में सम्यक्श्रुत का आरंभ और व्यवच्छेद होता है। यथा–उत्सर्पिणी में जब दुःषम-सुषमा नामक तीसरा आरा होता है, तब से तीर्थंकर जन्म लेते हैं और आचारांग आदि श्रुतज्ञान का प्रवर्तन करते हैं, तब सम्यक्श्रुत का आरंभ होता है और जब सुषम-दुःषमा नामक चौथा आरा कुछ बीत जाता है और तीर्थंकरादि का अभाव हो जाता है, तब आचारांग आदि श्रुतज्ञान का व्यवच्छेद हो जाता है। तथा अवसर्पिणी में जब

सुषम-दुःषमा नामक तीसरा आरा कुछ शेष रहता है, तब से तीर्थंकर जन्म लेते हैं और आचारांग आदि श्रुतज्ञान का प्रवर्तन करते हैं, तब सम्यक्श्रुत का आरंभ होता है। तथा दुषमा नामक पाँचवें आरे में जब साधु आदि का अभाव हो जाता है, तब आचारांग आदि श्रुतज्ञान का विच्छेद हो जाता है।

नहीं-उत्सर्पिणी, नहीं-अवसर्पिणी रूप महाविदेह क्षेत्र के काल की अपेक्षा सम्यक्श्रुत अनादि अपर्यवसित है। क्योंकि इसमें सम्यक्श्रुत का आरंभ और व्यवच्छेद नहीं होता। महाविदेह क्षेत्र में सदा चौथे दुःषम-सुषमा आरे के समान काल रहता है, अतएव वहाँ सदा श्रुतप्रदाता तीर्थंकरादि का सद्भाव रहता है और श्रुत सीखनेवाले साधु आदि की विद्यमानता रहती है।

भावओ णं जे जया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, तया ते भावे पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, खाओवसमियं पुण भावं पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं।

अर्थ–भाव से अरिहंत कथित भावों का जब जब निरूपण आरंभ (और निरूपण समापन) किया जाता है, तब तब उन उन आरब्ध तथा समापित भावों की अपेक्षा सम्यक्श्रुत सादि सपर्यवसित है, तथा क्षायोपशमिक भाव की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित है।

विवेचन–४ भाव से उपयोग की अपेक्षा सम्यक्श्रुत सादि सपर्यवसित है। क्योंकि उपयोग का आरंभ और व्यवच्छेद

होता है। जैसे—जब जिनेश्वर प्रज्ञप्त भावों का आख्यान आरंभ किया जाता है—सामान्य या विशेष रूप से कथन आरंभ किया जाता है, तब उन भावों के प्रति उपयोग का आरंभ होता है और जब उन भावों का आख्यान समाप्त किया जाता है, तब उन भावों के प्रति उपयोग का व्यवच्छेद हो जाता है।

आख्यान के भेद इस प्रकार हैं—१ प्रज्ञापना करना—तत्त्वों के भेद, नाम आदि बतलाना, जैसे—तत्त्व नव हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

२ प्ररूपणा करना—स्वरूप आदि बतलाना, जैसे—जीव का स्वरूप निश्चय से चेतना है, व्यवहार से पर्याप्ति, प्राण, योग आदि का धारण करना है।

३ दर्शन कराना—उपमान देकर बतलाना, जैसे जिस प्रकार सूर्य स्व-पर प्रकाशक है, वैसे जीव भी स्व-पर प्रकाशक है।

४ निदर्शन करना—हेतु दृष्टान्त देकर स्पष्ट करना—जैसे, यद्यपि आत्मा अमूर्त है, फिर भी उसका ज्ञान गुण अनुभव गम्य होने से आत्मा प्रतीति का विषय है। जैसे—वायु अदृश्य होने पर भी उसका स्पर्श गुण अनुभवगम्य होने से वायु प्रतीतिका विषय है।

५ उपदर्शन करना—उपनय निगमन से स्थापना करना, जैसे—आत्मा का भी ज्ञानगुण प्रत्यक्ष है, अतएव जीव तत्त्व, अवश्यमेव मानना चाहिए। अथवा उपदर्शन का अर्थ है—सकल नय आदि से तत्त्वों का व्यवस्थापन करना।

क्षायोपशमिक लब्धि की अपेक्षा सम्यक्श्रुत अनादि अपर्य-

वसित है। क्योंकि लब्धि संख्य असंख्य काल तक बनी रहती है, उसका उपयोग के समान जब तब आरंभ और व्यवच्छेद नहीं होता।

इस प्रकार सूत्रकार ने अबतक मात्र सम्यक्श्रुत की अपेक्षा श्रुत के सादि सपर्यवसित और अनादि अपर्यवसित–ये चार भेद बताये। अब सम्यक्श्रुत और मिथ्याश्रुत दोनों की अपेक्षा श्रुत के ये चार भेद, भंग सहित बतलाते हैं।

अहवा भवसिद्धियस्स सुयं साइयं सपज्जवसियं च,
अभवसिद्धियस्स सुयं अणाइयं अपज्जवसियं च।

अथवा भवसिद्धिक की अपेक्षा श्रुत,सादि सपर्यवसित है, तथा अभवसिद्धिक की अपेक्षा श्रुत अनादि अपर्यवसित है।

विवेचन–भवसिद्धिक–मोक्षगामी, सम्यग्दृष्टि जीव का सम्यक्श्रुत सादि सपर्यवसित है। क्योंकि उसके आचारांग आदि सम्यक्श्रुत का, सम्यक्त्व प्राप्ति के समय आरंभ होता है और पुनः मिथ्यात्व अथवा सर्वज्ञत्व प्राप्ति के समय व्यवच्छेद होता है।

इसी प्रकार भवसिद्धिक सादि मिथ्यादृष्टि जीव का मिथ्याश्रुत भी सादि सपर्यवसित है, क्योंकि जिस मिथ्यादृष्टि ने एक या अनेक वार सम्यक्त्व प्राप्त कर उसका वमन करके पुनः मिथ्यादर्शन पाया है, उसका मिथ्याश्रुत अनादि नहीं रहता। मध्य में सम्यक्त्व काल में व्यवच्छिन्न रहने से उसका मिथ्याश्रुत सादि हो जाता है, तथा वह भवसिद्धिक मिथ्यादृष्टि अवश्य पुनः सम्यक्त्व और केवलज्ञान पायेगा, अतः उसका मिथ्याश्रुत अपर्य-

वसित नहीं रहेगा—व्यच्छिन्न हो जायगा।

अभवसिद्धिक—कभी भी मोक्ष में न जानेवाले (मिथ्या-दृष्टि) जीव का मिथ्याश्रुत अनादि अपर्यवसित है। क्योंकि वह अनादि मिथ्यादृष्टि होने से उसके मिथ्याश्रुत का कभी आरंभ नहीं हुआ (सदा से साथ लगा है) और वह सदाकाल मिथ्यादृष्टि ही रहेगा, अतएव उसके मिथ्याश्रुत का कभी व्यवच्छेद नहीं होगा।

श्रुत का सादि अपर्यवसित भंग शून्य है, क्योंकि वह मिथ्या-श्रुत, या सम्यक्श्रुत किसी में भी घटित नहीं होता। जो मिथ्या-श्रुत सादि होता है, वह अपर्यवसित नहीं होता और जो मिथ्या-श्रुत अपर्यवसित होता है, वह सादि नहीं होता, तथा सम्यक्श्रुत नियम से सादि सपर्यवसित ही होता है।

भवसिद्धिक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव का मिथ्याश्रुत, अनादि सपर्यवसित है। वह अनादि से मिथ्यादृष्टि होने से उसके मिथ्याश्रुत का कभी आरंभ नहीं हुआ और वह भवसिद्धिक होने से अवश्य सम्यक्त्व और केवलज्ञान पायेगा। अतएव उसके मिथ्याश्रुत का विच्छेद अवश्य होगा।

विशेष—अभी श्रुत के जो सादि अपर्यवसित, अनादि अपर्य-वसित, ये चार भेद—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से बनाये हैं और चार भंग बनाकर बताये हैं, वे मतिज्ञान में भी समझ लेना चाहिए, क्योंकि जहाँ श्रुतज्ञान होता है, वहाँ नियम से मतिज्ञान रहता ही है।

अभी जो तीसरे और चौथे भंग में श्रुत को अनादि कहा

है उसके विषय में अब सूत्रकार, ज्ञान का परिमाण बताकर 'जीव में अनादि से श्रुत विद्यमान है–यह तर्क और दृष्टान्त द्वारा सिद्ध करते हैं।

सव्वागासपएसग्गं सव्वागासपएसेहिं अणंतगुणियं पज्जवक्खरं निप्फज्जइ।

अर्थ–सर्व आकाश के जितने प्रदेश हैं, उन्हें सर्व आकाश के प्रदेशों से अर्थात् उन्हें उतने ही प्रदेशों से अनन्त वार गुणित करने पर 'पर्यवाक्षर' होता है।

विवेचन–ज्ञान का परिमाण लोकाकाश और अलोकाकाश, यों सर्व आकाश के जितने प्रदेश हैं, उन्हें सर्व आकाश के समस्त प्रदेशों के द्वारा अनन्तवार गुणित किया जाय (उपलक्षण से धर्मास्तिकाय आदि शेष द्रव्यों के प्रदेशों को भी उनके उतने ही प्रदेशों से अनन्तवार गुणित किया जाय) तब जितना गुणन-फल होगा उतने अक्षर के अर्थात् केवलज्ञान के पर्यव हैं, या श्रुतज्ञान के स्व-पर पर्यव हैं।

सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतभागो, निच्चुग्घाडिओ।

अर्थ–सभी जीवों को पर्यवाक्षर का अनन्तवां भाग नित्य खुला रहता है।

विवेचन–श्रुत की अनादिता–सभी जीवों को–जिन्हें ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय का उत्कृष्ट उदय है, जिसके कारण जो पूर्वोक्त तीनों प्रकार की संज्ञा से रहित हैं और स्त्यानर्द्धि

निद्रा में हैं–ऐसे निगोद जीवों को भी अक्षर का (केवलज्ञान का) या श्रुतज्ञान का अनन्तवाँ भाग नित्य (अनादिकाल से) उघड़ा हुआ–खुला रहता है।

जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तेणं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा।

अर्थ–यदि वह भी ढँक जाय तो जीव, अजीव हो जाय।

विवेचन–तर्क–क्योंकि यदि ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के उत्कृष्ट उदय से, उनमें वह अक्षर ज्ञान का अनन्तवाँ भाग भी आवृत्त हो जाय (ढँक जाय) तो जीव, अजीवत्व को प्राप्त हो जाय। चैतन्य स्वभाव ही नष्ट हो जाने से, अचेतन–जड़ हो जाय। परन्तु ऐसा न तो हुआ, न होता है और न होगा ही। क्योंकि तब तो सभी द्रव्य अपना अपना स्वभाव सर्वथा छोड़कर अन्य द्रव्य रूप हो जायेंगे, जो न कहीं देखा गया है, न स्वीकृत किया जा सकता है।

"सुट्ठुवि मेहसमुदए, होइ पभा चंदसूराणं"

अर्थ–घने से घने मेघों के अच्छी तरह–चारों ओर छा जाने पर भी सूर्य-चन्द्र का प्रकाश तो रहता ही है।

विवेचन–दृष्टांत–जैसे घने से घने मेघों के समुदाय से आवृत्त हो जाने पर भी सूर्य-चन्द्र की प्रभा रहती है–पूर्णिमा के चन्द्र की मध्यरात्रि को और सूर्य की मध्य दिन को, चन्द्र और सूर्य के अस्तित्व को बतलानेवाली मन्द प्रभा नियम से रहती है। घने से घने मेघ भी सूर्य और चन्द्र की प्रभा को सर्वथा आवृत्त करने में समर्थ नहीं है, उसी प्रकार ज्ञानावरणीय, दर्शना-

वरणीय कर्मों के अनन्त अनन्त पटलों द्वारा आत्मा के एक एक करके सभी प्रदेश, अनन्त अनन्तवार आवेष्टित परिवेष्टित हो जाने पर भी, उनके द्वारा जीव के चैतन्य स्वभाव का एकांत नाश नहीं हो सकता। अतएव सिद्ध हुआ कि जीव को केवलज्ञान, या श्रुतज्ञान का अनन्तवाँ भाग नित्य उघड़ा हुआ रहने से श्रुत अनादि है।

श्रुत के समान मति को भी अनादि समझना चाहिए। क्योंकि जहाँ श्रुतज्ञान है, वहाँ नियम से मतिज्ञान है।

से त्तं साइयं सपज्जवसियं, से त्तं अणाइयं अपज्जवसियं ॥४२॥

अर्थ–यह सादि सपर्यवसित और अनादि अपर्यवसित है।

अब सूत्रकार, श्रुतज्ञान के ग्यारहवें और बारहवें भेद का स्वरूप बतलाते हैं–

से किं तं गमियं ? गमियं दिट्ठिवाओ।

प्रश्न–वह गमिक श्रुत क्या है ?

उत्तर–दृष्टिवाद गमिक है।

विवेचन–जिस श्रुत के आदि, मध्य, या अन्त में कुछ विशेषता लिए हुए पहले के समान–वैसे के वैसे गमक (सूत्रपाठ) बारबार आते हैं, उस श्रुत को 'गमिक' कहते हैं।

दृष्टिवाद गमिक है, क्योंकि उसका बहुभाग प्रायः सदृश गमक (सरीखे सूत्रपाठ) वाला है। (अंगबाह्य आगमों में उत्तराध्ययन का तीसवाँ अध्ययन आदि का बहुभाग प्रायः सदृश गमक वाला है।)

से किं तं अगमियं ? अगमियं कालियं सुयं। से त्तं गमियं, सेत्तं अगमियं ।

प्रश्न–वह अगमिक श्रुत क्या है ?

उत्तर–कालिक श्रुत अगमिक हैं। यह गमिक और अगमिक श्रुत का प्ररूपण हुआ।

विवेचन–जिस श्रुत में बहुत भिन्नता लिए, नये असदृश गमक (सूत्रपाठ) आते हैं, उस श्रुत को 'अगमिक' कहते हैं। कालिक सूत्र अगमिक हैं, क्योंकि आचारांग आदि सूत्रों का बहुभाग असदृश गमक वाला है।

अब तक सूत्रकार ने श्रुत के छह प्रकार से दो दो भेद करके श्रुत के बारह भेद बताये। अब सातवें प्रकार से श्रुत के दो भेद करके श्रुत के तेरहवें और चौदहवें भेद का स्वरूप बतलाते हैं।

अहवा तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–अंगपविट्ठं, अंगबाहिरं च ।

अर्थ–अथवा श्रुतज्ञान के संक्षेप से दो भेद हैं। यथा––१ अंग प्रविष्ट और २ अंग बाह्य।

अल्प वक्तव्यता के कारण पहले अंग बाह्य का वर्णन करते हैं।

से किं तं अंगबाहिरं ? अंगबाहिरं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–आवस्सयं च, आवस्सय वइरित्तं च ।

प्रश्न–वह अंगबाह्य श्रुत क्या है ?

उत्तर—अंगबाह्य के दो भेद हैं।......१ आवश्यक तथा आवश्यक व्यतिरिक्त ।

विवेचन—जो बारह अंगवाले श्रुत पुरुष से बाहर श्रुत है, वह 'अंगबाह्य' श्रुत है। अथवा जिस श्रुत-विभाग का कोई श्रुत, गणधर रचित भी हो सकता है, जैसे निरयावलिका आदि तथा कोई श्रुत, संकलन आदि की दृष्टि से पूर्वधर श्रुत-स्थविर रचित भी हो सकता है, जैसे—प्रज्ञापना आदि, उस श्रुत-विभाग को 'अंगबाह्य' कहते हैं। अथवा जिस श्रुत-विभाग का कोई श्रुत, सर्व क्षेत्र और सर्व कालमें नियम से रचित होता है, जैसे—आवश्यक आदि और कोई नियत नहीं होता, जैसे पइन्ना विशेष आदि, उस श्रुत विभाग को 'अंगबाह्य' कहते हैं।

१ आवश्यक—नियमित कर्त्तव्य, २ आवश्यक व्यतिरिक्त—आवश्यक से भिन्न ।

से किं तं आवस्सयं ? आवस्सयं छव्विहं पण्णत्तं, तं जहा— सामाइयं, चउवीसत्थओ, वंदणयं, पडिक्कमणं, काउस्सग्गो पच्चक्खाणं; से त्तं आवस्सयं।

प्रश्न—वह आवश्यक क्या है ?

उत्तर—आवश्यक के छह भेद हैं। यथा—१ सामायिक २ चतुर्विंशतिस्तव ३ वंदन ४ प्रतिक्रमण ५ कायोत्सर्ग और ६ प्रत्याख्यान। यह आवश्यक है।

विवेचन—जो क्रियानुष्ठान साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ को, सूर्य उदय से पहले और सूर्य अस्त के पश्चात् प्रतिदिन और प्रतिरात्रि उभयकाल करना

आवश्यक है, उसे 'आवश्यक' कहते हैं। और उसके प्रतिपादक सूत्र को 'आवश्यक सूत्र' कहते हैं।

भेद-आवश्यक के छह भेद हैं। यथा-१ सामायिक-समभाव की प्राप्ति और मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और सावद्य-अशुभयोग से विरति रूप क्रिया, तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र में प्रवृत्ति रूप क्रिया। २ चतुर्विंशतिस्तव-चौवीस तीर्थङ्करों की स्तुति, अर्हन्त देव के यथार्थ असाधारण गुणों का कीर्तन ३ वंदना-विनय, क्षमादि गुणवान् गुरु की प्रतिपत्ति। ४ प्रतिक्रमण-पाप से पीछे लौटना, जो सम्यक्श्रद्धा नहीं की, विपरीत प्ररूपणा की, नहीं करने योग्य कार्य किये, उसका पश्चात्ताप करना और प्रत्याख्यान लेकर भंग किया हो. उस स्खलना को दूर करना। ५ कायोत्सर्ग-काया की ममता छोड़ना, व्रतों के अतिचार रूप व्रण की चिकित्सा करना। ६ प्रत्याख्यान-तप करना, त्याग में वृद्धि करना-व्रतों के अतिचार रूप घावों को पूरना।

से किं तं आवस्सयवइरित्तं ? आवस्सयवइरित्तं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-कालियं च, उक्कालियं च।

प्रश्न-वह आवश्यक व्यतिरिक्त क्या है ?

उत्तर-आवश्यक-व्यतिरिक्त के दो भेद हैं। यथा-१ कालिक और २ उत्कालिक।

विवेचन-आवश्यक से भिन्न जितने सम्यक् श्रुत हैं, वे सब आवश्यक व्यतिरिक्त हैं।

१ कालिक-काल में ही पढ़ने योग्य २ उत्कालिक-काल उपरान्त में भी पढ़ने योग्य।

से किं तं उक्कालियं ? उक्कालियं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा–दसवेआलियं, कप्पियाकप्पियं, चुल्लकप्पसुयं, महाकप्पसुयं, उववाइयं, रायपसेणियं, जीवाभिगमो, पण्णवणा, महापण्णवणा, पमायप्पमायं, नंदी, अणुओग-दाराइं, देविंदत्थओ, तंदुलवेयालियं, चंदाविज्जयं, सूर पण्णत्ती, पोरिसिमण्डलं, मण्डलपवेसो, विज्जाचरण-विणिच्छओ, गणिविज्जा, झाणविभत्ती, मरणविभत्ती, आयविसोही, वीयरागसुयं, संलेहणासुयं, विहारकप्पो, चरणविही, आउरपच्चक्खाणं, महापच्चक्खाणं एवमाइ। से त्तं उक्कालियं।

प्रश्न–वह उत्कालिक क्या है ?

उत्तर–उत्कालिक शास्त्र अनेक हैं। यथा–दशवैकालिक, कल्पाकल्प, लघुकल्प, महाकल्प, औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवा-भिगम, प्रज्ञापना, महाप्रज्ञापना, प्रमादाप्रमाद, नन्दी, अनुयोगद्वार, देवेन्द्रस्तव, तंदुलवैचारिक, चन्द्रवेध्यक, सूर्यप्रज्ञप्ति, पौरुषीमण्डल, मण्डलप्रवेश, विद्याचरणविनिश्चय, गणिविद्या, ध्यानविभक्ति, मरण विभक्ति, आत्मविशुद्धि, वीतरागश्रुत, सलेखनाश्रुत, विहार-कल्प, चरणविधि, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान इत्यादि। ये उत्कालिक के भेद हुए।

विवेचन–जो सूत्र, दिन और रात्रि के दूसरे और तीसरे प्रहर में भी पढ़ा जा सकता है, उसे 'उत्कालिक सूत्र' कहते हैं।

१ 'दशवैकालिक'–इसमें साधु धर्म का संक्षिप्त संकलन है।

आवश्यक है, उसे 'आवश्यक' कहते हैं । अ
सूत्र को 'आवश्यक सूत्र' कहते हैं ।

भेद-आवश्यक के छह भेद हैं । यथा-१
की प्राप्ति और मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद,
अशुभयोग से विरति रूप क्रिया, तथा ज्ञान
प्रवृत्ति रूप क्रिया । २ चतुर्विंशतिस्तव-चौ
स्तुति, अर्हन्त देव के यथार्थ असाधारण गुणों क
विनय, क्षमादि गुणवान् गुरु की प्रतिपत्ति ।
से पीछे लौटना, जो सम्यक्श्रद्धा नहीं की, विप
नहीं करने योग्य कार्य किये, उसका पश्चात्त
प्रत्याख्यान लेकर भंग किया हो, उस स्खलना
५ कायोत्सर्ग-काया की ममता छोड़ना, व्रतों के
व्रण की चिकित्सा करना । ६ प्रत्याख्यान-तप
वृद्धि करना-व्रतों के अतिचार रूप घावों को पूर

से किं तं आवस्सयवइरित्तं ? आव
दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-कालियं च, उक्कालि

प्रश्न-वह आवश्यक व्यतिरिक्त क्या है ?

उत्तर-आवश्यक-व्यतिरिक्त के दो भेद हैं । यथा-
और २ उत्कालिक ।

विवेचन-आवश्यक से भिन्न जितने सम्यक् श्रु
सब आवश्यक व्यतिरिक्त हैं

१ कालिक-काल न योग्य २ उत्कालिक
उपरान्त में भी पढ़ने

से किं तं उक्कालियं ? उक्कालियं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा–दसवेआलियं, कप्पियाकप्पियं, चुल्लकप्पसुयं, महाकप्पसुयं, उववाइयं, रायपसेणियं, जीवाभिगमो, पण्णवणा, महापण्णवणा, पमायप्पमायं, नंदी, अणुओगदाराइं, देविंदत्थओ, तंदुलवेयालियं, चंदाविज्जयं, सूर पण्णत्ती, पोरिसिमण्डलं, मण्डलपवेसो, विज्जाचरणविणिच्छओ, गणिविज्जा, झाणविभत्ती, मरणविभत्ती, आयविसोही, वीयरागसुयं, संलेहणासुयं, विहारकप्पो, चरणविही, आउरपच्चक्खाणं, महापच्चक्खाणं एवमाइ। से त्तं उक्कालियं।

प्रश्न–वह उत्कालिक क्या है ?

उत्तर–उत्कालिक शास्त्र अनेक हैं। यथा–दशवैकालिक, कल्पाकल्प, लघुकल्प, महाकल्प, औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, महाप्रज्ञापना, प्रमादाप्रमाद, नन्दी, अनुयोगद्वार, देवेन्द्रस्तव, तंदुलवैचारिक, चन्द्रवेध्यक, सूर्यप्रज्ञप्ति, पौरुषीमण्डल, मण्डलप्रवेश, विद्याचरणविनिश्चय, गणिविद्या, ध्यानविभक्ति, मरण विभक्ति, आत्मविशुद्धि, वीतरागश्रुत, सलेखनाश्रुत, विहारकल्प, चरणविधि, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान इत्यादि। ये उत्कालिक के भेद हुए।

विवेचन–जो सूत्र, दिन और रात्रि के दूसरे और तीसरे प्रहर में भी पढ़ा जा सकता है, उसे 'उत्कालिक सूत्र' कहते हैं।

१ 'दशवैकालिक'–इसमें साधु धर्म का संक्षिप्त संकलन है।

२ 'कल्प-अकल्प' इसमें साधु के कल्प अकल्प का वर्णन था। ३ 'लघुकल्प'—इसमें स्थविरकल्प जिनकल्प का संक्षिप्त वर्णन था। ४ 'महाकल्प'—इसमें स्थविरकल्प जिनकल्प का विस्तृत वर्णन था। ५ 'औपपातिक'—इसमें देवगति में किसका कहाँ तक उपपात है, इसका वर्णन है। ६ 'राज-प्रश्नीय'—इसमें प्रदेशी राजा के आस्तिकवाद सम्बन्धी प्रश्न और केशीमुनि के उत्तर हैं। ७ 'जीव-अजीव अभिगम'—इसमें जीव और अजीव विषयक ज्ञान है। ८ 'प्रज्ञापना'—इसमें जीव आदि ३६ पद विषयक प्रज्ञापना है। ९ 'महाप्रज्ञापना'—यह प्रज्ञापना की अपेक्षा शब्द से और अर्थ से विस्तृत था। १० 'प्रमाद-अप्रमाद'—इसमें प्रमाद अप्रमाद के स्वरूप, भेद, फल आदि का कथन था। ११ 'नन्दी' —इसमें पाँच ज्ञान विषयक वर्णन है। १२ 'अनुयोग-द्वार'— इसमें उपक्रम निक्षेप अनुगम और नय विषयक वर्णन है। १३ देवेन्द्र-स्तव—इसमें देवेन्द्र कृत अर्हन्त स्तुति थी। १४ तंदुल-वैचारिक—इसमें मनुष्य, जीवनभर में चाँवल कितने प्रमाणमें खाता है आदि का कथन था। १५ 'चन्द्र-वेध्यक'—इसमें चन्द्र-सूर्य आदि का वेध था। १६ 'सूर्यप्रज्ञप्ति'—इसमें सूर्य की चाल आदि का प्रज्ञापन है। १७ 'पौरुषी-मण्डल'—इसमें सूर्य किस मण्डल में रहता है, तब प्रहर आदि के समय पुरुष की छाया कितनी गिरती है, इसका वर्णन था। १८ 'मण्डल-प्रवेश'—इसमें सूर्य दक्षिण और उत्तर के किस मण्डल में कब प्रवेश करता है—इसका वर्णन था। १९ 'विद्या-चरण-विनिश्चय—इस में सम्यक्ज्ञान और सम्यक्क्रिया के स्वरूप, फल आदि का विशेष निश्चय था। २०

'गणिविद्या'–इसमें आचार्य के लिए दीक्षा, ज्ञानाभ्यास, तपश्चरण, विहार, संलेखना आदि के मुहूर्त के लिए उपयोगी ज्योतिष निमित्त आदि विद्याएँ थी। २१ 'ध्यान-विभक्ति–इसमें ध्यान के चार भेदों के स्वरूप, फल आदि का वर्णन था। २३ 'मरण-विभक्ति'–इसमें मरण के १७ भेदों का स्वरूप फल आदि का वर्णन था। २३ 'आत्म-विशुद्धि' इसमें आत्मा को विशुद्ध करने वाले प्रायश्चित्त आदि का वर्णन था। २४ 'वीतरागश्रुत'–इसमें सरागता से वीतरागता की ओर पहुँचने के साधनों का वर्णन था। २५ 'संलेखनाश्रुत'–इसमें संलेखना की विधि, काल आदि का कथन था। २६ 'विहारकल्प'–इसमें स्थविरकल्प का वर्णन था। २७ 'चरण विधि'–इसमें चारित्र की विधि थी। २८ 'आतुर-प्रत्याख्यान'–इसमें असाध्य ग्लान मुनि को विधिवत् आहार की कमी करते हुए भक्त प्रत्याख्यान तक पहुँचाने की विधि का वर्णन था। २६ 'महा-प्रत्याख्यान'–इसमें भव के अन्त में किये जानेवाले अनशन आदि महा प्रत्याख्यानों का वर्णन था। इत्यादि उत्कालिक के अनेक भेद हैं।

विशेष–आवश्यक सूत्र भी उत्कालिक है।

से किं तं कालियं ? कालियं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा–उत्तरज्झयणाइं, दसाओ, कप्पो, ववहारो, निसीहं महानिसीहं, इसिभासियाइं, जम्बूदीवपन्नत्ती, दीवसागरपन्नत्ती, चंदपन्नत्ती, खुड्डिआविमाणपविभत्ती, महल्लियाविमाणपविभत्ती, अंगचूलिया, वग्गचूलिया, विवाहचूलिया, अरुणोववाए, वरुणोववाए, गरुलोववाए,

धरणोववाए, वेसमणोववाए, वेलंधरोववाए, देविंदोववाए, उट्ठाणसुयं, समुट्ठाणसुयं, नागपरियावणियाओ, निरयावलियाओ कप्पियाओ, कप्पवडंसियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फचूलियाओ, वण्हीदसाओ, (आसीविसभावणाणं दिट्ठिविसभावणाणं, सुमिणभावणाणं, महासुमिणभावणाणं, तेयग्गिनिसग्गाणं)

प्रश्न–कालिक सूत्र कितने हैं ?

उत्तर–कालिक शास्त्र अनेक हैं।........१ उत्तराध्ययन २ दशाश्रुतस्कन्ध ३ बृहत्कल्प ४ व्यवहार ५ निशीथ ६ महानिशीथ ७ ऋषिभाषित ८ जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति ९ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति १० चन्द्रप्रज्ञप्ति ११ लघुविमानप्रविभक्ति १२ महाविमानप्रविभक्ति १३ अंगचूलिका १४ वर्गचूलिका १५ व्याख्याचूलिका १६ अरुणोपपात १७ वरुणोपपात १८ गरुड़ोपपात १९ धरणोपपात २० वैश्रमणोपपात २१ वेलंधरोपपात २२ देवेन्द्रोपपात २३ उत्थानश्रुत २४ समुत्थानश्रुत २५ नागपरिज्ञा २६–३० निरयावलिकाएं, कल्पिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिता, पुष्पचूलिका, तथा वृष्णिदशा ३१ आशीविषभावना ३२ दृष्टिविष भावना ३३ स्वप्नभावना ३४ महास्वप्न भावना ३५ तेजोनिसर्ग इत्यादि।

विवेचन–जो सूत्र, दिन और रात्रि के पहले और चौथे प्रहर में ही पढ़ा जा सकता है, उसे 'कालिक सूत्र' कहते हैं। वे इस प्रकार हैं–१ उत्तराध्ययन–इसमें भगवान् महावीर की अन्तिम देशना है। २ दशाश्रुत स्कंध–इसमें २० असमाधि स्थान आदि का वर्णन है। ३ बृहत्कल्प–इसमें साधु साध्वियों के

कल्प का वर्णन है। ४ व्यवहार-इसमें साधु साध्वियों के व्यवहार का वर्णन है। ५ निशीथ-इसमें संयम में लगे दोषों के प्रायश्चित्त का वर्णन है। ६ महा-निशीथ-यह निशीथ से सूत्र और अर्थ में विस्तृत था। ७ ऋषि-भाषित-इसमें ऋषियों की वाणी थी। ८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति-इसमें जम्बूद्वीप के क्षेत्र की काल की और ज्योतिष की प्रज्ञापना है। ९ द्वीपसागर प्रज्ञप्ति-इसमें तिर्यक् लोक के असंख्य द्वीप और असंख्य सागर के नाम क्षेत्र आदि की प्रज्ञापना थी। १० चन्द्रप्रज्ञप्ति-इसमें चन्द्र के चाल आदि की प्रज्ञापना है।"लघु-विमान-प्रविभक्ति-इसमें देवलोक के आवलिका प्रविष्ट और प्रकीर्णक विमानों के स्वरूप संख्या आदि की प्रज्ञापना थी। १२ महाविमान प्रविभक्ति-यह लघु विमान प्रज्ञप्ति की अपेक्षा सूत्र से और अर्थ से विस्तृत था। १३ अंगचूलिका-इसमें आचारांग आदि अंगों के उक्त अनुक्त विषयों का संग्रह था। १४ वर्गचूलिका-इसमें अंतकृतदसा आदि वर्गात्मक सूत्रों के उक्त अनुक्त विषयों का संग्रह था। १५ व्याख्याचूलिका-इसमें भगवती सूत्र के उक्त अनुक्त विषयों का संग्रह था। १६ अरुणोपपात १७ वरुणोपपात १८ गरुडोपपात १९ धरणोपपात २० वैश्रमणोपपात २१ वेलंधरोपपात २२ देवेन्द्रोपपात-इन सूत्रों में उन देवों के आकर्षण का वर्णन था, जिसका एकाग्र होकर उपयोगपूर्वक स्वाध्याय करने से उस उस नाम के देव का आसन कम्पित हो जाता और वह भक्तिपूर्वक सेवा कार्य के लिए उपस्थित होता था। २३ उत्थान श्रुत २४ समुत्थानश्रुत-इसमें वैसा वर्णन था जिसका एकाग्र होकर उपयोग पूर्वक स्वाध्याय करने से बसे हुए गाँव आदि

उठ जाते और उठे हुए गाँव आदि पुनः बस जाते थे। २५ नाग परिज्ञा—इसमें नागकुमारों का परिज्ञान था। २६ निरयावलिकाएँ—इसमें नरकगत काल आदि दशकुमारों के चरित्र हैं। कल्पिका—यह निरयावलिका का दूसरा नाम है। अथवा इसमें कल्प विमान में उत्पन्न देवों का कथानक था। २७ कल्पावतंसिका—इसमें सौधर्मकल्प में उत्पन्न पद्म आदि १० कुमारों का वर्णन है। २८ पुष्पिता—इसमें जो संयम पालने से फूले, फिर विराधना से मुरझाये और पुनः संयम से फूले, उनके कथानक हैं। २९ पुष्पचूला—इसमें भगवान् पार्श्वनाथ की बड़ी शिष्या पुष्पचूला की दस विराधक साध्वियों के चरित्र हैं। अथवा इसमें पुष्पिता के अर्थ विशेष का प्रतिपादन है। ३० वृष्णिदसा—इसमें अन्धकवृष्णि के कुल में उत्पन्न १२ साधुओं के चरित्र हैं। कल्पिका आदि पाँच, निरयावलिका सूत्र के पाँच वर्ग स्थानीय हैं। ३१ आशीविष भावना ३२ दृष्टिविष भावना—इनमें इस लब्धि विषयक वर्णन था। तथा इनके जप से विष दूर हो जाता था। ३३ स्वप्न भावना ३४ महा स्वप्न भावना—इनमें ७२ स्वप्न के स्वरूप फल आदि का वर्णन था। ३५ तेजो निसर्ग—इसमें तेजोलेश्या की प्राप्ति, प्रयोग आदि का वर्णन था।

विशेष—बारह अंग सूत्र भी कालिक हैं। आवश्यक सूत्र १, उत्कालिक सूत्र २९, कालिक सूत्र ३५ अंग सूत्र १२, सब—१+२९+३५+१२=७७ हुए।

एवमाइयाइं चउरासीइं पइन्नगसहस्साइं भगवओ अरहओ उसहसामिस्स आइतित्थयरस्स, तहा संखिज्जाइं

पइन्नगसहस्साइं मज्झिमगाणं जिणवराणं, चोद्दसपइन्न-गसहस्साणि भगवओवद्धमाणसामिस्स ।

अर्थ--आदि तीर्थंकर पूज्य भगवान् ऋषभस्वामी के ८४ हजार प्रकीर्णक ग्रन्थ थे। मध्यम जिनवरों के संख्यात संख्यात हजार प्रकीर्णक ग्रन्थ थे। भगवान् वर्द्धमान स्वामी के १४ हजार प्रकीर्णक ग्रन्थ थे।

विवेचन-अर्हन्त भगवन्तों के उपदेशों का अनुसरण करके अनगार भगवन्त, जिन ग्रन्थों की रचना करते हैं, उन्हें 'प्रकीर्णक' कहते हैं। अथवा अर्हन्त भगवन्तों के उपदेशों का अनुसरण करके अनगार भगवन्त, धर्मकथा के समय प्रवचन कुशलता से ग्रन्थ पद्धत्यात्मक जो भाषण देते हैं, उसे प्रकीर्णक' कहते हैं अथवा अर्हन्त भगवन्तों के निमित्त आदि से अथवा जातिस्मरणादि से अपने पूर्वभव आदि को जानकर अनगार भगवन्त, जिन आत्म चरित्रों की रचना करते हैं, उसे 'प्रकीर्णक' कहते हैं।

उत्कृष्ट श्रमण संख्या की अपेक्षा-अर्हन्त भगवन्त श्री ऋषभदेव स्वामी (जो आदि तीर्थङ्कर थे) के ८४ सहस्र प्रकीर्णक ग्रन्थ थे। क्योंकि उनकी विद्यमानता में उनके शासन में एक समय में उत्कृष्ट ८४ सहस्र साधु रहे। मध्यम जिनवरों-दूसरे अजितनाथ से लेकर तेवीसवें पार्श्वनाथ तक के बाईस तीर्थङ्करों) के संख्यात संख्यात प्रकीर्णक ग्रन्थ थे, (क्योंकि उनकी विद्यमानता में उनके शासन में एक समय में उत्कृष्ट संख्यात संख्यात साधु रहे।) भगवान् वर्द्धमान स्वामी के १४ सहस्र प्रकीर्णक थे। (क्योंकि उनकी विद्यमानता में उनके शासन में एक

समय में उत्कृष्ट १४ सहस्र साधु रहे।

अहवा जस्स जत्तिया सीसा उप्पत्तियाए, वेणइयाए, कम्मयाए, परिणामियाए, चउव्विहाए बुद्धीए उववेया, तस्स तत्तियाइं पइण्णगसहस्साइं, पत्तेयबुद्धा वि तत्तिया चेव। से त्तं कालियं, से त्तं आवस्सयवइरित्तं। से त्तं अणंगपविट्ठं ॥४३॥

अथवा जिन तीर्थंकरों के जितने शिष्य औत्पत्तिकी, वैनेयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी-ये चार बुद्धि सहित थे; उन तीर्थंकरों के उतने ही प्रकीर्णक ग्रन्थ थे। उनके शासन में प्रत्येकबुद्ध भी उतने ही थे। यह कालिक आवश्यक व्यतिरिक्त हुआ। यह अनंगप्रविष्ट हुआ।

विशेष—इन प्रकीर्णकों में कुछ कालिक थे और कुछ उत्कालिक थे।

अब सूत्रकार, श्रुतज्ञान के तेरहवें भेद के स्वरूप का वर्णन करते हैं।

से किं तं अंगपविट्ठं? अंगपविट्ठं दुवालसविहं पण्णत्तं, तं जहा—१ आयारो २ सूयगडो ३ ठाणं ४ समवाओ ५ विवाहपण्णत्ती ६ नायाधम्मकहाओ ७ उवासगदसाओ ८ अंतगडदसाओ ९ अणुत्तरोववाइयदसाओ १० पण्हावागरणाइं ११ विवागसुयं १२ दिट्ठिवाओ।४४।

प्रश्न--वह अंग प्रविष्ट क्या है?

उत्तर--अंग प्रविष्ट शास्त्र बारह हैं।....१ आचार २ सूत्र-

कृत् ३ स्थान ४ समवाय ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति ६ ज्ञाताधर्मकथा ७ उपासकदसा ८ अंतकृद्दसा ९ अनुत्तरौपपात्तिकदसा १० प्रश्न-व्याकरण ११ विपाकश्रुत और १२ दृष्टिवाद।

विवेचन–जो बारह अंगवाले श्रुत-पुरुष के अन्तर्गत श्रुत हैं, वह 'अंगप्रविष्ट' है। अथवा जिस श्रुतविभाग के सभी सूत्र, गण-धर रचित ही हों, वे 'अंगप्रविष्ट' हैं। अथवा जिस श्रुत-विभाग के सभी सूत्र, सर्वक्षेत्र और सर्वकाल में नियम से रचे जाते हैं और अर्थ और क्रम की अपेक्षा सदा वैसे ही होते हैं, वे 'अंग प्रविष्ट' हैं।

१ आचार अंग--इसमें आचार का वर्णन है। २ सूत्रकृत् अंग–इसमें जैन अजैन मत सूत्रित हैं। ३ स्थान अंग--इसमें तत्त्वों की संख्या बताई है। ४ समवाय अंग--इसमें तत्त्वों का निर्णय किया है। ५ व्याख्या प्रज्ञप्ति–इसमें तत्त्वों की व्याख्या की गई है। ६ ज्ञाता-धर्म-कथा अंग--इसमें उन्नीस दृष्टांत और दो सौ छह धर्मकथाएँ हैं। ७ उपासकदसा अंग–इसमें श्रमणों के उपासक, दस श्रावकों के चरित्र हैं। ८ अन्तकृतदसा अंग–इसमें जिन्होंने कर्मों का अन्त किया–ऐसे नव्वे साधुओं के चरित्र हैं। ९ अनुत्तर औपपात्तिक–इसमें अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए तेतीस साधुओं के चरित्र हैं। १० प्रश्नव्याकरण–इसमें पांच आश्रव और पांच संवर का वर्णन है। ११ विपाक–इसमें पाप फल के दस और पुण्यफल के दस चरित्र हैं। १२ दृष्टिवाद–इसमें नाना दृष्टियों का वाद था।

स्थान–इनमें १ आचारांग, श्रुतपुरुष का दाहिना पैर है।

२ सूत्रकृतांग, बाँया पैर है। ३ स्थानांग; दाहिनी पिण्डी है। ४ समवायांग, बाँयी पिण्डी है। ५ भगवती, दाहिनी उरु–साथल–जंघा है। ६ ज्ञाताधर्म कथा, बाँयी उरु है। ७ उपासकदसा, नाभि है। ८ अन्तकृत्दसा वक्षस्थल है। ९ अनुत्तर+औपपातिक, दाहिना बाहु है। १० प्रश्नव्याकरण, बाँया बाहु है। ११ विपाकश्रुत, ग्रीवा है। १२ दृष्टिवाद, मस्तक था। अभी श्रुत पुरुष का मस्तक व्यवच्छिन्न है, केवल धड़ शेष है।

अब सूत्रकार प्रत्येक अंग का संक्षिप्त परिचय देते हैं, उनमें सब से पहले प्रथम अंग का परिचय देते हैं।

से किं तं आयारे? आयारे णं समणाणं निग्गंथाणं आयार-गोयर-वेणइय-सिक्खा-भासा-अभासा-चरण-करण-जायामायावित्तीओ आघविज्जंति, से समासओ पंचविहे पण्णते; तं जहा—नाणायारे, दंसणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे।

प्रश्न— वह आचारांग क्या है?

उत्तर—आचारांग में श्रमण निर्ग्रंथों का–१ आचार २ गोचर ३ विनय ४ वैनयिक ५ शिक्षा ६ भाषा ७ अभाषा ८ चरण ९ करण १० यात्रा मात्रा–इत्यादि वृत्तियों का निरूपण किया गया है। वह संक्षेप में पाँच प्रकार का है यथा–१ ज्ञानाचार २ दर्शनाचार ३ चारित्राचार ४ तपाचार और ५ वीर्याचार।

विवेचन–तीर्थंकरों से कही हुई और पहले के सत्पुरुषों से आचरण की हुई, ज्ञान आदि के आराधना की विधि को 'आचार' कहते हैं तथा उसके प्रतिपादक ग्रन्थको भी उपचार से 'आचार'

कहते हैं।

विषय-आचारांग में श्रमण-मोक्षप्रद तप में श्रम करनेवाले, या समस्त जीवों से वैर का शमन करनेवाले, अथवा इष्ट अनिष्ट में समभाव रखनेवाले, निर्ग्रन्थों का आभ्यन्तर और बाह्य विषय, कषाय, कंचन, कामिनी आदि की परिग्रह रूपी गाँठ से निर्मुक्त सन्तों का आचार कहा जाता है।

उदाहरण-जैसे १ गोचर-गाय चरने के समान भिक्षा लाने की विधि, २ विनय-ज्ञानी आदि के प्रति भक्ति बहुमान, ३ वैनयिक-विनय का फल, कर्मक्षय आदि ४ शिक्षा-ग्रहण करने योग्य शिक्षा, ज्ञान और आसेवन करने योग्य शिक्षा, क्रिया, ५ भाषा--बोलने योग्य निर्वद्य सत्य और व्यवहार भाषा, ६ अभाषा नहीं बोलने योग्य असत्य और मिश्र भाषा तथा सावद्य सत्य और व्यवहार भाषा, ७ चरण-पाँच महाव्रत आदि मूलगुण रूप चरण के ७० बोल, ८ करण--पांच समिति आदि उत्तर गुण रूप करण के ७० बोल, ९ यात्रा-मात्रा--संयम रूप यात्रा के लिए आहार की मात्रा आदि, १० वृत्ति--विविध प्रकार के अभिग्रह विशेष से वर्तना आदि का आचारांग में कथन किया जाता है।

भेद-आचार के संक्षेप में मूल पांच भेद हैं (और उत्तर भेद ३६ हैं)। वे इस प्रकार १ ज्ञान आचार-१ काल २ विनय ३ बहुमान ४ उपधान ५ अनिन्हवन ६ सूत्र ७ अर्थ और ८ तदुभय।

२ दर्शन आचार-१ निःशंकित २ निःकांक्षित ३ निर्विचिकित्स ४ अमूढ़दृष्टि ५ उपबृंहण ६ स्थिरीकरण ७ वात्सल्य

और ८ प्रभावना।

३ चारित्र आचार—१ इर्यासमिति २ भाषासमिति ३ एषणा समिति ४ आदाननिक्षेपणा समिति और ५ उच्चार-प्रश्रवण समिति। ६ मनो गुप्ति ७ वचन गुप्ति और ८ काय गुप्ति।

४ तप आचार—१ अनशन २ ऊनोदरी ३ भिक्षाचरी, वृत्ति-संक्षेप—अभिग्रह ४ रस परित्याग ५ काय क्लेश ६ प्रतिसंलीनता ७ प्रायश्चित्त ८ विनय ९ वैयावृत्य १० स्वाध्याय ११ ध्यान और १२ व्युत्सर्ग। (सब मिलाकर ३६)।

५ वीर्य आचार—उक्त अर्हन्त भगवन्त कथित ३६ आचारों के प्रति अपना बल-वीर्य न छुपाते हुए, यथाशक्ति मन, वचन और काया लगाकर उपयोग पूर्वक पराक्रम करना—'वीर्य आचार' है।

आयारे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ।

अर्थ—आचारांग में वाचनाएं परिमित हैं। संख्यात अनुयोगद्वार हैं। इसमें संख्यात वेढ़ छन्द और संख्यात श्लोक है। इसमें निर्युक्तियां तथा संग्रहणियां संख्याता है। प्रतिपादन की शैलियां भी अनेक हैं।

विवेचन—आगम को सूत्र से, अर्थ से, या उभय से, आदि से अन्त तक पढ़ना और पढ़ाना—'वाचना' कहलाती है। जिन तीर्थंकरों का शासन असंख्येयकाल का होता है, उनके शासन में वाचनाएँ असंख्य होती है और जिन तीर्थंकरों का शासन

संख्येय काल का होता है, उनके शासन में वाचनाएँ संख्येय होती है।

सूत्र का अर्थ कहना-'अनुयोग' है। १ उपक्रम २ निक्षेप ३ अनुगम और ४ नय, अर्थ कहने के ये चार द्वार हैं-(मार्ग-प्रकार हैं) प्रत्येक अध्ययन में ये चार 'अनुयोगद्वार' होते हैं। अध्ययन संख्येय होते हैं, अतएव अनुयोग द्वार भी संख्येय होते हैं।

संख्येय वेष्ट हैं, संख्येय श्लोक हैं। छन्द को श्लोक कहते हैं। वेष्ट एक प्रकार का छन्द विशेष है।

संख्येय निर्युक्तियाँ हैं। सूत्र में रहे हुए अर्थों का युक्ति पूर्वक कथन करना। अर्थ का शिष्य को निश्चय हो, इस प्रकार व्याख्या करके बतलाना, अनेक द्वार बनाकर अर्थ प्रकट करना-'निर्युक्ति' है। ऐसी निर्युक्तियाँ शास्त्र में संख्येय ही संभव है।

शास्त्र के अध्ययन, उद्देशक, द्वार, दृष्टांत आदि का संग्रह करनेवाली गाथा को 'संग्रहणी' कहते हैं। ऐसी संग्रहणियाँ शास्त्र में संख्येय होती है।

जिनके द्वारा पदार्थों का स्वरूप विस्तार से समझ में आता है, ऐसी मार्गणाओं को-'प्रतिपत्ति' कहते हैं। ऐसी मार्गणाएँ भी शास्त्रों में संख्येय होती हैं।

से णं अंगट्ठयाए पढमे अंगे, दो सुयक्खंधा, पणवीसं अज्झयणा, पंचासीई उद्देसणकाला, पंचासीई समुद्देसणकाला।

अर्थ-आचारांग, अंगों में प्रथम अंग है। इसके दो श्रुतस्कंध और पच्चीस अध्ययन है। उद्देशन समुद्देशन काल (उद्देशका-

नुसार) ८५-८५ हैं।

विवेचन-आचारांग सूत्र अंगों की दृष्टि से पहला अंग है। यद्यपि गणधर महाराज, तीर्थंकर भगवान् द्वारा त्रिपदी सुनकर सर्व प्रथम चौदह पूर्वात्मक बारहवें दृष्टिवाद अंग की रचना करते हैं, फिर आचार आदि अंगों की रचना करते हैं, परन्तु शिष्यों की ज्ञान शक्ति आदि का विचार करके अभ्यासक्रम में पहले आचारांग की स्थापना करते हैं। अतः स्थापना के आश्रित आचारांग को पहला अंग कहा है।

दो श्रुतस्कंध हैं। पहले श्रुतस्कंध का नाम 'ब्रह्मचर्य' है और दूसरे श्रुतस्कंध का नाम 'आचारांग' या 'सदाचार' है।

पच्चीस अध्ययन है। पहले श्रुतस्कंध में नौ अध्ययन हैं-१ शस्त्रपरिज्ञा २ लोकविजय ३ शीतोष्णीय ४ सम्यक्त्व ५ लोक-सार ६ धूत ७ महापरिज्ञा ८ विमोह और ९ उपधानश्रुत। अभी ७ वाँ महापरिज्ञा अध्ययन सर्वथा व्यवच्छिन्न हो चुका है। दूसरे श्रुतस्कंध में सोलह अध्ययन हैं-१ पिण्डैषणा २ शय्या-एषणा ३ ईर्या ४ भाषा ५ वस्त्रैषणा ६ पात्रैषणा ७ अवग्रह प्रतिमा ८ स्थान ९ नैषेधिका १० उच्चार प्रश्रवण ११ शब्द १२ रूप १३ परक्रिया १४ अन्योन्य क्रिया १५ भावना और १६ विमुक्ति। ये सब २५ अध्ययन हुए। दूसरे श्रुतस्कंध के १ ले से ७ वाँ-इन सात अध्ययनों को पहली चूला, ८ वें से १४ वाँ-इन सात अध्ययनों को दूसरी चूला, १५ वें अध्ययन को तीसरी चूला और १६ वें अध्ययन को चौथी चूला कहते हैं।

८५ उद्देशक हैं। पहले श्रुतस्कंध के ५१ हैं, यथा शस्त्र-

परिज्ञा के ७, लोकविजय के ६, शीतोष्णीय के ४, सम्यक्त्व के ४, लोकसार के ६, धूत के ५, महापरिज्ञा के ७, विमोह के ८, और उपधान श्रुत के ४। ये सब ५१। दूसरे श्रुतस्कंध के ३४ हैं– पिण्डैषणा के ११, शय्या एषणा के ३, ईर्या के ३, भाषा के २, वस्त्र के २, पात्र के २, अवग्रह के २ शेष नौ के एक एक के प्रमाण से ९, ये ३४ हुए। दोनो श्रुतस्कंध के सब ८५, उद्देशक हुए।

पद समुदाय को 'उद्देशक' कहते हैं। उद्देशक समुदाय को 'अध्ययन' कहते हैं। अध्ययन समुदाय को 'वर्ग' कहते हैं। वर्ग समुदाय को 'श्रुतस्कध' कहते हैं। और श्रुतस्कंध के समुदाय को 'सूत्र' कहते हैं।

उद्देशक आदि की ये व्याख्याएँ सामान्य हैं। विशेष स्थलों पर इनकी प्रसंग के अनुसार व्याख्याएँ समझनी चाहिए।

८५ उद्देशन काल हैं। ८५ समुद्देशन काल हैं। गुरु पढ़ने की आज्ञा देते हैं और शिष्य पढ़ता है, उसे उद्देश कहते हैं। तथा यह कार्य जिस काल में होता है, उसे 'उद्देशनकाल' कहते हैं। गुरु जो पढ़े हुए अध्ययन को पक्का करने के लिए कहते हैं, और शिष्य अध्ययन को स्थिर परिचित करता है, उसे 'समुद्देश' कहते हैं। तथा यह कार्य जिस काल में होता है, उसे 'समुद्देशन काल' कहते हैं।

उद्देशन और समुद्देशन प्रायः जिस सूत्र में उद्देशक होते हैं, वहाँ उद्देशक की संख्या के अनुसार होते हैं। जहाँ उद्देशक रहित अध्ययन होते हैं, वहाँ अध्ययन की संख्या के अनुसार होते हैं। जहाँ वर्गबद्ध अध्ययन होते है, वहाँ वर्गानुसार होते हैं। आचारांग

में ८५ उद्देशक हैं, अतएव ८५ ही उद्देशन समुद्देशन होते हैं। इस कारण इसमें उद्देशन समुद्देशनकाल ८५-८५ ही हैं।

अट्ठारस पयसहस्साइं पयग्गेणं संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा।

अर्थ-आचारांग में अठारह हजार पद हैं। अक्षर संख्यात हैं, किंतु उनमें अनन्त अर्थ व अनन्त आशय समाये हुए हैं। इसमें कुछ त्रसों व असीमित स्थावरों का वर्णन प्राप्त है।

जिससे अर्थ निकले ऐसे शब्द को-अक्षर या अक्षर समूह को-'पद' कहते हैं। आचारांग के पहले श्रुतस्कंध के पहले इतने पद थे।

संख्यात अक्षर हैं। क्योंकि पद संख्यात ही हैं। वर्त्तमान में दोनों श्रुतस्कंधों का संयुक्त परिमाण २५५४ श्लोक जितना है। एक श्लोक के बत्तीस अक्षर होते हैं।

गम दो प्रकार के होते हैं-१ सूत्रगम और २ अर्थगम। सूत्र का ज्ञान होता 'सूत्रगम' है और अर्थों का ज्ञान होना 'अर्थगम' है। सूत्र में सूत्रगम तो संख्येय ही होते हैं, परंतु अर्थगम अनन्त होते हैं, क्योंकि जिनकी अतिशय बुद्धि होती है, वे जानलेते हैं, अर्थात् अनन्त द्रव्य और उनके अनन्त गुण जान लेते हैं।

पर्यव अनन्त हैं, अर्थागम से अनन्त द्रव्यों और अनन्त गुणों के अनन्त पर्यव जानलेते हैं।

परित्त त्रस हैं-दो इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय वाले जीव, जो दुःख से त्रस्त होकर इधर उधर गमनागमन करते हैं, वे

'त्रस' हैं। त्रस चारों गति के मिलाकर भी असंख्य ही हैं। अत-एव असंख्य त्रस जीवों का वर्णन है।

अनन्त स्थावर हैं–एक स्पर्शन इन्द्रिय वाले जीव, जो दुःख मुक्ति के लिए गमन आगमन नहीं कर सकते, वे 'स्थावर' हैं। वनस्पति आश्रित स्थावर अनन्त हैं। अतएव अनन्त स्थावरों का वर्णन है।

सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघ-विज्जंति, पन्नविज्जंति परुविज्जंति दंसिज्जंति निदं-सिज्जंति उवदंसिज्जंति।

अर्थ--शाश्वत, कृत, निवद्ध और निकाचित हैं। जिन प्रणीत भावों का प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन युक्त है।

विवेचन–'शाश्वत' पदार्थ--धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य, 'कृत' पदार्थ–पुग्द्लास्तिकाय के घट आदि पदार्थ, अथवा 'शाश्वत' द्रव्य गुण और 'कृत पर्याय के विषय में जिनेश्वर देव जो भाव 'निवद्ध' करते हैं–नाम भेद स्वरूप आदि द्वारा सामान्य रूप से वतलाते हैं, तथा 'निकाचित' करते हैं–निर्युक्ति, संग्रहणि, हेतु, उदाहरण, आदि द्वारा अत्यन्त दृढ़ करके वतलाते हैं, उन्हीं जिन प्रज्ञप्त भावों का इसमें कथन किया जाता है, प्रज्ञापना की जाती है, प्ररूपणा की जाती है, दर्शन कराया जाता है, निदर्शन किया जाता है, उपदर्शन किया जाता है।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-

करणपरूवणा आघविज्जइ। से त्तं आयारे ॥४५॥

अर्थ–वह आत्मा, इस प्रकार ज्ञाता और इसी प्रकार विज्ञाता होता है। आचारांग में चरण करण की प्ररूपणा है। यह आचारांग का स्वरूप है।

विवेचन–फल–क्रिया की अपेक्षा वह आचारांग पढ़नेवाला, जैसा अभी आचारांग का स्वरूप कहा है, उसी स्वरूपवाला, साक्षात् मूर्तिमान आचारांग बन जाता है। आचारांग में ज्ञानादि आचारों के आसेवन की जो विधि बताई है, वह उस विधि पूर्वक ज्ञान आदि पाँचों आचार की आराधना करनेवाला बन जाता है। ज्ञान की अपेक्षा–आचारांग में जैसा ज्ञान विज्ञान बताया है, उनका ज्ञाता और विज्ञाता बन जाता है। नाम, भेद, स्वरूप आदि का जानकार और निर्युक्ति, संग्रहणी, हेतु, उदाहरण आदि का विशेष जानकार बन जाता है।

श्रुतज्ञान सुनने या पढ़ने का पहला फल 'ज्ञान' है और उसके बाद दूसरा फल 'क्रिया' है। इस प्रकार यद्यपि 'ज्ञान' पहले और 'क्रिया' पीछे है, परन्तु 'ज्ञान' की अपेक्षा (ज्ञान-युक्त) 'क्रिया' श्रेष्ठ है। अतएव सूत्रकार ने उस 'क्रिया की श्रेष्ठता' बताने के लिए यहाँ श्रुतज्ञान सुनने या पढ़ने का 'क्रिया फल' पहले बताया है।

इस प्रकार आचारांग में चरण करण की प्ररूपणा कही जाती है।

अब सूत्रकार दूसरे अंग का परिचय देते हैं।

से किं तं सूयगडे ? सूयगडे णं लोए सूइज्जइ,

अलोए सूइज्जइ, लोयालोए सूइज्जइ, जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जंति, जीवाजीवा सूइज्जंति, ससमए सूइ-ज्जइ, परसमए सूइज्जइ, ससमयपरसमए सूइज्जइ ।

प्रश्न–वह सूत्रकृत अंग क्या है ?

उत्तर–सूत्रकृतांग में लोक, अलोक, लोकालोक, जीव, अजीव, जीवाजीव, तथा स्वसमय–जैन सिद्धांत, परसमय–अजैन सिद्धांत, स्व पर समय–उभय सिद्धांत की जानकारी दी गई है।

विवेचन–जो अर्हन्त भगवन्त के वचन को सूचित करे, वह 'सूत्र' है। जिसे इस प्रकार सूत्र रूप में बनाया गया हो, वह 'सूत्रकृत' है। (इस विवेचन के अनुसार सभी अंग सूत्रकृत है, पर नाम से दूसरे अंग को ही सूत्रकृत कहते हैं।)

विषय–सूत्रकृतांग में कहीं १ लोक सूचित किया जाता है, कहीं २ अलोक सूचित किया जाता है, कहीं ३ लोक अलोक दोनों सूचित किये जाते हैं। ४ कहीं जीव सूचित किये जाते हैं, कहीं ५ अजीव सूचित किये जाते हैं, कहीं ६ जीव अजीव दोनों सूचित किये जाते हैं। कहीं ७ स्वसमय-जैन दर्शन सूचित किया जाता है। कहीं ८ पर समय–अजैन दर्शन सूचित किया जाता है। कहीं ९ स्वसमय पर समय दोनों सूचित किये जाते हैं।

सूयगडे णं असीयस्स किरियावाइसयस्स, चउरासी-इए अकिरियावाईणं, सत्तट्ठीए अण्णाणीयवाईणं, बत्ती-साए वेणइयवाइणं, तिण्हं तेसट्ठाणं पासंडियसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जइ ।

अर्थ–१८० क्रियावादी, ८४ अक्रियवादी, ६७ अज्ञानवादी तथा ३२ विनयवादी, इन ३६३ पाखण्डियों का खण्डन कर जैनवाद की स्थापना की गई है।

विवेचन–परसमय में–अन्य मतों के–१८० क्रिया वादियों के, ८४ अक्रियावादियों के, ६७ अज्ञानवादियों के और ३२ विनय वादियों के, यों सब ३६३ तीन सौ तिरसठ पाखंडी मतों का खण्डन कर, स्वसमय की–जैन मत की स्थापना–सिद्धि की जाती है।

१ क्रियावादी–जो 'क्रिया है'–ऐसा कहते हैं, वे 'क्रियावादी' हैं। अन्यत्र जैनियों को भी 'क्रियावादी' कहा है। यहाँ जो मिथ्या एकान्तवाद पूर्वक, उन्मत्त-प्रलाप की भांति पूर्वापर विरुद्ध कुछ सत्य कुछ असत्य, कभी किसी रूप में और कभी किसी रूप में आत्मा की क्रिया का कथन करते हैं, ऐसे अजैनियों को 'क्रियावादी' कहा है।

इसके मुख्य पाँच भेद हैं–१ कालवादी २ ईश्वरवादी ३ आत्मवादी ४ नियतिवादी और ५ स्वभाववादी। इनमें जो कालवादी हैं, वे एकान्त काल को, जो ईश्वरवादी हैं, वे ईश्वर को, जो आत्मवादी हैं, वे परब्रह्म को, जो नियतिवादी हैं, वे एकांत होनहार को और जो स्वभाववादी हैं, वे एकान्त स्वभाव को ही विश्व का सर्जक, संचालक और संहारक मानते हैं।

इन पाँचों के दो भेद हैं–१ स्वतःवादी और २ परतःवादी। स्वतःवादी प्रत्येक पदार्थ को एकांत स्वतः मानते हैं और परतः-वादी एकांत परतः मानते हैं। यों १० भेद हुए।

इन दस भेदों के और भी दो दो भेद हैं–१ नित्यवादी और २ अनित्यवादी। नित्यवादी प्रत्येक पदार्थ को एकांत नित्य मानते हैं और अनित्यवादी प्रत्येक पदार्थ को एकांत अनित्य मानते हैं। यों २० भेद हुए।

ये वीस भेद जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, वंध और मोक्ष, इन नव ही तत्त्व विषयक हैं। यों सब १८० क्रियावादियों के भेद हैं।

२ अक्रियावादी –जो क्रिया को नहीं मानते, वे 'अक्रियावादी' हैं। इनमें से कोई जगत् को शून्य कहकर क्रिया का निषेध करते हैं। कोई जगत् के पदार्थ को एकांत क्षणिक मानकर क्रिया का निषेध करते हैं। कोई 'सद् असत् क्रिया का नियत फल नहीं मिलता'–यह कहकर क्रिया का निषेध करते हैं। कोई परलोक का अभाव वताकर क्रिया का निषेध करते हैं। कोई आत्मा का अभाव वताकर क्रिया का निषेध करते हैं। कोई ज्ञान को ही मुख्य वताकर क्रिया का निषेध करते हैं।

ये लोग १ काल २ ईश्वर ३ आत्मा ४ स्वभाव ५ नियति की क्रिया का खंडन करते हैं। कोई ६ यदृच्छावादी–'क्रिया का नियत फल नहीं होता'–यह कहकर क्रिया का खंडन करते हैं। ये १ स्वतः या २ परतः किसी भी प्रकार से क्रिया का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। ये पुण्य पाप को आश्रव के अन्तर्गत करने पर जो सात तत्त्व रहते हैं, उनकी क्रिया का विभिन्न खंडन करते है। इस प्रकार इनके सब ८४ भेद होते हैं।

३ अज्ञानवादी–जो अज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं, वे 'अज्ञान-

वादी' हैं। ये ज्ञान को मतभेद का कारण, विवाद का कारण, क्लेश का कारण और संसार वृद्धि का कारण बताते हैं। 'ज्ञानी को पाप अधिक लगता है, वही संसार को उन्मार्गगामी बनाता है; अतः ज्ञान त्याज्य है'-ऐसा कहते हैं।

इनका मत है कि जीवादि नौ पदार्थ १ सत् है, या २ असत् है, ३ सत् असत् है, या ४ अवक्तव्य है, या ५ सत् अवक्तव्य है, या ६ असत् अवक्तव्य है, या ७ सत् असत् अवक्तव्य है-यह कौन जानता है? कोई भी निश्चित रूप से नहीं जानता, केवल अपनी अपनी कल्पना का राग अलापते हैं। अथवा यदि कोई जानता भी है, तो उससे लाभ क्या? कुछ नहीं। मात्र हानि ही होती है। इसी प्रकार नौ पदार्थ की उत्पत्ति सद् से हुई, या असत् से हुई, या सत् असत् से हुई, या अवक्तव्य से हुई, यह भी कौन जानता है? या जानने से क्या लाभ है? यों इनके ६७ भेद होते हैं।

४ विनयवादी-जो विनय को एकांत श्रेष्ठ बताते हैं, वे 'विनयवादी' हैं। इनमें कोई ज्ञान और क्रिया को जटिल तथा भक्ति को सरल बताकर एकांत मिथ्या विनय का समर्थन करते हैं। कोई कंकर, पत्थर, जल, स्थल सर्वत्र ईश्वर की कल्पना करके विनय का समर्थन करते हैं। कोई ज्ञान और क्रिया का सार 'सेवा' मानकर विनय का समर्थन करते हैं।

इनमें कोई १ देव-ईश्वर के विनय को श्रेष्ठ मानते हैं। कोई २ राजा को ईश्वर का साक्षात् अंश मानकर उसका विनय श्रेष्ठ बताते हैं। कोई ३ यति-भक्त को भगवान् के लिए भी

सेव्य मानकर उसके विनय को श्रेष्ठ वताते हैं। कोई ४ ज्ञाति-वर्ण धर्म को मुक्तिमूल मानकर उसका विनय करना श्रेष्ठ मानते हैं। कोई ५ वृद्ध की, तो कोई ६ अधम–चाण्डाल कुत्ते आदि की, कोई ७ माता की और कोई ८ पिता की सेवा–विनय को श्रेष्ठ वताते हैं, इसमें भी कोई १ मन से, कोई २ वचन से, कोई ३ काया से और कोई ४ दान से, विनय को श्रेष्ठ वताते हैं। यों इनके ३२ भेद हैं।

सूयगडे णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, (संखिज्जाओ संगहणीओ) संखिज्जाओ पडिवत्तीओ।

अर्थ–सूत्रकृतांग में परित्त वाचनाएँ संख्येय अनुयोग द्वार, संख्येय वेष्ट, संख्येय श्लोक, संख्येय निर्युक्तियाँ, संख्येय संग्रहणियाँ और संख्येय ७ प्रतिपत्तियाँ हैं।

से णं अंगट्ठयाए बिइए अंगे, दो सुयक्खंधा, तेवीसं अज्झयणा, तित्तीसं उद्देसणकाला, तित्तीसं समुद्देसणकाला।

अर्थ–सूत्रकृतांग, अंगों में द्वितीय अंग है। इसके दो श्रुतस्कंध और तेवीस अध्ययन हैं। उद्देशन समुद्देशन काल (उद्देशकानुसार) ३३, ३३ हैं।

विवेचन–सूत्रकृतांग, अंगों में दूसरा अंग है। इसके दो श्रुतस्कंध हैं। (पहले श्रुतस्कंध का नाम 'गाथा षोडशक' है।)

इसके तेईस अध्ययन हैं। पहले श्रुतस्कंध में सोलह अध्ययन हैं–१ समय २ वैतालीय ३ उपसर्ग (+परिज्ञा) ४ स्त्रीपरिज्ञा ५ नरक विभक्ति ६ श्री महावीर स्तुति ७ कुशील परिभाषा ८ वीर्य ९ धर्म १० समाधि ११ मार्ग १२ समवसरण १३ यथा-तथ्य १४ ग्रंथ १५ यमकीय (आदानीय) और १६ गाथा। दूसरे श्रुतस्कंध में सात अध्ययन हैं–१ पुण्डरीक (कमल का) २ (तेरह) क्रिया स्थान ३ आहारपरिज्ञा ४ अप्रत्याख्यान क्रिया ५ आचारश्रुत (अनगारश्रुत) ६ आर्द्रकीय (आर्द्रकुमार का) ७ नालन्दीय (उदकपेढ़ाल पुत्र का)। सब २३।

तेतीस उद्देशक हैं। वे इस प्रकार–समय के ४, वेतालीय के ३, उपसर्ग परिज्ञा के ४, स्त्रीपरिज्ञा के २, नरक विभक्ति के २, शेष अट्ठारह अध्ययनों के एक एक के परिमाण से १८, सब तेतीस। उद्देशक के अनुसार तेतीस उद्देशनकाल और तेतीस समुद्देशनकाल हैं।

छत्तीसं पयसहस्साइं पयग्गेणं। संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा।

अर्थ- ३६ सहस्र पद हैं। संख्यात अक्षर हैं (वर्त्तमान में २१०० श्लोक परिमाण अक्षर हैं) अनन्त गम हैं। अनन्त पर्यव हैं। परित्त त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं।

सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परुविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

अर्थ-शाश्वत और कृत पदार्थों के विषय में निवद्ध और निकाचित जिन प्रज्ञप्त भाव कहे जाते हैं, प्रज्ञप्त किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, दर्शित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं, उपदर्शित किये जाते हैं।

से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ। से त्तं सूयगडे ।४६।

भावार्थ-क्रिया की अपेक्षा सूत्रकृतांग पढ़नेवाला, जैसा सूत्रकृतांग का स्वरूप है, उसी स्वरूपवाला-साक्षात् मूर्तिमान सूत्रकृतांग वनजाता है। सूत्रकृतांग में दूपित किये गये अजैनमतों को छोड़कर, सिद्ध किये गये जैनमत को स्वीकार कर लेता है। ज्ञान की अपेक्षा सूत्रकृतांग में जैसा दर्शनों का ज्ञान विज्ञान वताया है, उसका ज्ञाता एवं विज्ञाता वन जाता है।

इस प्रकार सूत्रकृतांग में चरणकरण की प्ररूपणा कही जाती है। यह सूत्रकृतांग है।

अव सूत्रकार तीसरे अंग का परिचय देते हैं।

से किं ठाणे ? ठाणे णं जीवा ठाविज्जंति, अजीवा ठाविज्जंति, जीवाजीवा ठाविज्जंति, ससमए ठाविज्जइ, परसमए ठाविज्जइ, ससमयपरसमए ठाविज्जइ, लोए ठाविज्जइ, अलोए ठाविज्जइ, लोयालोए ठाविज्जइ।

प्रश्न-वह स्थानांग क्या है ?

उत्तर-जिस सूत्र में जीव आदि तत्त्वों का संख्यामय प्रतिपादन द्वारा स्थापन किया जाता है, ऐसे उस स्थापना के स्थान-

भूत सूत्र को 'स्थानांग' कहते हैं।

विषय–स्थानांग में कहीं–१ जीवों की स्थापना की जाती है, कहीं २ अजीवों की स्थापना की जाती है, कहीं ३ जीव अजीव दोनों की स्थापना की जाती है। कहीं ४ स्वसमय की स्थापना की जाती है, कहीं ५ परसमय की स्थापना की जाती है, कहीं ६ स्वसमय और परसमय दोनों की स्थापना की जाती है। कहीं ७ लोक की स्थापना की जाती है, कहीं ८ अलोक की स्थापना की जाती है, कहीं ९ लोक अलोक दोनों की स्थापना की जाती है।

ठाणे णं टंका, कूडा, सेला, सिहरिणो, पब्भारा, कुंडाइं, गुहाओ, आगरा, दहा, नईओ, आघविज्जंति।

अर्थ–स्थानांग में टंक, कूट, शैल, शिखरी, प्राग्भार, कुंड, गुफा, आकर, द्रह और नदी को निरूपण किया गया है।

विवेचन–१ टंक–ऊपर से नीचे तक समान परिधिवाले दधिमुख आदि पर्वत, २ कूट–पर्वत पर रहे हुए कूट आकृतिवाले सिद्धायतन आदि कूट, ३ शैल–शिखर रहित निषध आदि पर्वत, ४ शिखरी–शिखर युक्त वैताढ्य आदि पर्वत, ५ प्राग्भार–जिनका ऊपरी भाग कुछ झुका हुआ, या हाथी के कुंभ के समान बाहर निकला हुआ है, ऐसे पर्वत, ६ कुंड–नदी जहाँ आकर गिरती है और निकलती है, ऐसे गंगाकुंड आदि, ७ गुफा–जहाँ से अन्य खंड में जाया जाता है, ऐसे खंडप्रपात आदि पार्वतीय छिद्र-मार्ग, ८ आकर–स्वर्ण आदि के उत्पत्ति स्थान, ९ द्रह–नदी का उद्गम स्थान, महापद्म द्रह आदि, १० नदियाँ–शीता आदि

कही जाती हैं। इनके नाम, स्थान, लम्बाई, चौड़ाई, गहराई ऊँचाई, अधिपति आदि बताये जाते हैं।

ठाणे णं एगाइयाए एगुत्तरियाए वुड्ढीए दसट्ठाणगविवड्ढियाणं भावाणं परूवणा आघविज्जइ।

अर्थ–स्थानांग में एक से लेकर एक एक की वृद्धि से दश तक की संख्या में जीव आदि भावों का कथन किया जाता है; अथवा एक से लेकर एक एक की वृद्धि से दस तक की संख्या वाले भावों का कथन किया जाता है।

ठाणे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ।

अर्थ–स्थानांग में परित्त वाचनाएँ, संख्येय अनुयोग द्वार, संख्येय वेष्ट, संख्येय श्लोक, संख्येय निर्युक्तियाँ, संख्येय संग्रहणियाँ और संख्येय प्रतिपत्तियाँ हैं।

से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे, एगे सुयक्खंधे, दसअज्झयणा एगवीसं उद्देसणकाला, एक्कवीसं समुद्देसणकाला।

अर्थ–स्थानांग, अंगों में तीसरा अंग है। इसका एक ही श्रुतस्कंध है। दस अध्ययन हैं, इक्कीस उद्देशनकाल और इक्कीस समुद्देशनकाल हैं।

विवेचन–पहले अध्ययन में एक की संख्या में, या एक संख्या वाले पदार्थों का निरूपण किया है। जैसे–'आत्मा एक है'।

दूसरे अध्ययन में दो की संख्या में, या दो संख्यावाले पदार्थों का निरूपण किया है। जैसे लोक में दो तत्त्व है-जीव और २ अजीव। इसी प्रकार तीसरे अध्ययन में तीन इन्द्र आदि का, चौथे अध्ययन में चार अन्तक्रिया आदि, पाँचवें अध्ययने पाँच महाव्रत आदि का, छठे अध्ययन में गण धारण करनेवाले के छह गुण आदि का, सातवें अध्ययन में गण अपक्रमण के सात कारण आदिका, आठवें अध्ययन में एकलविहार प्रतिमाधारी के आठ गुण आदि का, नौवें अध्ययन में संभोगी को विसंभोगी करने के नौ कारण आदि का कथन किया है। तथा दसवें अध्ययन में दस की संख्या में या दस की संख्यावाले पदार्थों का निरूपण किया है जैसे-लोक स्थिति दस प्रकार से है।

स्थानांग के २१ उद्देशक हैं। दूसरे अध्ययन में ४, तीसरे अध्ययन में ४, चौथे अध्ययन में ४, पाँचवे अध्ययन में ३, शेष छह अध्ययनों के एक एक के परिमाण से ६, सब उद्देशक २१। उद्देशक के अनुसार २१ उद्देशनकाल और २१ समुद्देशनकाल हैं।

वावत्तरि पयसहस्सा पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा।

अर्थ--७२ सहस्र पद हैं। (वर्तमान में ७८३ सूत्र हैं।) संख्यात अक्षर हैं। (वर्तमान में ३७०० श्लोक प्रमाण अक्षर हैं।) अनन्तगम हैं, अनन्त पर्यव हैं। परित्त त्रस हैं। अनन्त स्थावर हैं।

सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

अर्थ--शाश्वत और कृत पदार्थों के विषय में निबद्ध और निकाचित जिनप्रज्ञप्त भाव कहे जाते हैं, प्रज्ञप्त किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, दर्शित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं, उपदर्शित किये जाते हैं।

से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ। से त्तं ठाणे ॥४७॥

विवेचन–क्रिया की अपेक्षा--स्थानांग पढ़नेवाला, जैसा स्थानांग का स्वरूप है, उसी स्वरूपवाला साक्षात् मूर्तिमान स्थानांग बन जाता है--स्थानांग में जिन्हें छोड़ने योग्य कहा है, उन स्थानों से दूर हो जाता है, जिन्हें आदरने योग्य कहा है, उन स्थानों को प्राप्त करता है और जिनमे उदासीन रहने के लिए कहा है, उन स्थानों में मध्यस्थ रहता है। ज्ञान की अपेक्षा--स्थानांग में जैसा तत्त्व का ज्ञान और विज्ञान बताया है, उसका ज्ञाता और विज्ञाता बन जाता है।

इस प्रकार स्थानांग में चरणकरण की प्ररूपणा कही जाती है। यह वह स्थानांग है।

अब सूत्रकार चौथे अंग का परिचय देते हैं।

से किं तं समवाए? समवाए णं जीवा समासिज्जंति, अजीवा समासिज्जंति, जीवाजीवा समासिज्जंति,

(वर्त्तमान में १६६७ श्लोक प्रमाण अक्षर हैं।) अनन्त गम हैं। अनन्त पर्यव हैं। परित्त त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं।

सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

अर्थ—शाश्वत और कृत पदार्थों के विषय में निबद्ध और निकाचित जिनप्रज्ञप्त भाव कहे जाते हैं। प्रज्ञप्त, प्ररूपित, दर्शित, निर्दशित और उपदर्शित किये जाते हैं।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ। से त्तं समवाए ॥४८॥

अर्थ—क्रिया की अपेक्षा—समवायांग पढ़नेवाला जैसा समवायांग का स्वरूप कहा है, उसी स्वरूप वाला—साक्षात् मूर्तिमान् समवायांग बन जाता है। ज्ञान की अपेक्षा—समवायांग में जैसा तत्त्व का निर्णय किया है, उसका ज्ञाता और विज्ञाता बन जाता है।

इस प्रकार समवायांग में चरणकरण की प्ररूपणा की जाती है। यह समवायांग है।

अब सूत्रकार पाँचवें अंग का परिचय देते हैं।

से किं तं विवाहे? विवाहे णं जीवा विआहिज्जंति, अजीवा विआहिज्जंति, जीवाजीवा विआहिज्जंति, ससमए विआहिज्जइ, परसमए विआहिज्जइ, ससमए-परसमए विआहिज्जइ, लोए विआहिज्जइ, अलोए

विआहिज्जइ, लोयालोए विआहिज्जइ।

प्रश्न-वह 'व्याख्याप्रज्ञप्ति'=भगवती क्या है ?

(जिसके द्वारा जीवादि पदार्थों का विवेचन किया जाय, वह 'व्याख्या' है। जिसमें व्याख्या करके जीव आदि पदार्थों को समझाया जाता हो, वह 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' है।)

उत्तर-व्याख्याप्रज्ञप्ति में कहीं-१ जीवों की व्याख्या की जाती है, कहीं २ अजीवों की व्याख्या की जाती है, कहीं ३ जीव अजीव दोनों की व्याख्या की जाती है, कहीं ४ स्वसमय की व्याख्या की जाती है, कहीं ५ परसमय की व्याख्या की जाती है, कहीं ६ स्वसमय परसमय दोनों की व्याख्या की जाती है, कहीं ७ लोक की व्याख्या की जाती है, कहीं ८ अलोक की व्याख्या की जाती है और कहीं ९ लोक अलोक दोनों की व्याख्या की जाती है।

विवाहस्सणं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ।

अर्थ-व्याख्या में परित्त वाचनाएँ, संख्येय अनुयोगद्वार, संख्येय वेष्ट, संख्येय श्लोक, संख्येय निर्युक्तियाँ, संख्येय संग्रहणियाँ और संख्येय प्रतिपत्तियाँ हैं।

से णं अंगट्ठयाए पंचमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, एगे साइरेगे अज्झयणसए, दस उद्देसगसहस्साइं दस समुद्देसगसहस्साइं।

अर्थ-व्याख्याप्रज्ञप्ति, अंगों में पांचवाँ अंग है। इसके एक श्रुतस्कंध और एकसौ से कुछ अधिक अध्ययन-शतक हैं। उद्देशन समुद्देशन काल (उद्देशकानुसार) १०-१० हजार हैं।

विवेचन-व्याख्याप्रज्ञप्ति अंगों में पाँचवाँ अंग है। इसका एक श्रुतस्कंध है। (१९ वर्ग हैं) सातिरेक-कुछ अधिक एक सौ अध्ययन हैं। (वर्त्तमान में ४१ शतक हैं और अन्तर शतक १३८ हैं) दस सहस्र उद्देशक हैं। दस सहस्र समुद्देशक हैं। (वर्त्तमान में १९२४ उद्देशक हैं-पहले से आठवें शतक तक के दस दस ८×१०=८०, नौवें दसवें के चौतीस चौतीस ३४×२=६८, ग्यारहवें के १२, बारहवें तेरहवें चौदहवें के दस दस ३×१०=३०, पन्द्रहवें का १, सोलहवें के १४, सत्तरहवें के १७, अट्ठारह, उन्नीस, बीस के दस दस ३×१०=३० इक्कीसवें के ८० बाईसवें के ६०, तेईसवें के ५० चोईसवें के २४, पच्चीसवें के १२, छब्बीसवें से तीसवें तक के ग्यारह ग्यारह ५×११=५५, इकत्तीस बत्तीसवें के अट्ठावीस अट्ठावीस २×२८=५६, तेतीस, चौतीसवें के एक सौ चौवीस एक सौ चौवीस २×१२४=२४८, पेंतीसवें से लगाकर उनतालीसवें तक के पाँच शतक के प्रत्येक के एक सौ बत्तीस एक सौ बत्तीस के हिसाब से ६६०, चालीसवें के २३१ और इकतालीसवें के १९६। इस प्रकार कुल उद्देशक १९२४ हुए। वाचना ६६ या ६७ दिन में पूरी की जाती है।

छत्तीसं वागरणसहस्साइं, दो लक्खा अट्ठासीइं पय-सहस्साइं पयग्गेणं संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा।

अर्थ–३६००० प्रश्नोत्तर हैं। २ लाख ८८ सहस्रपद हैं। संख्येय अक्षर हैं। (वर्त्तमान में १५७५ श्लोक परिमाण अक्षर हैं) अनन्तगम हैं, अनन्त पर्यव हैं, परित्त त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं।

सासयकडनिवद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति परुविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

अर्थ–शाश्वत और कृत पदार्थों के विषय निवद्ध और निकाचित जिन प्रज्ञप्त भाव कहे जाते हैं, प्रज्ञप्त, प्ररूपित, दर्शित, निर्दशित और उपदर्शित किये जाते हैं।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ। से त्तं विवाहे॥४६॥

भावार्थ–क्रिया की अपेक्षा व्याख्याप्रज्ञप्ति पढ़नेवाला व्याख्याप्रज्ञप्ति का जैसा स्वरूप कहा है उसी स्वरूपवाला–साक्षात् मूर्तिमान् व्याख्याप्रज्ञप्ति वन जाता है। कौन तत्त्व हेय, ज्ञेय एवं उपादेय हैं–इसकी व्याख्या उसके आचरण से ही स्पष्ट होने लग जाती है।

ज्ञान की अपेक्षा–व्याख्याप्रज्ञप्ति में जैसी तत्त्व की व्याख्या की है, उसका वह ज्ञाता और विज्ञाता वन जाता है। वह स्वयं व्याख्याप्रज्ञप्ति के समान तत्त्व की व्याख्या करने में समर्थ–मति समर्थ वन जाता है।

इस प्रकार व्याख्याप्रज्ञप्ति में चरण-करण की प्ररूपणा कही जाती है। यह व्याख्याप्रज्ञप्ति है।

अब सूत्रकार छठे अंग का परिचय देते हैं।

से किं तं नायाधम्मकहाओ ? नायाधम्मकहासु णं नायाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, परिआ.या, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ य आघविज्जंति।

प्रश्न–वह ज्ञाता धर्म कथा क्या है ?

उत्तर–ज्ञाताधर्मकथा के ज्ञाता विभाग में नायकों के नगर, नगर के उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, नगर में धर्माचार्य का पदार्पण, सेवा में राजा माता पिता आदि का नमन, धर्माचार्य की धर्मकथा, नायक की इह-पारलौकिक विशिष्ट ऋद्धि, भोगों का परित्याग, दीक्षा का ग्रहण, दीक्षा पर्याय का काल, शास्त्राभ्यास, तपाराधना, संलेखना–भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, देवलोक प्राप्ति, उच्च मनुष्य कुल में पुनर्जन्म, पुनः बोधि-लाभ और अन्तक्रिया आदि कहा जाता है।

विवेचन–ज्ञान का अर्थ है–उदाहरण, और धर्मकथा का अर्थ है–अहिंसादि का प्रतिपादन करनेवाली कथा। ऐसे ज्ञान और धर्मकथाएँ जिस सूत्र में हों, उसे 'ज्ञाता-धर्मकथा' कहते हैं।

विषय–ज्ञाताधर्मकथा में नायकों के १ नगर कहे जाते हैं

अर्थात् नायक जिस नगर, ग्राम, पुर, पत्तन आदि में रहता था उसका तथा अन्य सम्बन्धित नगर आदि का नाम और वर्णन बताया जाता है।

उद्यान–जहाँ लोग उत्सव आदि के लिए जाते हैं और जो फल,फूल, छाया आदि से युक्त होता है। चैत्य–व्यन्तर देव आदि देव का मन्दिर, वनखण्ड–जहाँ नाना जाति के उत्तम वृक्ष होते हैं, अर्थात् नायक जिस नगर आदि में रहता था, वहां जो उद्यान, चैत्य, वनखण्ड थे, उनके तथा अन्य सम्बन्धित उद्यान आदि के व स्थान आदि के नाम तथा वर्णन कहे जाते हैं।

राजा, माता, पिता कहे जाते हैं, अर्थात् नायक के नगर के राजा-रानी नायक के माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धि अधिकारियों सम्बन्धियों और पात्रों के नाम व वर्णन कहे जाते हैं।

समवसरण, धर्माचार्य–धर्माचार्य का पदार्पण, धर्मकथा कहनेवाले, धर्मकथा कही जाती है, अर्थात् नायक के जो धर्मकथा करनेवाले थे उनका जिस उद्यान आदि में जैसा पदार्पण हुआ, वहां धर्मकथा सुनने के लिए जैसे परिषदा गयी, धर्मकथा कहनेवाले आचार्यश्री आदि ने जो धर्मकथा कही, या अन्य भी जिस प्रकार से नायक का धर्माचार्य (साधु, साध्वी, श्रावक या श्राविका) से संयोग हुआ और उन्होंने नायक को जो सद्बोध दिया, वह बताया जाता है।

नायक की इहलौकिक पारलौकिक ऋद्धि कही जाती है। अर्थात् नायक के द्वारा पूछने पर या धर्माचार्य के शिष्य आदि किसी अन्य द्वारा पूछे जाने पर या प्रसंगवश स्वयं धर्माचार्य ने

नायक को जो उसका पूर्वभव बताया, या नायक को स्वतः अपना पूर्वभव का स्मरण आया, इस पूर्वभव में वह जो था, जैसा था, जो करणी की थी, उसके फलस्वरूप इस भव में जो बना, जैसा बना, जो पाया आदि बताये जाते हैं।

भोग परित्याग–प्रव्रज्या–धर्म धारण कहे जाते हैं, अर्थात् धर्मकथा सुनकर नायक ने संसार के कामभोगों का त्याग किया; माता पिता से जो चर्चा की, उत्तर दिये; शक्ति अनुसार साधु-धर्म, या श्रावकधर्म धारण किया, उसके अनुराग या प्रेरणा आदि से अन्य पुरुषों ने भी जो भोग का त्याग किया, धर्म धारण किया इत्यादि का वर्णन किया जाता है।

पर्याय–अवस्था–आयु कही जाती है अर्थात् नायक आदि ने जितने वर्ष की वय में पाणिग्रहण किया, राज्य सिंहासन प्राप्त किया, दीक्षा ग्रहण की, जितने वर्ष दीक्षा पाली, प्रतिमा की आराधना की; जितनी सर्व आयु प्राप्त की, आदि का तथा अन्य सम्बन्धित जनों की पर्याय का परिमाण बताया जाता है।

श्रुतपरिग्रह–शास्त्राभ्यास बताया जाता है, अर्थात् नायक ने साधुधर्म धारणकर सामायिक आदि ग्यारह अंग, चौदह पूर्व, बारह अंग आदि का जितना ज्ञान प्राप्त किया, या श्रावक धर्म धारणकर नवतत्व पच्चीस क्रिया आदि जितना सूत्रार्थ प्राप्त किया, उसका तथा अन्य सम्बन्धित लोगों के श्रुतपरिग्रह का परिमाण बताया जाता है।

तप उपधान बताया जाता है, अर्थात् नायक ने साधुधर्म धारणकर गुणरत्न संवत्सर, बारह भिक्षु-प्रतिमा आदि जिस तप

का जिस विधि से जितनी बार जितने काल तक आराधन किया, श्रावक ने एकान्तर, ग्यारह उपासक-प्रतिमा आदि जिस तप का आराधन किया उसका तथा अन्य सम्बन्धित प्राणियों की तपाराधना का परिमाण आदि बताया जाता है।

संलेखना–देह व कषाय को कृश करना, भक्त प्रत्याख्यान अनशन, पादोपगमन–वृक्षमूल के समान (या पादपोपगमन–भूमि पर पड़ी वृक्ष की छिन्न शाखा के समान) देह को निश्चल बनाना, कहे जाते हैं। अर्थात् नायक आदि ने अपने जीवन के अन्तिम समय में जिस विधि से संलेखना की, आलोचना की, भक्त प्रत्याख्यान किया, वह जितने दिन चला, इंगित या पादोपगमन जो संथारा धारण किया, वह बताया जाता है।

देवलोक गमन, सुकुल प्रत्याजाति–अच्छे कुल में जन्म, पुनः बोधिलाभ–भवान्तर में धर्म प्राप्ति, कहे जाते हैं, अर्थात् नायक आदि यदि मोक्ष में नहीं गये, तो जिस देवलोक आदि में गये, वहां जितनी ऋद्धि व स्थिति पायी, वहाँ से निकलकर, जहाँ जिस क्षेत्र में, जिस जाति कुल में, जिस घराने में, जन्म लिया, वहां जैसे धर्मकथा, सम्यक्त्व व दीक्षा प्राप्त की, इत्यादि बातें कही जाती हैं।

अन्तक्रिया–भव, संसार या कर्मों को अन्त करनेवाली शैलेशी आदि क्रिया कही जाती है अर्थात् नायक सीधे या भव करके जैसे कर्मों का क्षयकर मोक्ष में गये, वह बताया जाता है।

दस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइयासयाइं, एगमेगाए अक्खाइयाए

पंच पंच उवक्खाइयासयाइं एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइयउवक्खाइयासयाइं एवामेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ कहाणगकोडीओ हवंतित्ति समक्खायं।

अर्थ-जो धर्मकथाएँ हैं, उनके दस वर्ग हैं। उनमें एक एक धर्मकथा में पाँचसौ पाँचसौ आख्यायिकाएँ हैं। एक एक आख्यायिका में पाँचसौ पाँचसौ उपाख्यायिकाएँ हैं। एक एक उपाख्यायिका में पाँचसौ पाँचसौ आख्यायिका+उपाख्यायिका हैं-यों एक अरब पच्चीस करोड़ कथाएँ हैं। परन्तु अपुनरक्त मात्र सब मिलाकर ३॥ कोटि कथाएँ हैं, ऐसा कहा है। (वर्त्तमान मे ६४ इन्द्रों की २०६ इन्द्राणियों की कथाएँ है।)

नायाधम्मकहाणं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ।

अर्थ-ज्ञाताधर्मकथा में परित्त वाचनाएँ, संख्येय अनुयोग द्वार, संख्येय वेष्ट, संख्येय श्लोक, संख्येय निर्युक्तियाँ, संख्येय संग्रहणियाँ और संख्येय प्रतिपत्तियाँ हैं।

से णं अंगट्ठयाए छट्ठे अंगे, दो सुयक्खंधा, एगूणवीसं अज्झयणा, एगूणवीसं उद्देसणकाला, एगूणवीसं समुद्देसण काला।

भावार्थ-ज्ञाताधर्मकथा, अंगों में छठा अंग है। इसमें दो श्रुतस्कंध हैं, (पहले श्रुतस्कंध में-) १९ अध्ययन हैं, १ उत्क्षिप्त-

मेघकुमार आदि । १९ उद्देशनकाल हैं । १९ समुद्देशन काल हैं ।

संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा ।

भावार्थ–संख्यात सहस्रपद (५ लाख ७६ सहस्र पद) हैं । संख्येय अक्षर (वर्त्तमान में ५४५० श्लोक परिमाण) हैं । अनन्तगम हैं, अनन्त पर्यव हैं, परित्त त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं ।

सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति, दंसिज्जंति निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति ।

अर्थ–पूर्व सूत्रानुसार ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ । से त्तं नायाधम्मकहाओ ॥५०॥

अर्थ–पूर्व सूत्रानुसार ।

अब सूत्रकार सातवें अंग का परिचय देते हैं ।

से किं तं उवासगदसाओ ? उवासगदसासुणं समणोवासयाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, सीलव्व-

यगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्जणया, पडिमाओ, उवसग्गा, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ य आघविज्जंति ।

प्रश्न–वह उपासकदसा क्या है ?

उत्तर–('उपासक' का अर्थ है–श्रमण निग्रंथों की उपासना करनेवाला,ऐसे गृहस्थों के जिसमें चरित्र हों। उसे–'उपासकदसा' कहते हैं)

उपासकदसा में श्रमणोपासकों के–(शेष ज्ञाताधर्मकथा सूत्र पृष्ट ४२८ के विषय के अनुसार है ।)

उवासगदसाणं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ ।

अर्थ–पूर्व सूत्रानुसार ।

से णं अंगट्ठयाए सत्तमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला ।

अर्थ–उपासकदसा, अंगों में सातवाँ अंग है । इसका एक श्रुतस्कंध है, दश अध्ययन हैं, दस उद्देशनकाल हैं, दस समुद्देशन काल हैं ।

संखेज्जा पयसहस्सा पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा,

श्रणंता गमा, श्रणंता पज्जवा, परित्ता तसा, श्रणंता थावरा।

अर्थ-संख्येय सहस्रपद हैं (११ लाख ५२ सहस्र पद हैं।) सख्येय (वर्त्तमान में ८१२ श्लोक परिमाण) अक्षर हैं। अनन्त-गम हैं, अनन्त पर्यव हैं, परित्त त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं।

सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा श्राघविज्जंति पन्नविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

अर्थ-पूर्व सूत्रानुसार।

से एवं श्राया, एवं नाया, एवं विन्नाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ। से त्तं उवासगदसाओ ॥५१॥

अर्थ-पूर्व सूत्रानुसार।

अब सूत्रकार श्राठवें अंग का परिचय देते हैं।

से किं तं अंतगडदसाओ? अंतगडदसासु णं अंतगडाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, श्रम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, परिश्राया, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, अंतकिरियाओ, श्राघविज्जंति।

प्रश्न–वह अन्तकृतदसा क्या है ?

उत्तर–(अन्तकृत का अर्थ है–जिन्होंने कर्म, या संसार का अन्त किया, ऐसे साधुओं का जिसमें चरित्र हो, उसे 'अन्तकृत दसा' कहते हैं) ।

अन्तकृतदसा में संसार का अन्त करनेवाले मुनियों के–(शेष ज्ञाताधर्म कथा सूत्र पृष्ठ ४२८ के विषय के अनुसार है)

अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ ।

अर्थ–अन्तकृतदसा में परित्त वाचनाएँ, संख्येय अनुयोगद्वार, संख्येय वेष्ट, संख्येय श्लोक, संख्येय निर्युक्तियाँ, संख्येय संग्रहणियाँ और संख्येय प्रतिपत्तियाँ हैं ।

से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, अट्ठ वग्गा, अट्ठ उद्देसणकाला, अट्ठ समुद्देसणकाला ।

अन्तकृत, अंगों में आठवाँ अंग है । इसका एक श्रुतस्कंध है । आठ वर्ग हैं । (९० अध्ययन हैं–पहले, चौथे, पाँचवें, आठवें वर्ग में दस दस–यों चार के ४० । दूसरे में ८, तीसरे और सातवें में तेरह तेरह–यों दोनों के २६ और छठे में १६ अध्ययन, सब मिलाकर ९० अध्ययन हैं ।) वर्ग के अनुसार आठ उद्देशनकाल हैं और आठ समुद्देशनकाल हैं ।

संखेज्जा पयसहस्सा पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा,

अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा।

अर्थ–संख्येय सहस्र पद हैं (२३ लाख ४ सहस्र पद हैं।) संख्येय (वर्त्तमान में ८५० श्लोक परिमाण) अक्षर हैं। अनन्त गम हैं, अनन्त पर्यव हैं, परित्त त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं।

सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

अर्थ–पूर्व सूत्रानुसार।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ। से त्तं अंतगडदसाओ ॥५२॥

अर्थ–पूर्व सूत्रानुसार।

अब सूत्रकार नौवें अंग का परिचय देते हैं।

से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ? अणुत्तरोववाइयदसासु णं अणुत्तरोववाइयाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, पडिमाओ, उवसग्गा, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, अणुत्तरोववाइय उववत्ती, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ, आघविज्जंति।

प्रश्न–वह अनुत्तरौपपातिक दसा क्या है ?

उत्तर–(अनुत्तरौपपातिक का अर्थ है–जिससे बढ़कर श्रेष्ठ एवं प्रधान अन्य कोई देवलोक नहीं है, ऐसे सर्वोत्तम देवलोक में जो उत्पन्न हुए हैं, ऐसे साधुओं का जिसमें चरित्र हो, उसे 'अनुत्तर औपपातिक दसा' कहते हैं।

अनुत्तर औपपातिकदशा में अनुत्तर औपपातिकों का।–(शेष वर्णन ज्ञाताधर्मकथा के पृष्ट ४२८ के अनुसार है।)

अणुत्तरोववाइयदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ।

अर्थ–पूर्व सूत्रानुसार।

से णं अंगट्ठयाए नवमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, तिन्नि वग्गा, तिन्नि उद्देसणकाला, तिन्नि समुद्देसणकाला।

भावार्थ–यह अंगों में नौवाँ अंग है। इसका एक श्रुतस्कंध है। तीन वर्ग हैं। (तेतीस अध्ययन हैं। पहले तीसरे वर्ग में दस दस–२० और दूसरे वर्ग में १३ सब ३३) तीन उद्देशनकाल हैं, तीन समुद्देशन काल हैं।

संखेज्जाइं, पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंत थावरा।

अर्थ–संख्येय सहस्रपद हैं (४६ लाख ८ सहस्र पद हैं) संख्येय (वर्त्तमान में १९२ श्लोक परिमाण) अक्षर हैं। अनन्त-गम हैं, अनन्त पर्यव हैं। परित्त त्रस हैं। अनन्त स्थावर हैं।

सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

अर्थ–(पुर्व सूत्रानुसार)।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं अणुत्तरोववाइय-दसाओ ॥५४॥

अर्थ-अनुत्तरौपपातिक पढ़नेवाला,––(शेष पूर्व सूत्र के अनुसार)

अब सूत्रकार दसवें अंग का परिचय देते हैं।

से किं तं पण्हावागरणाइं? पण्हावागरणेसु णं अट्ठुत्तरं पसिणसयं, अट्ठुत्तरं अपसिणसयं, अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं; तंजहा–अंगुट्ठपसिणाइं, बाहुपसिणाइं, अद्दागपसिणाइं; अन्नेवि विचित्ता विज्जाइसया, नागसुवण्णेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति।

प्रश्न–वह प्रश्नव्याकरण क्या है?

(जिसमें प्रश्न का व्याकरण अर्थात् उत्तर हो, उसे 'प्रश्न व्याकरण' कहते हैं)

उत्तर–प्रश्नव्याकरण में १०८ प्रश्न–सविधि जपने से पूछने पर तीनों काल की शुभ अशुभ कहनेवाली विद्या, १०८ अप्रश्न–सविधि जपने पर बिना पूछे तीनों काल की शुभ अशुभ कहने वाली विद्या, १०८ प्रश्न-अप्रश्न–सविधि जपने पर पूछने पर या बिना पूछे भी तीनों काल की शुभाशुभ कहनेवाली विद्याएँ कही जाती हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–१अंगुष्ठ प्रश्न २ बाहु प्रश्न ३ आदर्श प्रश्न आदि। इनसे अन्य भी सैकड़ों विचित्र विद्याएं और विद्याओं के अतिशय कहे जाते हैं, तथा मुनियों के जो नागकुमार स्वर्णकुमार आदि के साथ दिव्य संवाद हुए वे कहे जाते हैं।

(वर्त्तमान में पाँच आश्रव और पाँच संवर द्वार का वर्णन है।)

पण्हावागरणाणं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेजाओ पडिवत्तीओ।

अर्थ–पूर्व सूत्रानुसार।

से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे पणयालीसं अज्झयणा, पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसणकाला।

अर्थ–यह अंगों में दसवाँ अंग है। इसका एक श्रुतस्कंध है। ४५ अध्ययन हैं। ४५ उद्देशनकाल और ४५ समुद्देशनकाल हैं।

(वर्त्तमान में दो श्रुतस्कंध हैं १० अध्ययन हैं–पहले श्रुत-स्कंध में १ प्राणातिपात २ मृषावाद ३ अदत्तादान ४ अब्रह्म और ५ परिग्रह, ये पाँच अध्ययन हैं। जिनमें पाँच आश्रवों के –१ स्वरूप २ नाम ३ क्रिया ४ फल और ५ कर्त्ता, इन पाँच का वर्णन किया है। दूसरे श्रुतस्कंध में १ अहिंसा २ सत्य ३ दत्त ४ ब्रह्मचर्य और ५ अपरिग्रह, ये पाँच अध्ययन हैं। जिनमें पाँच संवरों के–१ स्वरूप २ नाम ३ भावना ४ फल और ५ कर्त्ता का वर्णन किया है। १० उद्देशनकाल हैं, १० समुद्देशन काल है)।

संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा।

अर्थ–संख्यात सहस्रपद हैं। (९२ लाख १६ सहस्र पद हैं) संख्येय (वर्त्तमान में १३०० श्लोक परिमाण) अक्षर हैं। अनन्त गम हैं, अनन्त पर्यव हैं, परित्त त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं।

सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

अर्थ--पूर्व सूत्रानुसार।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ। से त्तं पण्हावागरणाइं ॥५४॥

अर्थ--प्रश्नव्याकरण पढ़नेवाला--(शेष पूर्व सूत्र के अनुसार है।)

अब सूत्रकार ग्यारहवें अंग का परिचय देते हैं।

से किं तं विवागसुयं ? विवागसुए णं सुकडदुक्कडाणं कम्माणं फलविवागे आघविज्जइ, तत्थ णं दस दुहविवागा दस सुहविवागा।

प्रश्न--विपाकश्रुत किसे कहते हैं ?

उत्तर--(विपाक का अर्थ है--शुभ अशुभ कर्मों की स्थिति पकने पर उनका उदय में आया हुआ परिणाम (फल)। जिस श्रुत में ऐसा परिणाम बताया हो, उसे 'विपाकश्रुत' कहते हैं।

विपाकश्रुत में सुकृत और दुष्कृत कर्मों के फल स्वरूप होनेवाला परिणाम कहा जाता है। इसमें दस दुःख विपाक हैं और दस सुखविपाक है।

से किं तं दुहविवागा ? दुहविवागेसु णं दुहविवागाणं नगराइं, उज्जाणाइं, वणसंडाइं, चेइयाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा निरयगमणाइं, संसारभवपवंचा, दुहपरंपराओ, दुकुलपच्चायाइओ, दुल्लहबोहियत्तं आघविज्जइ। से त्तं दुहविवागा।

प्रश्न--वह दुःख विपाक क्या है ?

उत्तर--दुःखविपाक में हिंसादि दुष्कृत कर्मों के फल स्वरूप दुःख परिणाम पानेवाले दस जीवों के--(शेष पूर्व सूत्रानुसार)

से किं तं सुहविवागा ? सुहविवागेसु णं सुहविवागाणं नगराइं, उज्जाणाइं, वणसंडाइं, चेइयाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा, पव्वज्जाओ, परियागा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं सुहपरंपराओ, सुकुलपच्चायाईओ, पुण-बोहिलाभा, अंतकिरियाओ, आघविज्जंति ।

प्रश्न—वह सुखविपाक क्या है ?

उत्तर—सुखविपाक में धर्मदान आदि सुकृत कर्मों के फल-स्वरूप सुखद परिणाम पानेवाले दस जीवों के—(पूर्व सूत्रानुसार)

विवागसुयस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ ।

अर्थ—(पूर्व सूत्रानुसार)

से णं अंगट्ठयाए इक्कारसमे अंगे, दो सुयक्खंधा, वीसं अज्झयणा, वीसं उद्देसणकाला, वीसं समुद्देसणकाला ।

अर्थ—यह अंगों में ग्यारहवाँ अंग है । इसके दो श्रुतस्कंध हैं । वीस अध्ययन हैं । १० उद्देशनकाल और १० समुद्देशनकाल हैं ।

संखिज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा।

अर्थ–संख्येय सहस्रपद हैं। (१ करोड़ ८४ लाख ३२ सहस्र पद हैं) संख्येय (वर्त्तमान में १२५० श्लोक परिमाण) अक्षर हैं। अनन्तगम हैं, अनन्त पर्यव हैं, परित्त त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं।

सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

अर्थ–पूर्व सूत्रानुसार।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विन्नाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ। से त्तं विवागसुयं।५६।

अर्थ–क्रिया की अपेक्षा–विपाकश्रुत पढ़नेवाला–(शेष पूर्व सूत्र के अनुसार)।

विशेष–ग्यारह अगों के पदों का योग ३ करोड़ ६८ लाख ४६ सहस्र है। वर्त्तमान में मात्र ३५ सहस्र ६ सौ २६ छब्बीस श्लोक परिमाण अक्षर रहे हैं।

अब सूत्रकार, श्रुतपुरुष के मस्तकभूत ऐसे बारहवें अंग का परिचय देते हैं।

से किं तं दिट्ठिवाए? दिट्ठिवाएणं सव्वभावपरू-

वणा आघविज्जइ, से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—१ परिकम्मे २ सुत्ताइं ३ पुव्वगए ४ अणुओगे ५ चूलिया।

प्रश्न—वह दृष्टिवाद क्या है ?

उत्तर—(जिसमें सभी नय-दृष्टियों का कथन हो, 'उसे दृष्टि-वाद' कहते हैं।)

विषय—दृष्टिवाद में सभी भावों की—सर्व द्रव्य, गुण पर्यायों की प्ररूपणा कही जाती है।

भेद—दृष्टिवाद के संक्षेप में पाँच भेद इस प्रकार हैं;—१ परिकर्म—योग्यता संपादन की भूमिका, २ सूत्र—विषय सूचना, अनुक्रमणिका, ३ पूर्वगत—मुख्य प्रतिपाद्य विषय ४ अनुयोग—अनुकूल विषय, ५ चूलिका—उक्त अनुक्त संग्रह।

से किं तं परिकम्मे ? परिकम्मे सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—१ सिद्धसेणियापरिकम्मे २ मणुस्ससेणियापरिकम्मे ३ पुट्ठसेणियापरिकम्मे ४ ओगाढसेणियापरिकम्मे ५ उव-संपज्जणसेणियापरिकम्मे ६ विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ७ चुयाचुयसेणियापरिकम्मे।

प्रश्न—वह परिकर्म क्या है ?

उत्तर—परिकर्म के मूल भेद सात हैं। वे इस प्रकार हैं—१ सिद्ध-श्रेणिका परिकर्म २ मनुष्य-श्रेणिका परिकर्म ३ पृष्ट-श्रेणिका परिकर्म ४ अवगाढ़-श्रेणिका परिकर्म ५ उपसंपदा-श्रेणिका परिकर्म ६ विप्रजहन-श्रेणिका परिकर्म ७ च्युत अच्युत-

श्रेणिका परिकर्म ।

विवेचन—दृष्टिवाद के उत्तरवर्ती चार भेद—१ सूत्र, २ पूर्वगत, ३ अनुयोग और ४ चूलिका के सूत्रार्थ को ग्रहण करने की योग्यता संपादन करने में निमित्तभूत भूमिका रूप शास्त्र को 'परिकर्म' कहते हैं।

दृष्टान्त—जैसे गणित शास्त्र में पहले अंक, गिनती, पहाड़े जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि सीखे बिना शेष गणित शास्त्र सीखा नहीं जा सकता। इन्हें सीखने पर ही उन्हें सीखा जा सकता है, वैसे ही दृष्टिवाद मैं पहले परिकर्म शास्त्र को सीखे बिना दृष्टिवाद के शेष भेदों को सीखा नहीं जा सकता, परिकर्म शास्त्र सीखने पर ही आगे सीखा जा सकता है।

अब सूत्रकार परिकर्म के इन मूल भेदों के उत्तर भेद बतलाते हैं।

से किं तं सिद्धसेणियापरिकम्मे ? सिद्धसेणियापरिकम्मे चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—१ माउगापयाइं २ एगट्ठियपयाइं ३ अट्ठपयाइं ४ पाढोआगासपयाइं ५ केउभूयं ६ रासिबद्धं ७ एगगुणं ८ दुगुणं ९ तिगुणं १० केउभूयं ११ पडिग्गहो १२ संसारपडिग्गहो १३ नन्दावत्तं, १४ सिद्धावत्तं। से त्तं सिद्धसेणियापरिकम्मे।

प्रश्न—वह सिद्धश्रेणिका परिकर्म क्या है ?

उत्तर—सिद्धश्रेणिका परिकर्म के चौदह भेद हैं। वे इस प्रकार हैं—१ मातृका पद—मूल शब्द, २ एकार्थिक पद—पर्याय-

वाची शब्द, ३ अर्थपद–शब्दार्थ ४ पृथक् आकाश पद–विस्तृत अर्थ, ५ केतुभूत–शिखर स्वरूप, ६ राशिबद्ध–वर्गीकृत ७ एक-गुण ८ द्वि-गुण ९ त्रि-गुण १० केतुभूत ११ प्रतिग्रह १२ संसार प्रतिग्रह १३ नन्दावर्त और १४ सिद्ध आवर्त्त। यह सिद्ध श्रेणिका परिकर्म है।

से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ? मणुस्ससेणिया-परिकम्मे चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–१ माउयापयाइं २ एगट्ठियपयाइं ३ अट्ठपयाइं ४ पाढोआगासपयाइं ५ केउभूयं ६ रासिबद्धं ७ एगगुणं ८ दुगुणं ९ तिगुणं १० केउभूयं ११ पडिग्गहो १२ संसारपडिग्गहो १३ नंदा-वत्तं १४ मणुस्सावत्तं। से त्तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे।

प्रश्न–वह मनुष्यश्रेणिका परिकर्म क्या है ?

उत्तर–मनुष्यश्रेणिका परिकर्म के चौदह भेद हैं। वे इस प्रकार हैं–१ मातृका पद, २ एकार्थिक पद, ३ अर्थ पद, ४ पृथक् आकाश पद, ५ केतुभूत ६ राशिबद्ध ७ एक गुण ८ द्वि गुण ९ त्रि गुण १० केतुभूत ११ प्रतिग्रह १२ संसार प्रतिग्रह १३ नन्दावर्त्त १४ मनुष्य आवर्त। यह मनुष्यश्रेणिका परिकर्म है।

से किं तं पुट्ठसेणियापरिकम्मे ? पुट्ठसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तंजहा–१ पाढोआगासपयाइं २ केउभूयं ३ रासिबद्धं ४ एगगुणं ५ दुगुणं ६ तिगुणं ७ केउभूयं ८ पडिग्गहो ९ संसारपडिग्गहो १० नंदावत्तं

११ पुट्ठावत्तं । से त्तं पुट्ठसेणियापरिकम्मे ।

प्रश्न--वह पृष्टश्रेणिका परिकर्म क्या है ?

उत्तर--पृष्टश्रेणिका परिकर्म के ११ भेद हैं । वे इस प्रकार हैं–१ पृथक् आकाश पद २ केतुभूत ३ राशिबद्ध ४ एक गुण ५ द्वि गुण ६ त्रि गुण ७ केतुभूत ८ प्रतिग्रह ९ संसार प्रतिग्रह १० नन्दावर्त्त और ११ पृष्ट आवर्त्त । यह पृष्टश्रेणिका परिकर्म है ।

से किं तं ओगाढसेणियापरिकम्मे ? ओगाढसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तंजहा–१ पाढोआगासपयाइं २ केउभूयं ३ रासिबद्धं ४ एगगुणं ५ दुगुणं ६ तिगुणं ७ केउभूयं ८ पडिग्गहो ९ संसारपडिग्गहो १० नंदावत्तं ११, ओगाढावत्तं । से त्तं ओगाढसेणियापरिकम्मे ।

प्रश्न–वह अवगाढ़श्रेणिका परिकर्म क्या है ?

उत्तर–अवगाढ़श्रेणिका परिकर्म के ११ भेद हैं । वे इस प्रकार हैं–१ पृथक् आकाशपद २ केतुभूत ३ राशिबद्ध ४ एक गुण ५ द्वि गुण ६ त्रि गुण ७ केतुभूत ८ प्रतिग्रह ९ संसार प्रतिग्रह १० नन्दावर्त्त और ११ अवगाढ़ आवर्त्त । यह अवगाढ़श्रेणिका परिकर्म है ।

से किं तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ? उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा–

पाढोआगासपयाइं २ केउभूयं ३ रासिबद्धं ४ एगगुणं ५ दुगुणं ६ तिगुणं ७ केउभूयं ८ पडिग्गहो ९ संसार-पडिग्गहो १० नंदावत्तं ११, उवसंपज्जणावत्तं। से त्तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे।

प्रश्न—वह उपसंपादन-श्रेणिका परिकर्म क्या है ?

उत्तर—उपसंपादनश्रेणिका परिकर्म के ११ भेद हैं। वे इस प्रकार हैं—१ पृथक् आकाश पद २ केतुभूत ३ राशिबद्ध ४ एक गुण ५ द्वि गुण ६ त्रि गुण ७ केतुभूत ८ प्रतिग्रह ९ संसार प्रतिग्रह १० नन्दावर्त्त ११ उपसंपादन आवर्त्त। यह उप-संपादन श्रेणिका है।

से किं तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ? विप्पजह-णसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—१ पाढोआगासपयाइं २ केउभूयं ३ रासिबद्धं ४ ४ एगगुणं ५ दुगुणं ६ तिगुणं ७ केउभूयं ८ पडिग्गहो ९ संसार-पडिग्गहो १० नंदावत्तं ११ विप्पजहणावत्तं। से त्तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे।

प्रश्न—वह विप्रजहनश्रेणिका परिकर्म क्या है ?

उत्तर—विप्रजहनश्रेणिका परिकर्म के ११ भेद हैं। वे इस प्रकार हैं—१ पृथक् आकाशपद २ केतुभूत ३ राशिबद्ध ४ एक-गुण ५ द्वि-गुण ६ त्रि-गुण ७ केतुभूत ८ प्रतिग्रह ९ संसार प्रति-ग्रह १० नन्दावर्त्त ११ विप्रजह आवर्त्त। यह विप्रजहन-श्रेणिका परिकर्म है।

किं तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ? चुयाचुयसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पन्नत्ते, तं जहा—१ पाढोआगासपयाइं २ केउभूयं ३ रासिबद्धं ४ एगगुणं ५ दुगुणं ६ तिगुणं ७ केउभूयं ८ पडिग्गहो ९ संसारपडिग्गहो १० नंदावत्तं ११ चुयाचुयवत्तं । से त्तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ।

प्रश्न—वह च्युत-अच्युत-श्रेणिका परिकर्म क्या है ?

उत्तर—च्युत-अच्युत-श्रेणिका परिकर्म के ११ भेद हैं। वे इस प्रकार हैं—१ पृथक् आकाशपद २ केतुभूत ३ राशिबद्ध ४ एक-गुण ५ द्वि-गुण ६ त्रि-गुण ७ केतुभूत ८ प्रतिग्रह ९ संसार प्रतिग्रह १० नन्दावर्त्त ११ च्युत-अच्युत-आवर्त्त। यह च्युत-अच्युत-श्रेणिका परिकर्म है।

छ चउक्कनइयाइं, सत्त तेरासियाइं। से त्तं परिकम्मे।

विशेष—इनमें आदि के छह परिकर्म स्वसमय वक्तव्यता निबद्ध थे—जैनमत बतलाते थे और अन्तिम सातवाँ च्युत अच्युत-श्रेणिका परिकर्म गोशालक समय की वक्तव्यता निबद्ध था—गोशालक मत को बतलाता था।

यों परिकर्म के सब उत्तरभेद ८३ हुए।

अब सूत्रकार इन में किन परिकर्मों का किन नयों से अध्ययन किया जाता था-यह बताते हैं।

इनमें आदि के छ परिकर्म चार नयिक हैं तथा सात परि-

कर्म त्रैराशिक हैं ।

जैनमत के अनुसार नय दो हैं–१ द्रव्यार्थिक नय और २ पर्यायार्थिक नय । द्रव्यार्थिक नय के दो भेद हैं–१ संग्रह और २ व्यवहार, तथा पर्यायार्थिक नय के भी दो भेद हैं–१ ऋजुसूत्र और २ शब्द ।

आदि के छह परिकर्म जैनमत को बतलाते थे, अतएव उनका अध्ययन इन चार नयों से किया जाता था ।

अन्यत्र नय सात बताये गये हैं, पर यहाँ सामान्यग्राही नैगम को संग्रह में, विशेषग्राही नैगम को व्यवहार में और समभिरूढ़ तथा एवंभूत नय को शब्द नय में गर्भित मानलिया है । अतएव यहां चार नय ही कहे हैं ।

गोशालक का मत 'त्रैराशिक' कहलाता था । क्योंकि वह प्रत्येक की तीन राशियाँ बताता था । जैसे राशियाँ तीन हैं–१ जीव राशि, २ अजीव राशि और ३ मिश्र राशि । उनके मतानुसार नय की भी तीन राशियाँ थीं–१ द्रव्यार्थिक २ पर्यायार्थिक और ३ द्रव्य-पर्यायार्थिक ।

सातवें परिकर्म का अध्ययन, नय की इन तीन राशियों से किया जाता था, क्योंकि सातवाँ परिकर्म गोशालक मत बतलाता था ।

शेष पूर्व के छह परिकर्मों का अध्ययन, नय की इन तीन राशियों से भी किया जाता था । जिससे योग्यता अधिक संपादित हो । यह परिकर्म है ।

से किं तं सुत्ताइं ? सुत्ताइं बावीसं पन्नत्ताइं, तं जहा–१ उज्जुसुयं २ परिणयापरिणयं ३ बहुभंगियं ४ विजय-

चरियं ५ अणंतरं ६ परंपरं ७ आसाणं ८ संजूहं ९ संभिण्णं १० आहव्वायं ११ सोवत्थियावत्तं १२ नंदावत्तं १३ बहुलं १४ पुट्ठापुट्ठं १५ वियावत्तं १६ एवंभूयं १७ दुयावत्तं १८ वत्तमाणपयं १९ समभिरूढं २० सव्वओभद्दं २१ पस्सासं २२, दुप्पडिग्गहं।

प्रश्न—वह सूत्र क्या है ?

उत्तर—जिसमें पूर्वगत में आनेवाले सूत्रार्थों की सूचना की जाती है, सर्व द्रव्यों के और सर्वपर्यायों के भंग विकल्पों की सूचना की जाती है, ऐसे विषय की सूचिभूत अनुक्रमणिका रूप शास्त्र को 'सूत्र' कहते हैं।

भेद—सूत्रों के बावीस भेद हैं। वे इस प्रकार हैं-१ ऋजु-सूत्र २ परिणत ३ बहुभंगिक ४ विजय चरित ५ अनन्तर ६ पर-पर ७ आसान ८ संयूय ९ संभिन्न १० यथावाद ११ स्वस्तिक आवर्त्त १२ नन्दावर्त्त १३ बहुल १४ पृष्ट अपृष्ट १५ व्यावर्त्त १६ एवंभूत १७ द्विक आवर्त्त १८ वर्त्तमानपद १९ समभिरूढ़ २० सर्वतोभद्र २१ प्रशिष्य २२ दुष्प्रतिग्रह।

इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं छिन्नच्छेयनइयाणि ससमयसुत्तपरिवाडीए; इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं अच्छिन्नच्छेयनइयाणि आजीवियसुत्तपरिवाडीए; इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं तिगणइयाणि तेरासियसुत्तपरिवाडीए; इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कनइयाणि ससमयसुत्त-परिवाडीए; एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीई सुत्ताइं

भवंतित्ति मक्खायं। से त्तं सुत्ताइं।

अर्थ–ये बावीस सूत्र, स्वसमय सूत्र की परिपाटी मे छिन्न छेद नय वाले हैं। ये बावीस सूत्र आजीविक सूत्र की परिपाटी में अछिन्नछेद नय वाले हैं। ये बावीस सूत्र त्रैराशिक सूत्र की परिपाटी में तीन नय वाले हैं, ये बावीस सूत्र स्वसमय सूत्र की परिपाटी से चार नय वाले हैं। यों ये बावीस ही सूत्र सब मिलाकर ८८ सूत्र हो जाते हैं, ऐसा कहा है।

विवेचन–जो नय प्रत्येक सूत्र को अन्य सूत्रों से भिन्न स्वीकार करे, संबंधित स्वीकार नहीं करे, उसे 'छिन्नच्छेद नय' कहते हैं। जो नय प्रत्येक सूत्र को अन्य सूत्रों से संबंधित स्वीकार करे, भिन्न स्वीकार नहीं करे, उसे 'अछिन्नच्छेद नय' कहते हैं।

जैनमतानुसार जब इन बावीस सूत्रों की व्याख्या की जाती है, तो प्रत्येक सूत्र में जितने शब्द होते हैं, उन्हीं शब्दों के आश्रय से उस सूत्र की व्याख्या की जाती है, परन्तु उस सूत्र की व्याख्या में इधर उधर के सूत्रों के शब्दों आदि का संबंध जोड़कर व्याख्या नहीं की जाती। और जब गौशालक मतानुसार व्याख्या की जाती है, तब प्रत्येक सूत्र में जितने शब्द हैं, उनमें अन्य सूत्रों के शब्द आदि का संबंध जोड़कर व्याख्या की जाती है, उन्हीं शब्दों के आश्रय से व्याख्या नहीं की जाती।

जब जैनमतानुसार इन सूत्रों की व्याख्या की जाती है, तो पहले बताये हुए जैनमत अभिमत–१ संग्रह २ व्यवहार ३ ऋजुसूत्र और ४ शब्द, इन चार नयों से व्याख्या की जाती है और जब गौशालक मतानुसार इन सूत्रों की व्याख्या की जाती है,

तो पहले बताए हुए, गौशालक मत अभिमत–१ द्रव्यार्थिक २ पर्यायार्थिक और ३ द्रव्य-पर्यायार्थिक–इन तीन नयों के अनुसार व्याख्या की जाती है।

इस प्रकार १ छिन्नच्छेद नय २ अच्छिन्नच्छेद नय ३ तीन नय और ४ चार नय–यों चार प्रकार से इन बावीस सूत्रों की व्याख्या करने पर, ये बावीस सूत्र ही २२ × ४–८८ सूत्र हो जाते हैं। यह सूत्र है।

से किं तं पुव्वगए ? पुव्वगए चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–१ उप्पायपुव्वं २ अग्गाणीयं ३ वीरियं ४ अत्थि-नत्थिप्पवायं ५ नाणप्पवायं ६ सच्चप्पवायं ७ आयप्पवायं ८ कम्मप्पवायं ९ पच्चक्खाणप्पवायं १० विज्जाणुप्प-वायं ११ अबंझं १२ पाणाऊ १३ किरियाविसालं १४ लोकबिंदुसारं।

प्रश्न– वह पूर्वगत क्या है?

उत्तर–पूर्वगत के चौदह भेद हैं। (पूर्व चौदह हैं) वे इस प्रकार हैं–१ उत्पाद पूर्व २ अग्रायणीय पूर्व ३ वीर्यप्रवाद पूर्व ४ अस्तिनास्ति-प्रवाद पूर्व ५ ज्ञानप्रवाद पूर्व ८ ६ सत्य-प्रवाद पूर्व ७ आत्मप्रवाद पूर्व ८ कर्मप्रवाद पूर्व ९ प्रत्याख्यान-प्रवाद पूर्व १० विद्यानुप्रवाद पूर्व ११ अवन्ध्य पूर्व १२ प्राणायु पूर्व १३ क्रियाविशाल पूर्व और १४ लोक-बिन्दुसार पूर्व।

विवेचन–जैन शासन में, तीर्थंकर तीर्थप्रवर्तन काल में गण-धरों को (जो सकल श्रुत के अर्थों की गहराई में उतरने में

समर्थ होते हैं) सबसे पहले जो महान् अर्थ कहते हैं, उन महान् अर्थों को जिस सूत्र में गणधर गूँथते हैं, उसे 'पूर्वगत' कहते हैं।

विषय-१ उत्पाद पूर्व में सर्व द्रव्यों के और सर्व पर्यायों के उत्पाद (उत्पत्ति) का विस्तार से कथन था।

२ अग्रायणीय पूर्व में सर्व द्रव्यों सर्व पर्यायों और सर्व जीव विशेषों के परिमाण का विस्तृत ज्ञान था।

३ वीर्यप्रवाद पूर्व में अजीवों, सिद्धों तथा संसारी जीवों के वीर्य का विस्तार से कथन था।

४ अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व में लोक में धर्मास्तिकाय आदि जो वस्तुएँ हैं, तथा गधे का सींग आदि जो वस्तुएँ नहीं हैं, उनका विस्तार से कथन था।

५ ज्ञानप्रवाद पूर्व में मतिज्ञान आदि पांच ज्ञानों का, तीन अज्ञानों का एवं चार दर्शनों का विस्तार से कथन था।

६ सत्यप्रवाद पूर्व में सत्यभाषा आदि चार भाषाओं का या सतरह प्रकार के संयम और असंयम का विस्तार से कथन था।

७ आत्मप्रवाद पूर्व में द्रव्य आत्मा आदि-आठ आत्माओं का विस्तार से कथन था।

८ कर्मप्रवाद पूर्व में ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों की प्रकृति आदि का विस्तार से कथन था।

९ प्रत्याख्यानप्रवाद पूर्व में मूलगुण प्रत्याख्यान आदि का विस्तार से कथन था।

१० विद्यानुप्रवाद पूर्व में अनेक अतिशय संपन्न विद्याओं की साधना आदि का विस्तार से कथन था।

११ अबन्ध्य पूर्व में ज्ञान, तप, संयम आदि सुकृत तथा प्रमाद कषाय आदि दुष्कृत, नियम से शुभ अशुभ फल देते हैं, कभी विफल नहीं होते, इसका विस्तार से कथन था।

१२ प्राणायु पूर्व में, श्रोत्रबल प्राण आदि प्राणों का तथा नरकायु आदि आयुओं का विस्तार से कथन था।

१३ क्रियाविशाल पूर्व में पच्चीस क्रिया, छेद क्रिया आदि का विस्तार से कथन था।

१४ लोकबिन्दुसार पूर्व में सर्वाक्षर सन्निपात लब्धि उत्पन्न हो, ऐसा सर्वोत्तम ज्ञान था।

पूर्वों के पदों का परिमाण इस प्रकार है।

पहले उत्पाद पूर्व में १ करोड़ पद थे।
दूसरे अग्रायणीय पूर्व में ९६ लाख।
तीसरे वीर्यप्रवाद पूर्व में ७० लाख।
चौथे अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व में ६० लाख।
पाँचवें ज्ञानप्रवाद पूर्व में एक कम १ करोड़।
छठे सत्यप्रवाद पूर्व में छह अधिक १ करोड़।
सातवें आत्मप्रवाद पूर्व में २६ करोड़।
आठवें कर्मप्रवाद पूर्व में १ करोड़ ८० सहस्र।
नौवें प्रत्याख्याख्यान प्रवाद पूर्व में ८४ लाख।
दसवें विद्यानुप्रवाद पूर्व में १ करोड़ १० लाख।
ग्यारहवें अवन्ध्य पूर्व में २६ करोड़।
बारहवें प्राणायु पूर्व में १ करोड़ ५६ लाख।
तेरहवें क्रिया विशाल पूर्व में ९ करोड़।

चौदहवें लोकबिन्दुसार पूर्व में १२ करोड़ ५० लाख पद थे। इन सब को मिलाकर कुल ८३ करोड़ २६ लाख ८० सहस्र ५ पद थे।

मषी परिमाण—पहले उत्पादपूर्व को लिखने के लिए १ हस्ति परिमाण मषी (स्याही), दूसरे अग्रायणीय पूर्व के लिए २ हस्ति परिमाण, तीसरे वीर्यप्रवाद पूर्व के लिए ४ हस्ति परिमाण, चौथे अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व के लिए ८ हस्ति परिमाण, पाँचवें ज्ञानप्रवाद पूर्व के लिए १६ हस्ति परिमाण, छठें सत्यप्रवाद पूर्व के लिए ३२ हस्ति परिमाण, सातवें आत्मप्रवाद पूर्व के लिए ६४ हस्ति प्रमाण, आठवें कर्मप्रवाद पूर्व के लिए १२८ हस्ति परिमाण, नौवें प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व के लिए २५६ हस्ति परिमाण, दशवें विद्यानुप्रवाद पूर्व के लिए ५१२ हस्ति परिमाण, ग्यारहवें अबन्ध्य पूर्व के लिए १०२४ हस्ति परिमाण, बारहवें प्राणायु पूर्व के लिए २०४८ हस्ति परिमाण, तेरहवें क्रियाविशाल पूर्व के लिए ४०९६ हस्ति परिमाण और चौदहवें लोक-बिन्दु-सार पूर्व के लिए ८१९२ हस्ति परिमाण मषी की आवश्यकता होती है। सभी के लिए कुल मिलाकर १६ सहस्र ३ सौ ८३ हस्ति परिमाण मषी की आवश्यकता होती है। जितने जल में अम्बाड़ी सहित एक हाथी डूब जाय, उतने जल परिमाण मषी को 'एक हस्ति परिमाण' मषी कहते हैं। एक पूर्व भी कभी भी नहीं लिखा गया, न लिखा जा सकता है और न लिखा जायेगा।

उप्पायपुव्वस्स णं दस वत्थू, चत्तारि चूलियावत्थू पण्णत्ता। अग्गाणीयपुव्वस्स णं चोद्दस वत्थू दुवालस

सम्बन्ध, ऐसे सम्बन्ध वाला विषय जिस शास्त्र में हो, उसे 'अनुयोग' कहते हैं।

से किं तं मूलपढमाणुओगे ? मूलपढमाणुओगे णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा, देवलोगगमणाइं, आउं, चवणाइं, जम्मणाणि, अभिसेया, रायवरसिरीओ, पव्वज्जाओ, तवा य उग्गा, केवलनाणुप्पयाओ, तित्थपवत्तणाणि य, सीसा, गणा, गणहरा, अज्जा पवत्तिणीओ, संघस्स चउव्विहस्स जं च परिमाणं, जिणमणपज्जवओहिनाणी, सम्मत्तसुयनाणिणो य वाई, अणुत्तरगई य, उत्तरवेउव्विणो य मुणिणो, जत्तिया सिद्धा, सिद्धिपहो जह देसिओ, जच्चिरं च कालं, पाओवगया जे जहिं जत्तियाइं भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता अंतगडे, मुणिवरुत्तमे, तिमिरओघविप्पमुक्के, मुक्खसुहमणुत्तरं च पत्ते, एवमन्ने य एवमाइभावा मूलपढमाणुओगे कहिया । से त्तं मूलपढमाणुओगे ।

प्रश्न—वह मूल प्रथम अनुयोग क्या है ?

उत्तर—धर्म तीर्थ का प्रवर्त्तन करनेवाले धर्म के 'मूल' तीर्थंकरों ने जिस भव में सम्यक्त्व प्राप्त किया, उस प्रथम भव से लेकर यावत् मोक्ष प्राप्ति पर्यन्त का, पूर्वगत से सम्बन्ध रखनेवाले चरित्र जिसमें हो, उसे 'मूल प्रथम अनुयोग' कहते हैं।

मूल प्रथम अनुयोग में अर्हन्त भगवन्तों के, उन्होंने जिस भव में सम्यक्त्व प्राप्त किया, उस प्रथम भव से लेकर जिस

भव में तीर्थंकर गोत्र बाँधा, वहाँ तक के १ 'पूर्वभव' कहे जाते हैं। २ 'देवगमन' कहे जाते हैं–तीर्थङ्कर गोत्र जिस भव में बाँधा वहाँ से काल करके जिस देवलोक में, जिस विमान में, जिस रूप में उत्पन्न हुए, वह कहा जाता है। यदि श्रेणिक जैसे कोई जीव, पहले नरक आयु बन्ध जाने से नरक में उत्पन्न हुए हों, तो वह नरक, वहाँ का नरकावास आदि बताया जाता है। ३ 'आयु' कही जाती है–वहाँ देवलोक में या नरक में जितनी आयु प्राप्त की, वह कही जाती है। ४ च्यवन' कहा जाता है–वहाँ देवलोक से जब च्यवे, या नरक से निकले, वहाँ से जिस नगर आदि में जिस राजा की जिस महारानी की कुक्षि में आये, वह कहा जाता है। ५ 'जन्म' कहा जाता है–जन्म के मास, तिथि, नक्षत्र आदि कहे जाते हैं। ६ 'अभिषेक' कहा जाता है–जन्म के पश्चात् ५६ दिशाकुमारियों के द्वारा जो अशुचि निवारण होता है और ६४ इन्द्रों द्वारा मेरु पर्वत पर अभिषेक होता है, वह कहा जाता है। ७ राज्यवर श्री कही जाती है–जितने वर्ष राज्यपद भोगा, वह बताया जाता है। यदि किसी ने पहले माण्डलिक पद पाकर फिर चक्रवर्ती पद भी पाया हो, तो वह भी बताया जाता है, यदि कोई कुमारपद में ही रहे हों, तो वह बताया जाता है। ८ प्रव्रज्या कही जाती है–जब जहाँ जैसे उत्सव के साथ दीक्षित हुए, वह कहा जाता है। ९ उग्र तप कहा जाता है–दीक्षित होकर जैसा कठोर तप किया, जितने काल तक किया, जो अभिग्रह, प्रतिमाएँ आदि की, जहाँ अनार्य देश आदि में विहार किया, जैसे शय्या, आसन आदि काम में

और रक्षण करनेवाले 'कुलकर' कहलाते हैं। ऐमे सुमति कुलकर आदि के चरित्र कहे जाते हैं। २ तीर्थंकर गण्डिकाएँ ३ चक्रवर्ती गण्डिकाएँ ४ दशार्ह गण्डिकाएँ कही जाती है (बलदेव, वासुदेव के पूज्य पुरुषों को 'दशार्ह' कहते हैं) ५ बलदेव गण्डिकाएँ ६ वासुदेव गण्डिकाएँ ७ गणधर गण्डिकाएँ ८ भद्रबाहु गण्डिकाएँ ९ तपःकर्म गण्डिकाएँ १० हरिवंश गण्डिकाएँ ११ उत्सर्पिणी गण्डिकाएँ १२ अवसर्पिणी गण्डिकाएँ १३ चित्रान्तर गण्डिकाएँ। १४ अमरगति (देवगति) नरक गति, मनुष्यगति, तिर्यञ्चगति और नरकगति में जाना, विविध प्रकार से संसार में पर्यटन होना इत्यादि गण्डिकाएँ कही जाती हैं। प्रज्ञप्त की जाती हैं। यह गण्डिका अनुयोग है। यह अनुयोग है।

से किं तं चूलियाओ? चूलियाओ आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलिया, सेसाइं पुव्वाइं अचूलियाइं। से त्तं चूलियाओ।

प्रश्न–वह चूलिका क्या है?

(ग्रंथ के मूल प्रतिपाद्य विषय की समाप्ति के पश्चात् ग्रंथ के अन्त में जो ग्रंथित किया जाता है, उसे 'चूलिका' कहते हैं। इसमें या तो ग्रन्थ में कही हुई बातें ही विशेष विधि से दुहरायी जाती हैं, या मूल प्रतिपाद्य विषय के सम्बन्ध में जो कथन शेष रह गया हो, वह कहा जाता है।

उत्तर–आदि के चार पूर्वों की ३४ चूलिकाएँ हैं। शेष दस पूर्वों की चूलिकाएँ नहीं है। यह चूलिका है।

दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जावेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ पडीवत्तीओ, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ।

अर्थ–पूर्व सूत्रानुसार

से णं अंगट्ठयाए बारसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे चोद्दस पुव्वाइं, संखेज्जा वत्थू, संखेज्जा चूलवत्थू, संखेज्जा पाहुड़ा, संखेज्जा पाहुडपाहुडा, संखेज्जाओपाहुडियाओ, संखेज्जाओ पाहूडपाहुडिओ।

यह अंगों में बारहवाँ अंग है। इसका एक श्रुतस्कंध है। चौदह पूर्व हैं। संख्येय वस्तुएँ–पूर्व के विभाग हैं (२२५ वस्तुएँ हैं)। संख्येय चूलिका वस्तुएँ हैं (३४ चूलिका वस्तुएँ हैं)। संख्येय प्राभृत–वस्तुओं के विभाग हैं। संख्येय प्राभृतप्राभृत–प्राभृत के विभाग हैं। संख्येय प्राभृतिकाएँ–प्राभृत प्राभृत के विभाग हैं। संख्येय प्राभृतप्राभृतिकाएँ–प्राभृतिकाओं के विभाग हैं।

संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा।

संख्येय सहस्रपद हैं। (८३ करोड़ २६ लाख ८० सहस्र ५ पद हैं।) संख्येय अक्षर हैं, अनन्तगम हैं, अनन्तपर्यव हैं, परित्त त्रस हैं और अनन्त स्थावर हैं।

सासयकडनिवद्धनिकाइया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति ।

अर्थ—पूर्व सूत्रानुसार ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जंति । से त्तं दिट्ठिवाए ॥५६॥

अर्थ—पूर्व सूत्रानुसार । यह वह दृष्टिवाद है ।

उपसंहार

अब सूत्रकार संक्षेप में बारह अंगवाले गणिपिटक का बतलाते हैं ।

मि दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा, अणंता हेऊ, अणंता अहेऊ, अणंता अकारणा, अणंता जीवा, अणंता अजीवा, अणंता अभवसिद्धिया, अणंता पण्णत्ता ।

गणिपिटक में—१ अनन्त भाव की अस्ति कही है, और 'अनन्त अभाव' कहे हैं—गधे की नास्ति कही है, तथा

सद्भूत पदार्थों के अनन्त विभाव या परस्वभाव कहे हैं। ३ 'अनन्त हेतु' कहे हैं-वस्तु के अनन्त धर्मों एवं स्वभावों को बतलाने (सिद्ध करने) वाले अनन्त हेतु कहे हैं तथा मिथ्यावाद को खण्डित करनेवाले अनन्त तर्क कहे हैं। ४ अनन्त अहेतु कहे हैं-वस्तु के स्वभाव को बतलाने में असमर्थ अनन्त अहेतु कहे हैं, तथा सत्यवाद को खण्डित करनेवाले अनन्त कुतर्क कहे हैं। ५ अनन्त कारण कहे हैं-द्रव्यों की पर्यायों के परिवर्तन में कारणभूत अनन्त उपादान और अनन्त निमित्त कहे हैं। ६ अनन्त अकारण कहे हैं-पदार्थों की पर्यायों के परिवर्तन में अकारणभूत अनन्त उपादान और अनन्त निमित्त कहे हैं। ७ अनन्त जीव कहे हैं-स्थावर और सिद्ध के आश्रित अनन्त जीव कहे हैं। ८ अनन्त अजीव कहे हैं-पुदगल और काल आश्रित अनन्त अजीव कहे हैं। ९ अनन्त भवसिद्धिक कहे हैं-अनन्त मोक्षगामी जीव कहे हैं। १० अनन्त अभवसिद्धिक कहे हैं-अनन्त शाश्वत संसारी कहे हैं। ११ अनन्त सिद्ध कहे हैं-अनन्त जीव मोक्ष में पहुँचे हुए कहे हैं। १२ अनन्त असिद्ध कहे हैं-अनन्त जीव संसार में परिभ्रमण करते हुए कहे हैं।

अब सूत्रकार इन बारह बोलों को सरलता से स्मरण में रखने के लिए संग्रहिणी गाथा कहते हैं।

भावमभावा हेऊमहेउ, कारणमकारणे चेव।
जीवाजीवा भवीयमभविया, सिद्धा असिद्धाय।९२।

द्वादशांग में १ भाव २ अभाव ३ हेतु ४ अहेतु ५ कारण ६ अकारण ७ जीव ८ अजीव ९ भव्य १० अभव्य ११ सिद्ध

सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति ।

अर्थ–पूर्व सूत्रानुसार ।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जंति । से त्तं दिट्ठिवाए ॥५६॥

अर्थ–पूर्व सूत्रानुसार । यह वह दृष्टिवाद है ।

उपसंहार

अब सूत्रकार संक्षेप में बारह अंगवाले गणिपिटक का विषय बतलाते हैं ।

इच्चेइयंमि दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा, अणंता अभावा, अणंता हेऊ, अणंता अहेऊ, अणंता कारणा, अणंता अकारणा, अणंता जीवा, अणंता अजीवा, अणंता भवसिद्धिया, अणंता अभवसिद्धिया, अणंता सिद्धा, अणंता असिद्धा पण्णत्ता ।

ऐसे इस बारह अंगोंवाले गणिपिटक में–१ अनन्त भाव कहे हैं–जीवादि अनन्त सद्भूत पदार्थों की अस्ति कही है, और उनका अनन्त स्वभाव कहा है । २ 'अनन्त अभाव' कहे हैं–गधे के सींग आदि अनन्त असद्भूत पदार्थ की नास्ति कही है, तथा

सद्भूत पदार्थों के अनन्त विभाव या परस्वभाव कहे हैं। ३ 'अनन्त हेतु' कहे हैं–वस्तु के अनन्त धर्मों एवं स्वभावों को बतलाने (सिद्ध करने) वाले अनन्त हेतु कहे हैं तथा मिथ्यावाद को खण्डित करनेवाले अनन्त तर्क कहे हैं। ४ अनन्त अहेतु कहे हैं–वस्तु के स्वभाव को बतलाने में असमर्थ अनन्त अहेतु कहे हैं, तथा सत्यवाद को खण्डित करनेवाले अनन्त कुतर्क कहे हैं। ५ अनन्त कारण कहे हैं–द्रव्यों की पर्यायों के परिवर्तन में कारणभूत अनन्त उपादान और अनन्त निमित्त कहे हैं। ६ अनन्त अकारण कहे हैं–पदार्थों की पर्यायों के परिवर्तन में अकारणभूत अनन्त उपादान और अनन्त निमित्त कहे हैं। ७ अनन्त जीव कहे हैं–स्थावर और सिद्ध के आश्रित अनन्त जीव कहे हैं। ८ अनन्त अजीव कहे हैं–पुदगल और काल आश्रित अनन्त अजीव कहे हैं। ९ अनन्त भवसिद्धिक कहे हैं–अनन्त मोक्षगामी जीव कहे हैं। १० अनन्त अभवसिद्धिक कहे हैं–अनन्त शाश्वत संसारी कहे हैं। ११ अनन्त सिद्ध कहे हैं–अनन्त जीव मोक्ष में पहुँचे हुए कहे हैं। १२ अनन्त असिद्ध कहे हैं–अनन्त जीव संसार में परिभ्रमण करते हुए कहे हैं।

अब सूत्रकार इन बारह बोलों को सरलता से स्मरण में रखने के लिए संग्रहिणी गाथा कहते हैं।

भावमभावा हेऊमहेउ, कारणमकारणे चेव।
जीवाजीवा भवीयमभविया, सिद्धा असिद्धाय ।९२।

द्वादशांग में १ भाव २ अभाव ३ हेतु ४ अहेतु ५ कारण ६ अकारण ७ जीव ८ अजीव ९ भव्य १० अभव्य ११ सिद्ध

और १२ असिद्ध का कथन किया है ।

विराधना का कुफल

अब सूत्रकार द्वादशांग गणिपिटक का फल बताते हैं ।

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं तीए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिसु ।

इस द्वादशांग गणिपिटक महाराजाधिराज की आज्ञा की विराधना करके अतीत—भूतकाल में अनन्त जीवों ने 'चातुरन्त संसार कान्तार में'—चार गति वाली संसार अटवी में, अनन्तकाल अनुपर्यटन किया ।

इच्चेयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टंति ।

इस द्वादशांग गणिपिटक महाराजाधिराज की आज्ञा की विराधना करके प्रत्युत्पन्न—वर्त्तमान काल में परित्त जीव, चातुरन्त संसार कान्तार में अनुपर्यटन कर रहे हैं ।

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिस्संति ।

इस द्वादशांग गणिपिटक महाराजाधिराज की आज्ञा की

विराधना करके अनागत–भविष्यकाल में अनन्त जीव, चातुरन्त संसारकान्तार में अनुपर्यटन करेंगे ।

आराधना का सुफल

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं तीए काले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीई-वइंसु ।

इस द्वादशांग गणिपिटक महाराजाधिराज की आज्ञा की आराधना करके अतीत–भूतकाल में अनन्त जीव, चातुरन्त संसार कान्तार को सदा के लिए पार कर गये ।

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीईवयंति ।

इस द्वादशांग गणिपिटक महाराजाधिराज की आज्ञा की आराधना करके प्रत्युत्पन्न–वर्त्तमान काल में परित्त जीव, चातुरन्त संसारकान्तार को सदा के लिए पार कर रहे हैं ।

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीई-वइस्संति ।

इस द्वादशांग गणिपिटक महाराजाधिराज की आज्ञा की आराधना करके अनागत–भविष्य काल में अनन्त जीव, चातुरन्त

संसार कांतार को सदा के लिए पार करेंगे।

द्वादशांग गणिपिटक का अभी कहा हुआ त्रैकालिक फल तभी सत्य हो सकता है जब कि द्वादशांग गणिपिटक स्वयं नित्य हो। अतएव सूत्रकार अब द्वादशांगी की नित्यता बताते हैं।

द्वादशांगी की नित्यता

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे।

द्वादशांग गणिपिटक ऐसा नहीं कि जो पहले कभी नहीं रहा हो, ऐसा भी नहीं कि यह कभी नहीं रहता हो और ऐसा भी नहीं कि कभी नहीं रहेगा। यह पहले भी रहा है, वर्त्तमान में भी रहता है और आगे भी रहेगा। क्योंकि यह १ ध्रुव है २ नियत है ३ शाश्वत है ४ अक्षय है ५ अव्यय है ६ अवस्थित है ७ नित्य है।

से जहानामए पंचत्थिकाए न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च भवइ य भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे।

अर्थ—जैसे पांच अस्तिकाय (१ धर्म २ अधर्म ३ आकाश

४ जीव और ५ पुद्गल) ये पहले कभी नहीं रहे हों-ऐसी बात नहीं है और कभी नहीं रहते हैं-ऐसा भी नहीं है, तथा आगे कभी नहीं रहेंगे-ऐसा भी नहीं है। ये रहे हैं, रहते हैं, और रहेंगे। क्योंकि ये ध्रुव हैं, नियत हैं, शाश्वत हैं, अक्षय हैं, अव्यय हैं, अवस्थित हैं, नित्य हैं।

एवामेव दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे।

अर्थ-इसी प्रकार यह द्वादशांगी गणिपिटक भी कभी नहीं रहा-ऐसा नहीं, कभी नहीं रहता है-ऐसा भी नहीं है और कभी नहीं रहेगा-ऐसा भी नहीं है, परन्तु यह रहा भी है, रहता भी है और आगे भी रहेगा ही। क्योंकि यह १ ध्रुव है-जैसे मेरु पर्वत निश्चल है, वैसे द्वादशांगी गणिपिटक में जीवादि पदार्थों का निश्चल प्रतिपादन होता है। यह नियत है-जैसे पाँच अस्तिकाय के लिए 'लोक' यह वचन नियत है, वैसे ही द्वादशांग गणिपिटक के वचन पक्के हैं, बदलते नहीं है। ३ शाश्वत है-जैसे महाविदेह क्षेत्र में चौथा दुःषमसुषमा काल निरंतर विद्यमान रहता है, वैसे ही वहाँ यह द्वादशांगी सदा काल विद्यमान रहती है। ४ अक्षय है-जैसे पौण्डरीक द्रह से गंगा नदी का प्रवाह निरंतर बहता है, पर कभी पौण्डरीक द्रह खाली नहीं होता वैसे ही द्वादशांग गणिपिटक की निरंतर वाचना आदि देने पर भी कभी इसका क्षय नहीं होता। ५ अव्यय है-जैसे मनुष्य क्षेत्र के बाहर

के समुद्र सदा पूरे भरे रहते हैं, उनका कुछ भाग भी व्यय नहीं होता, वैसे ही द्वादशांग गणिपिटक सदा पूरा भरा रहता है, उसमें से कुछ भाग भी व्यय नहीं होता। ६ अवस्थित है–जैसे जम्बूद्वीप का प्रमाण सदा एक ही रहता है, वैसे ही द्वादशांगी का प्रमाण सदा एक ही रहता है, उसके किसी अंग में न्यूनता अथवा अधिकता नहीं होती। ७ नित्य है–जैसे आकाश त्रिकाल नित्य है, वैसे ही द्वादशांग गणिपिटक त्रिकाल नित्य है।

अब सूत्रकार, श्रुतज्ञान से कितने द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव का ज्ञान होता है, यह बतलानेवाला विषय द्वार कहते हैं।

से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–दव्वओ खित्तओ, कालओ, भावओ।

श्रुतज्ञान का विषय संक्षेप से चार प्रकार का है। यथा–१ द्रव्य से २ क्षेत्र से ३ काल से और ४ भाव से।

तत्थ दव्वओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ। खित्तओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ। कालओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं कालं जाणइ पासइ। भावओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वे भावे जाणइ पासइ ॥५७॥

अर्थ–१ द्रव्य से (उत्कृष्ट) श्रुतज्ञानी (श्रुतज्ञान में) उपयोग लगाने पर सभी (रूपी अरूपी छहों) द्रव्यों को जानते हैं, (तथा मानों प्रत्यक्ष देख रहे हों, इस प्रकार स्पष्ट) देखते हैं। २ क्षेत्र से (उत्कृष्ट) श्रुतज्ञानी (श्रुतज्ञान में) उपयोग लगाने पर सभी

(लोकाकाश व अलोकाकाश रूप) क्षेत्र को जानते हैं, तथा मानों प्रत्यक्ष देखे रहे हों, इस प्रकार स्पष्ट देखते हैं। ३ काल से—(उत्कृष्ट) श्रुतज्ञानी (श्रुतज्ञान में) उपयोग लगाने पर सभी (पूर्ण भूत, भविष्य, वर्त्तमान) काल को जानते हैं (तथा मानों प्रत्यक्ष देख रहे हों इस प्रकार स्पष्ट) देखते हैं। ४ भाव से—(उत्कृष्ट) श्रुतज्ञानी (श्रुतज्ञान में) उपयोग लगाने पर सभी (रूपी अरूपी छहों द्रव्यों की सब) पर्यायों को जानते हैं (तथा मानों प्रत्यक्ष देख रहे हों इस प्रकार स्पष्ट) देखते हैं।

उत्कृष्ट श्रुतज्ञानी, सर्वद्रव्य, सर्वक्षेत्र, सर्वकाल और सर्वभावों को जातिरूप सामान्य प्रकार से जानते हैं, कुछ विशेष प्रकार से भी जानते हैं, पर सर्व विशेष प्रकारों से नहीं जानते, क्योंकि केवलज्ञान की पर्याय से श्रुतज्ञान की पर्याय अनन्तगुण हीन है।

(भगवतीसूत्र श. ८ उ. २)

जो उत्कृष्ट श्रुतज्ञानी नहीं है, उनमें से कोई सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जानते हैं, कोई नहीं जानते।

अब सूत्रकार, श्रुतज्ञान का चूलिका द्वार कहते हैं। उसमें सबसे पहले श्रुतज्ञान के चौदह भेदों को, सरलता से स्मरण में रखने के लिए, उनका संग्रह करनेवाली संग्रहणी गाथा कहते हैं।

अक्खर सन्नी सम्मं, साइयं खलु सपज्जवसियं च।
गमियं अंगपविट्ठं, सत्तवि एए सपडिवक्खा।९३।

श्रुतज्ञान के १ अक्षर (श्रुत) २ संज्ञी (श्रुत) ३ सम्यक् (श्रुत) ४ सादि (श्रुत) ५ सपर्यवसित (श्रुत) ६ गमिक (श्रुत)

तथा ७ अंग प्रविष्ट (श्रुत) ये सात भेद हैं, तथा सात ही इनके प्रतिपक्ष भेद हैं। (१ अनक्षर श्रुत २ असंज्ञीश्रुत ३ मिथ्याश्रुत ४ अनादि श्रुत ५ अपर्यवसित श्रुत ६ अगमिक श्रुत तथा ७ अनंग प्रविष्ट श्रुत)

अब सूत्रकार 'श्रुतज्ञान के लाभों में कौनसा श्रुतज्ञान का लाभ वास्तविक है, यह बताते हैं।

आगमसत्थग्गहणं, जं बुद्धिगुणेहिं अट्ठहिं दिट्ठं।
बिंति सुयनाणलंभं, तं पुव्वविसारया धीरा।९४।

अर्थ–सम्यक्श्रुत को भी बुद्धि के आठ गुणों के साथ ग्रहण किया गया हो, तभी वास्तविक श्रुतज्ञान का लाभ है (अन्यथा नहीं)।

विवेचन–'पूर्व विशारद्'–दृष्टिवाद के पाठी. धीर–उपसर्ग आदि के समय भी व्रत प्रत्याख्यानों को दृढ़तापूर्वक पालनेवाले, संत भगवन्त कहते हैं कि–

१ जो आगम शास्त्रों का (जिनसे जीवादि तत्त्वों का सम्यक् यथार्थ बोध हो, ऐसे सम्यक्श्रुत का) ग्रहण है, वही वास्तविक श्रुत ज्ञान का लाभ है। मिथ्याश्रुत ग्रहण, वास्तविक श्रुतज्ञान का लाभ नहीं।

जिससे जीवादि तत्त्वों का यथार्थ सम्यक् बोध होता है, ऐसे सम्यक्श्रुत रूप आचारांग आदि तथा इनसे विपरीत मिथ्या-श्रुत रूप महाभारत आदि का परिचय पहले दे दिया है। अब सूत्रकार, बुद्धि के आठ गुणों को बतलाते हैं।

१ सुस्सूसइ २ पडिपुच्छइ ३ सुणेइ ४ गिण्हइ य ५ इहए यावि
६ तत्तो अपोहए वा, ७ धारेइ ८ करेइ वा सम्मं ॥६५॥

१ जो 'शुश्रुषा करता है'–गुरुदेव जो कहते हैं, उसे विनय-युक्त सुनने की इच्छा रखता है। २ 'प्रतिपृच्छा करता है'–सुनते हुए श्रुत में जहां शंका हो जाय, वहां अति नम्र वचनों से गुरुदेव के हृदय को आह्लादित करता हुआ पूछता है। ३ 'सुनता है'–पूछने पर गुरुदेव जो कहते हैं, उन शब्दों को चित्त को डोलायमान न करते हुए सावधान चित्त हो सुनता है। ४ 'ग्रहण करता है'–उन शब्दों को सुनकर उनके अर्थों को समझता है। ५ 'ईहा करता है'–गुरुदेव के पूर्व कथन और पश्चात् कथन में विरोध न आवे, इस प्रकार सम्यक् पर्यालोचना करता है। ६ 'अपोह करता है'–विचारणा के अन्त में गुरुदेव जैसा कहते हैं, तत्त्व वैसा ही है, अन्यथा नहीं,–इस प्रकार स्वमति में सम्यक् निर्णय करता है। ७ 'धारण करता है'–वह निर्णय कालांतर तक स्मरण में रहे, इस प्रकार उसकी धारणा (अविच्युति) करता है ८ 'करता है'–श्रुतज्ञान में जिसे त्याग करना कहा है, उसका त्याग करता है, जिसका विवेक करना कहा है, उसका विवेक करता है तथा जिसका धारण करना कहा है, उसे धारण करता है।

अब सूत्रकार सुनने की विधि बताते हैं।

मूअं हुंकारं वा, बाढक्कारं पडीपुच्छ वीमंसा।
तत्तो पसंगपारायणं च, परिणिट्ठ सत्तमए ॥६६॥

सर्व प्रथम १ 'मूक रहे'–गूंगे की भांति चुपचाप होकर

गुरुदेव के वचन सुने। २ 'हुँकार करे'–सुनने के पश्चात् गुरुदेव को विनय युक्त तीन बार वन्दना करे। ३ 'बाढ़ंकार करे'–वन्दना के पश्चात् 'गुरुदेव ! आपने यथार्थ प्रतिपादन किया'-यों कहे। ४ 'प्रतिपृच्छा करे'–'यह तत्त्व यों कैसे ?'–यों सामान्य प्रश्न करे। ५ 'विमर्श करे'–प्रश्न का सामान्य उत्तर मिलने के पश्चात् विशेष ज्ञान के लिए प्रमाण आदि पूछे। ६ 'प्रसंग पारायण करे'–प्रमाण आदि प्राप्त करके उस तत्त्व प्रसंग का आद्योपान्त सूक्ष्म बुद्धि से पारायण करे। ७ सातवें में परिनिष्ठ होवे'। ऐसा करने पर सातवीं दशा में श्रुतार्थी शिष्य, गुरुदेव के समान ही तत्त्व प्रतिपादन में समर्थ बन जाता है।

अब सूत्रकार, शिष्य को श्रुतज्ञान देने की विधि बताते हैं।

सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ।
तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगे ।६७।

प्रथम सूत्र पढ़ावें और सामान्य अर्थ बतावें, फिर निर्युक्ति मिश्रित सूत्रार्थ पढ़ावें और अन्त में नय, निक्षेप, प्रमाणादि सहित 'निरवशेष' सूत्रार्थ पढ़ावें। यह श्रुत दान की विधि है।

सेत्तं अंगपविट्ठं। से त्तं सुयनाणं। से त्तं परोक्खनाणं। (से त्तं नाणं) से त्तं नंदी। ☆☆। नंदी समत्ता ॥☆☆

यह अंगप्रविष्ट है। यह श्रुतज्ञान है। यह परोक्ष ज्ञान है। (यह ज्ञान है) यह नंदी है।

॥ नन्दी सूत्र समाप्त ॥

परिशिष्ट

अनुज्ञा नंदी

से किं तं अणुण्णा ? अणुण्णा छव्विहा पण्णत्ता, तंजहा–१ नामाणुण्णा २ ठवणाणुण्णा ३ दव्वाणुण्णा ४ खेत्ताणुण्णा ५ कालाणुण्णा ६ भावाणुण्णा।

प्रश्न–वह अनुज्ञा क्या है ?

(अनुमति, आज्ञा, स्वीकृति आदि को 'अनुज्ञा' कहते हैं)

उत्तर–अनुज्ञा के छह भेद हैं। यथा–१ नाम अनुज्ञा २ स्थापना अनुज्ञा ३ द्रव्य अनुज्ञा ४ क्षेत्र अनुज्ञा ५ काल अनुज्ञा और ६ भाव अनुज्ञा।

से किं तं १ नामाणुण्णा ? जस्सणं जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाणं वा, अजीवाणं वा, तदुभयस्स वा, तदुभयाणं वा, अणुण्णत्ति नामं कीरइ। से त्तं नामाणुण्णा।

प्रश्न–वह नाम-अनुज्ञा क्या है ?

उत्तर–(संज्ञा अनुज्ञा को 'नाम अनुज्ञा' कहते हैं) जैसे–जिस १ एक जीव का, या २ एक अजीव का, या ३ अनेक जीवों का, या ४ अनेक अजीवों का, या ५ एक जीव और एक अजीव का, या ६ अनेक जीवों और अनेक अजीवों का नाम–'अनुज्ञा'

रखा जाता है, वह रखा जाता हुआ 'नाम' अथवा जिस पर वह नाम रखा जाता है, वह द्रव्य–'नाम-अनुज्ञा' है। यह नाम अनुज्ञा है।

से किं तं २ ठवणाणुण्णा ? जण्णं कट्ठकम्मे वा, पोत्थकम्मे वा, लेप्पकम्मे वा, चित्तकम्मे वा, गंथिमे वा, वेढिमे वा, पूरिमे वा संघाइमे वा, अक्खे वा, वराडए वा, एगो वा, अणेगो वा, सब्भाव-ट्ठवणाए वा, असब्भाव-ट्ठवणाए वा, 'अणुण्णत्ति' ठवणा, ठविज्जइ। से त्तं ठवणा-णुण्णा।

प्रश्न–वह स्थापना अनुज्ञा क्या है?

(आकार अनुज्ञा को 'स्थापना अनुज्ञा' कहते हैं)

उत्तर–स्थापना अनुज्ञा के दो भेद हैं–१ सद्भाव स्थापना और २ असद्भाव स्थापना। अनुज्ञा शब्द की यथावत् आकृति, या अनुज्ञा नंदी पुस्तक की यथावत् आकृति, या अनुज्ञा नंदी की यथावत् प्रतिलिपियाँ, अनुज्ञा देते-लेते हुए जीवों की यथावत् आकृति,–'सद्भाव अनुज्ञा स्थापना' है और अनुज्ञा शब्द की अयथावत् आकृति, या अनुज्ञा नंदी की पुस्तक, अयथावत् आकृति या कृति या अनुज्ञा नंदी की अयथावत् प्रतिलिपि, या अनुज्ञा देते लेते हुए जीवों की अयथावत् आकृति 'असद्भाव स्थापना' है।

उदाहरण–जैसे–१ काष्ठ में २ पुस्तक में ३ लेप में, ४ चित्र में, अनुज्ञा की यथावत् आकृति बनाते हैं, वह अनुज्ञा की 'सद्भाव स्थापना' है, और अयथावत् आकृति बनाते हैं, वह 'असद्भाव स्थापना' है। इसी प्रकार ५ फूल आदि को गूँथकर,

६ वस्त्र आदि को वेष्टित कर, ७ पीतल आदि को गला-ढला कर, या वस्त्र-खण्ड आदि को जोड़कर, अनुज्ञा की यथावत् आकृति बनाते हैं, वह अनुज्ञा की सद्भाव स्थापना है, और अयथावत् आकृति बनाते हैं, वह अनुज्ञा की असद्भाव स्थापना है। एवं शंख, कोड़ी, आदि में अनुज्ञा की स्थापना करते हैं, अर्थात् 'यह अनुज्ञा है,' इस प्रकार ठाते हैं, वह अनुज्ञा की असद्भाव स्थापना है। यह स्थापना अनुज्ञा है।

नाम ट्ठवणाणं को पइ-विसेसो ? नाम आवकहियं, ठवणा इत्तरिया वा होज्जा, आवकहिया वा।

शंका—शंख, कौडी आदि जिनमें अनुज्ञा की आकृति भी नहीं है, उनमें 'अनुज्ञा'—यह नाम रखते हैं और अनुज्ञा की स्थापना' करते हैं, इन दोनों में क्या अन्तर हुआ ?

समाधान—अन्तर यह है कि यदि नाम रखा जाता है, तो वह प्रायः यावत्कथिक होता है अर्थात् जिस वस्तु पर 'अनुज्ञा' यह नाम रखा जाता है. वह वस्तु जब तक रहती है, तब तक उसका नाम 'अनुज्ञा' रहता है। परन्तु अनुज्ञा की स्थापना इत्वरिक—अल्पकालिक भी हो सकती है, अर्थात् जिस वस्तु पर अनुज्ञा की स्थापना की जाती है, वह वस्तु अधिक काल तक विद्यमान रहे और उस पर की गई अनुज्ञा की स्थापना कुछ समय में ही समाप्त कर दी जाय, यह संभव है। और अनुज्ञा की स्थापना यावत्कथिक भी हो सकती है, अर्थात् जिस वस्तु पर अनुज्ञा की स्थापना की जाती है, वह जब तक रहे, तब तक उसे अनुज्ञा की स्थापना के रूप में माना जाय, यह भी संभव है।

इस प्रकार नाम अनुज्ञा प्राय: यावत्कथिक ही होने से और स्थापना अनुज्ञा इत्वरिक और यावत्कथिक दोनों प्रकार की सम्भव होने से, नाम अनुज्ञा और स्थापना अनुज्ञा में अन्तर है।

से किं तं दव्वाणुण्णा ? दव्वाणुण्णा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—१ आगमओ य, २ नो आगमओ य।

प्रश्न—वह द्रव्य अनुज्ञा क्या है ?

(उपयोग रहित अनुज्ञा पद के ज्ञाता को या अनुज्ञा नन्दी आगम के ज्ञाता को 'द्रव्य अनुज्ञा' कहते हैं। अथवा भाव अनुज्ञा के कारण को द्रव्य अनुज्ञा कहते हैं, अथवा द्रव्य विषयक अनुज्ञा को द्रव्य अनुज्ञा कहते हैं)।

उत्तर—द्रव्य अनुज्ञा के दो भेद हैं—१ आगम से द्रव्य अनुज्ञा और २ नो आगम से द्रव्य अनुज्ञा।

से किं तं आगमओ दव्वाणुण्णा ? आगमओ दव्वाणुण्णा, जस्सणं अणुण्णापयं सिक्खियं, ठियं जियं, मियं, परिजियं, नामसमं, घोससमं, अहीणक्खरं, अणच्चक्खरं, अव्वाइद्धक्खरं अक्खलियं, अमिलियं, अवच्चामेलियं, पडिपुण्णं, पडिपुण्णघोसं, कंठोट्ठविप्पमुक्कं गुरुवायणोवगयं से णं तत्थ वायणाए, पुच्छणाए, परियट्टणाए, धम्मकहाए, णो अणुप्पेहाए।

प्रश्न—वह आगम से द्रव्य अनुज्ञा क्या है ?

(उपयोग रहित अनुज्ञापद के ज्ञाता को, या अनुज्ञा नंदी

आगम के ज्ञाता को 'आगम से द्रव्य अनुज्ञा' कहते हैं।)

उत्तर–जैसे–किसी जीव ने अनुज्ञापद या 'अनुज्ञा नंदी' नामक आगम को १ सीखा–आदि से अन्त तक पढ़ा, २ स्थित किया–कंठस्थ किया ३ जीता–शीघ्र पुनरावृत्ति कर सके, ऐसा स्मरण किया ४ मित किया–अनुज्ञानंदी आगम कितने श्लोक परिमाण है, उसमें कितने पद हैं, कितने स्वर हैं, कितने व्यंजन हैं, कितनी मात्राएं हैं, इत्यादि परिमाण को भी बता सके, ऐसा ध्यान पूर्वक कंठस्थ किया। ५ परिजित किया–आदि से, मध्य से, अन्त से, क्रम से, उत्क्रम से, कहीं से भी, किसी भी प्रकार से पूंछे, तो भी बता सके, ऐसा परिचित किया ६ नामसम किया–जैसे प्राणी अपना नाम जानता है, उसमें प्रायः कभी उसका विस्मरण नहीं होता, इसी प्रकार अनुज्ञा नंदी आगम को अत्यंत स्थिर किया ७ घोसमय है–पढ़ते समय जैसे गुरु ने उच्चारण कराया, वैसा ही उच्चारण करता है ८ अहीन अक्षर पढ़ता है–एक अक्षर भी कहीं न छूटे–ऐसा पढ़ता है। ९ अनति अक्षर पढ़ता है–एक अक्षर भी कहीं अधिक न हो–ऐसा पढ़ता है। १० अव्याविद्ध अक्षर पढ़ता है–जैसे टूटी हुई माला में मणियाँ विखर जाती है, उस प्रकार जो विखरे हुए अस्त-व्यस्त अक्षर नहीं पढ़ता, परन्तु जैसे संधी हुई माला में मणियाँ क्रमवद्ध होती हैं, इस प्रकार अक्षरों को क्रमवद्ध पढ़ता है। ११ अस्खलित पढ़ता है–जैसे जहाँ पत्थरों के वहुत खण्ड विछे पड़े हों, उस विषम भूमि में वन्दर गिरता पड़ता हुआ जाता है, उस प्रकार जो अटकता हुआ नहीं पढ़ता, परंतु जैसे समभूमि भाग में वन्दर

अस्खलित गति से जाता है, उस प्रकार अस्खलित उच्चारण करता है, १२ अमिलित उच्चारण करता है–जहाँ जिन पद आदि को पृथक् पृथक् पढ़ना चाहिए, वहाँ उन्हें पृथक् पृथक् पढ़ता है, मिलाकर नहीं पढ़ता । १३ अव्यत्यय आम्रेडित पढ़ता है–जहाँ पद आदि को सम्मिलित पढ़ना चाहिए, वहाँ उन्हें सम्मिलित पढ़ता है, अथवा जहाँ अल्प विराम आदि सहित पढ़ना चाहिए, वहाँ उस प्रकार के विराम सहित पढ़ता है। १४ प्रतिपूर्ण है–उस अनुज्ञा नंदी आगम का सूत्र, अर्थ, भावार्थ आदि सब जानता है १५ प्रतिपूर्ण घोष है–पुनरावृत्ति के समय भी पूर्ण शुद्ध उच्चारण करता है, १६ कंठ ओष्ठ विप्रमुक्त है–बालक या गूँगे की भाँति गुन-गुन नहीं पढ़ता परंतु स्पष्ट पढ़ता है। १७ गुरु वाचना उपगत है–अपनी मति कल्पना मात्र से नहीं पढ़ा है, परंतु गुरु की सेवा में शुद्ध मति से पढ़ा है, १८ वाचना भी करता है–पढ़ता-पढ़ाता भी है, १९ पृच्छना भी करता है–प्रश्नोत्तर भी करता है २० परिवर्तना भी करता है–यथा समय दुहराता-सुनता भी है २१ धर्मकथा भी करता है। परन्तु अनुप्रेक्षा नहीं करता–अनुज्ञा पद या अनुज्ञा नंदी के भावों पर उपयोग नहीं लगाता, तो वह उपयोग रहित ज्ञाता–आगम से द्रव्य अनुज्ञा है।

कम्हा ? अणुवओगो दव्वमिति कट्टु ।

शंका–अनुज्ञा पद या अनुज्ञा नंदी आगम का इतना अच्छा जानकार भी आगम से द्रव्य अनुज्ञा कैसे हुआ ? (अनुज्ञा का गौण जानकार कैसे ?)

समाधान–इसलिए कि ज्ञान दो प्रकार का है–१ लब्धि रूप ज्ञान और २ उपयोग रूप ज्ञान। जिसमें लब्धि रूप ज्ञान के साथ वर्त्तमान में उपयोग रूप ज्ञान भी हो, वही मुख्य होने से भावरूप ज्ञान माना गया है। परन्तु जिसमें लब्धिरूप ज्ञान के साथ वर्त्तमान में उपयोग रूप ज्ञान नहीं है, वह गौण होने से द्रव्यरूप ज्ञान माना गया है। उपर्युक्त पुरुष, अनुज्ञापद या अनुज्ञा नंदी का मात्र लब्धिरूप ज्ञान युक्त ही है, परंतु अनुप्रेक्षात्मक उपयोग रूप ज्ञान युक्त नहीं है। अतएव उसे 'आगम से द्रव्य अनुज्ञा' माना गया है।

नेगमस्स णं, एगो अणुवउत्तो आगमओ एगा दव्वाणुण्णा, दोण्णि अणुवउत्ता आगमओ दोण्णि दव्वाणुण्णाओ, तिण्णि अणुवउत्ता, आगमओ तिण्णि दव्वाणुण्णाओ एवं जावइआ अणुवउत्ता तावइयाओ दव्वाणुण्णाओ।

नय विचार–सात नयों में–१ पहला नैगम नय अर्थात् अनेक विचारवाला, उपयोग रहित एक जीव को आगम से एक द्रव्य अनुज्ञा मानता है, उपयोग रहित दो जीवों को, आगम से अनेक द्रव्य अनुज्ञा मानता है, उपयोग रहित तीन जीवों को, आगम से तीन द्रव्य अनुज्ञा मानता है। इस प्रकार जितने उपयोग रहित जीव हैं, आगम से उतने ही द्रव्य अनुज्ञा मानता है। (क्योंकि विशेष दृष्टि से सभी में अनुज्ञा पद या अनुज्ञा नंदी का अनुपयोग पृथक् पृथक् है)।

एवामेव ववहारस्स वि ।

सात नयों में तीसरा व्यवहार नय अर्थात् अनेक वस्तुओं में रही अनेकता को देखनेवाला भी, आगम से द्रव्य अनुज्ञा इसी प्रकार (नैगम नय के समान एक अनेक) मानता है।

संगहस्स एगो वा, अणेगो वा, अणुवउत्तो वा, अणुवउत्ता वा, आगमओ दव्वाणुण्णा वा, दव्वाणुण्णाओ वा, स एगा दव्वाणुण्णा ।

सात नयों में दूसरा संग्रह नय (अर्थात् अनेक वस्तुओं में रही एकता को देखने वाला) चाहे उपयोग रहित एक जीव हों, या उपयोग रहित अनेक जीव हों, एक ही द्रव्य अनुज्ञा मानता है (क्योंकि सभी में सामान्य दृष्टि से अनुज्ञापद, या अनुज्ञा-नंदी—आगम में अनुपयोग समान ही है)।

उज्जुसुयस्स एगो अणुवउत्तो, आगमओ एगा दव्वाणुण्णा, पुहुत्तं नेच्छइ ।

सात नयों में चौथा ऋजुसूत्र नय अर्थात् वर्त्तमान काल की और अपनी ही वस्तु को देखनेवाला, यदि स्वयं वर्त्तमान में, अनुज्ञा पद या अनुज्ञा नंदी में उपयोग रहित है, तो स्वयं को आगम से एक द्रव्य अनुज्ञा मानता है। अपनी अगली पिछली उपयोग रहित अवस्था को, या अन्य उपयोग रहित जीवों को आगम से द्रव्य अनुज्ञा नहीं मानता (क्योंकि अपनी वर्त्तमान दशा ही स्वयं के लिए, वर्त्तमान में सार्थक है, शेष सब स्वयं के लिए वर्त्तमान में निरर्थक है)।

तिण्हंसद्दनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थु ।

सात नयों में पिछले तीन-शब्द नय, समभिरूढ़ नय और एवंभूत नय । जो शब्द नय है (अर्थात् शब्द का विचार करने वाले हैं) वे आगम से द्रव्य अनुज्ञा को अर्थात् जो अनुज्ञा को जानता है,परंतु उपयोग रहित है,उसे यथार्थ वस्तु ही नहीं मानते ।

कम्हा ? जइ जाणए, अणुवउत्ते न भवइ, जइ अणुवउत्ते जाणए न भवइ, तम्हा नत्थि आगमओ दव्वाणुण्णा । से त्तं आगमओ दव्वाणुण्णा ।

शंका-ऐसा क्यों ?

समाधान-इसलिए कि ये शब्द नय कहते हैं कि-यदि शब्द के अर्थ पर विचार किया जाय, तो 'जानता है और उपयोग रहित है, यह परस्पर विरोधी कथन है । यदि जानता है, तो वह उपयोग रहित नहीं हो सकता, और यदि उपयोग रहित है, तो वह जानता ही नहीं है । क्योंकि 'जानना' यह क्रिया है और जहाँ जानने की क्रिया है, वह ज्ञान का उपयोग रूप व्यापार अवश्य होगा ही । इसलिए 'आगम से द्रव्य अनुज्ञा' अर्थात् 'अनुज्ञा को जानता भी है और उपयोग रहित भी है'-यह वस्तु ही अयथार्थ है । यह आगम से द्रव्य अनुज्ञा है ।

से किं तं नो आगमओ दव्वाणुण्णा ? नो आगमओ दव्वाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा-१ जाणगसरीर-दव्वाणुण्णा, २ भवियसरीरदव्वाणुण्णा ३ जाणग-सरीर-

भविय सरीरवइरित्ता दव्वाणुण्णा ।

प्रश्न—वह नो आगम से द्रव्य अनुज्ञा क्या है ?

(भाव अनुज्ञा के कारण को 'नो आगम से द्रव्य अनुज्ञा' कहते हैं, अथवा द्रव्य विषयक अनुज्ञा को 'नो आगम से द्रव्य अनुज्ञा कहते हैं ।)

उत्तर—नो आगम से द्रव्य अनुज्ञा के तीन भेद हैं—१ ज्ञायक शरीर द्रव्य अनुज्ञा, २ भव्य शरीर द्रव्य अनुज्ञा और ३ ज्ञायक शरीर भव्य शरीर व्यतिरिक्त द्रव्य अनुज्ञा ।

से किं तं जाणगसरीरदव्वाणुण्णा ? जाणगसरीर-दव्वाणुण्णा, 'अणुण्णत्ति' पयत्थाहिगार-जाणगस्स, जं सरीरं, ववगय - चुय - चाविय-चत्तदेहं, जीवविप्पजढं, सिज्जागयं वा संथारगयं वा निसीहियागयं वा सिद्ध-सिला-तलगयं वा पासित्ताणं कोइ भणेज्जा—'अहो णं इमे णं सरीर समुस्सणं जिणदिट्ठेणं भावेणं 'अणुण्णत्ति' पयं आघवियं, पण्णवियं, परूवियं, दंसियं, निदंसियं उव-दंसियं ।

प्रश्न—ज्ञायक-शरीर द्रव्य-अनुज्ञा क्या है ?

(अनुज्ञा नंदी को जाननेवाले जीव का मृत शरीर, जो भूतकाल में उस जीव को अनुज्ञापद या अनुज्ञा नंदी जानने में कारणभूत रहा था, वह—'ज्ञायक-शरीर द्रव्य अनुज्ञा' है ।)

उत्तर—जैसे अनुज्ञापद या अनुज्ञानंदी को जाननेवाले जीव के शरीर को—जो अचेतन बन चुका है, प्राण रहित बन चुका

है, आयुष्य रहित बन चुका है, आहार से होनेवाली वृद्धि से रहित बन चुका है, जिसे उस जीव ने त्याग दिया है, वह शय्या पर पड़ा है, उपाश्रय में या शरीर प्रमाण पाट आदि पर पड़ा है, संथारे पर पड़ा है–तृण के बिछौने पर या ढ़ाई हाथ प्रमाण पाट आदि पर पड़ा है, नैषेधिका पर पड़ा है–स्वाध्यायभूमि में या एक हस्त प्रमाण आसन पर पड़ा है, या सिद्धि-शिला तल (शव परिस्थापन भूमि) पर पड़ा है अथवा शासन सेवक देवता से अधिष्ठित शिला–जहाँ पर संथारा निर्विघ्न समाप्त होता है वहाँ पड़ा है, वह 'ज्ञायक शरीर द्रव्य अनुज्ञा' है। लोग उसे देखकर परस्पर आमन्त्रण करते हुए शोक या विस्मय पूर्वक यह कहते भी हैं कि–"अहो! अमुक जीवने इस शरीर से अनुज्ञापद को या अनुज्ञा नंदी को कहा था, प्रज्ञप्त किया था, प्ररूपित किया था, दर्शित किया था, निदर्शित किया था, उपदर्शित किया था।"

जहा को दिट्ठंतो ? अयं घय-कुंभे आसी, अयं महु-कुंभे आसी। से त्तं भविय सरीर दव्वाणुण्णा।

प्रश्न–जो शरीर अनुज्ञापद या अनुज्ञानंदी के जाननेवाले जीव से रहित है, उसे अनुज्ञा कैसे कह सकते हैं ? दृष्टांत देकर बताइए।

उत्तर–जैसे-कोई घड़ा है, उसमें पहले घी रखा जाता था, परंतु अभी घी नहीं है (खाली है) तो भी लोग उसे भूतकाल की अपेक्षा कहते हैं कि–'यह घी का घड़ा है।' अथवा कोई घड़ा है, उसमें पहले मधु रखा जाता था, पर अभी मधु नहीं है,

तो भी लोग उसे भूतकाल की अपेक्षा कहते हैं कि–'यह मधु कुंभ है।' इसी प्रकार जो शरीर, अनुज्ञा पद या अनुज्ञा नंदी के ज्ञान से रहित हैं, उसे भी भूत की अपेक्षा 'अनुज्ञा' कह सकते हैं। यह ज्ञायक शरीर द्रव्य अनुज्ञा है।

से किं तं भवियसरीर-दव्वाणुण्णा ? भविय-सरीर-दव्वाणुण्णा–जे जीवे जोणि-जम्मण-निक्खंते, इमेणं चेव सरीरसमुस्सएणं आत्तएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं, अणुण्णत्ति पयं सेयकाले सिक्खिस्सइ, न ताव सिक्खइ।

प्रश्न–वह भव्य-शरीर द्रव्य-अनुज्ञा क्या है ?

उत्तर–जो शरीर, अपने स्वामी जीव को, इसी भव में, भविष्य में अनुज्ञा पद या अनुज्ञा नंदी जानने में कारणभूत बनेगा, वह 'भव्य-शरीर अनुज्ञा नंदी' है।

उदाहरण–जैसे जो जीव, माता की योनि से जन्म पाकर गर्भ से बाहर निकल आया और अपने इसी प्राप्त शरीर से जिन भगवान् के कहे हुए भावों के अनुसार 'अनुज्ञा पद या अनुज्ञा नंदी' को भविष्यकाल में सीखेगा, पर अब तक सीख नहीं रहा है, उसे 'भव्य-शरीर द्रव्य-अनुज्ञा' कहते हैं।

जहा को दिट्ठंतो ? अयं घयकुंभे भविस्सइ, अयं महुकुंभे भविस्सइ। से त्तं भवियसरीरदव्वाणुण्णा ?

प्रश्न–जो अब तक अनुज्ञा पद या अनुज्ञा नंदी को सीखा ही नहीं, उसे अनुज्ञा कैसे कह सकते हैं ? दृष्टांत देकर समझाइए।

उत्तर–जैसे कोई घड़ा है, उसमें अब तक घी रखा नहीं

गया है, पर भविष्य में रखा जायेगा, तो भी लोग उसे भविष्य की अपेक्षा कहते हैं कि-'यह घी का कुंभ है'। अथवा जैसे कोई घड़ा है, उसमें अबतक मधु रखा नहीं गया है, पर भविष्य में रखा जायगा, तो भी लोग उसे भविष्य की अपेक्षा कहते हैं कि-'यह मधु का कुंभ है'। उसी प्रकार जो जीव अनुज्ञा पद या अनुज्ञा नंदी को सीखेगा, उसे भविष्य की अपेक्षा 'अनुज्ञा' कह सकते हैं। यह भव्य शरीर द्रव्य अनुज्ञा है।

से किं तं जाणगसरीर-भवियसरीर-वइरित्ता दव्वाणुण्णा ? जाणगसरीर-भवियसरीर-वइरित्ता दव्वाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-१ लोइया २ कुप्पावयणिया ३ लोउत्तरिया।

प्रश्न-वह ज्ञायक-शरीर भव्य-शरीर व्यतिरिक्त द्रव्य अनुज्ञा क्या है ?

(द्रव्य विषयक अनुज्ञा को, ज्ञायक-शरीर भव्य-शरीर व्यतिरिक्त द्रव्य अनुज्ञा कहते हैं।)

उत्तर-ज्ञायकशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य अनुज्ञा के तीन भेद हैं। यथा-१ लौकिक २ कुप्रावचनिक और ३ लोकोत्तरिक।

से किं तं लोइया दव्वाणुण्णा ? लोइया दव्वाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा- १ सचित्ता २ अचित्ता ३ मीसिया।

प्रश्न-वह लौकिक द्रव्य अनुज्ञा क्या है ?

पट (सामान्य वस्त्र) मुकुट, चाँदी, सोना, कांसा, दुष्य (उत्तम-वस्त्र) मणि, मोती, शंख, शिला, प्रवाल, रक्तरत्न (लाल) आदि धन की सारभूत वस्तुओं की अनुज्ञा देते हैं, अर्थात् पारितोषिक के रूप में देते हैं, या पूर्व की याचना पूर्ण करते हैं, वह–'अचित लौकिक द्रव्य अनुज्ञा है।

यहाँ मणि आदि अचित लेना चाहिए, अथवा लोक में इन्हें अचित्त मानते हैं। अतएव मणि आदि को सचित्त होते हुए भी लोकनय से अचित्त कहा समझना चाहिए।

से किं तं मीसिया लोइया दव्वाणुण्णा ? मीसिया लोइया दव्वाणुण्णा,–से जहानामए, राया इ वा, जुवराया इ वा, ईसरे इ वा, तलवरे इ वा, माडंबिए इ वा, कोडुंबिए इ वा, इब्भे इ वा, सेट्ठी इ वा, सेणावई इ वा, सत्थवाहे इ वा, कस्सइ कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे हत्थिं वा, मुह-भंडगमंडियं, आसं वा, (वेसरं वा वसहं वा) थासग-चामर-मंडियं, सकडयं दासं दासिं वा, सव्वालंकार-विभूसियं अणुजाणिज्जा। से त्तं मीसिया लोइया दव्वाणुण्णा। से त्तं लोइया दव्वाणुण्णा।

प्रश्न–वह मिश्र लौकिक द्रव्य अनुज्ञा क्या है ?

उत्तर–जैसे मानलो कोई राजा, युवराज, ईश्वर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह, आदि हैं। वे किसी को किसी कारण से सन्तुष्ट होकर मुखादि के सर्व आभरणों

से मण्डित हाथी, या आसन चामर आदि सर्व आभरणों से मण्डित घोड़ा, आदि अथवा कटक आदि सर्व अलंकार से विभूषित दास दासी आदि की अनुज्ञा देते हैं अर्थात् पारितोषिक के रूप में देते हैं, या याचना पूरी करते हैं, वह मिश्र (अचित्त सहित सचित्त) लौकिक द्रव्य अनुज्ञा है। यह लौकिक अनुज्ञा है।

से किं तं कुप्पावयणिया दव्वाणुण्णा ? कुप्पावयणिया दव्वाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—१ सचित्ता २ अचित्ता ३ मीसिया।

प्रश्न—वह कुप्रावचनिक द्रव्य अनुज्ञा क्या है ?

(जो कुप्रावचनिक-अन्यमत के देव गुरु, द्रव्य विषयक अनुज्ञा देते हैं, वह 'कुप्रावचचिक द्रव्य अनुज्ञा है।)

उत्तर—कुप्रावचनिक द्रव्य अनुज्ञा के तीन भेद हैं। यथा—१ सचित्त २ अचित्त और ३ मिश्र।

से किं तं सचित्ता कुप्पावयणिया दव्वाणुण्णा ? सचित्ता कुप्पावयणिया दव्वाणुण्णा, से जहानामए आयरिए इ वा उवज्झाए इ वा कस्सइ कम्मि कारणम्मि तुट्ठे समाणे आसं वा, हत्थि वा, उट्टं वा, गोणं वा, खरं वा, घोडं वा, अयं वा, एलगं वा, दासं वा, दासिं वा अणुजाणिज्जा। से त्तं सचित्ता कुप्पावयणिया दव्वाणुण्णा।

प्रश्न—वह सचित्त कुप्रावचनिक द्रव्य अनुज्ञा क्या है ?

अनुज्ञा के तीन भेद हैं–१ सचित्त २ अचित्त और ३ मिश्र।

से किं तं सचित्ता लोगुत्तरिया दव्वाणुण्णा? सचित्ता लोगुत्तरिया दव्वाणुण्णा–से जहानामए आयरिए इ वा, उवज्झाए इ वा, पवत्तए इ वा, थेरे इ वा, गणी इ वा, गणहरे इ वा, गणावच्छेयए इ वा, सीसस्स वा, सिस्सणीए इ वा, कम्मि कारणम्मि तुट्ठे समाणे सीसं वा सिस्सणियं वा, अणुजाणिज्जा। से त्तं सचित्ता लोगुत्तरिया दव्वाणुण्णा।

प्रश्न–वह सचित्त लोकोत्तर द्रव्य अनुज्ञा क्या है?

(जो लोकोत्तर (जैन मत के) देव गुरु, सचित्त द्रव्य विषयक अनुज्ञा देते हैं, 'वह सचित्त लोकोत्तर द्रव्य अनुज्ञा' है)

उत्तर–जैसे मानलो कोई १ आचार्य हैं–व्याख्याकार मुनिराज हैं, अथवा संघ में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य रूप पाँच आचार पलवाने के लिए नियुक्त मुनिराज हैं, अथवा २ उपाध्याय हैं–सूत्रार्थ प्रदाता है, या संघ में ज्ञानाचार, दर्शनाचार पलवाने के लिए नियुक्त मुनिराज हैं, अथवा ३ प्रवर्तक हैं–संघ नायक की आज्ञा का संघ में प्रवर्तन कराने वाले मुनिराज हैं। अथवा ४ स्थविर हैं–संघ के चलचित्त बने हुए साधु आदि को स्थिरचित्त बनाने वाले मुनिराज हैं, या ५ गणी हैं–गण के आचार्य हैं, अथवा संघ नायक आचार्य को पढ़ानेवाले मुनिराज हैं, अथवा ६ गणधर हैं–गण के धारण करने वाले मुनिराज हैं, अथवा साध्वी संघ की व्यवस्था का चिन्तन करने वाले मुनिराज

हैं अथवा गणावच्छेदक हैं–गच्छ की उपकरण, सेवा आदि की व्यवस्था का ध्यान रखनेवाले मुनिराज हैं, वे किसी शिष्य या शिष्यणी पर, सेवा आदि किसी कारण से सन्तुष्ट हो कर शिष्य शिष्यणी की अनुज्ञा देते हैं, अर्थात् किसी शिष्य शिष्यणी को उनकी निश्रा में–नेतृत्व में, शिष्य शिष्यणी के रूप से प्रदान करते हैं, अथवा सेवा विचरण आदि के लिए पहले की गई साधु साध्वी सम्वन्धी याचना को पूरी करते हैं, तो वह सचित्त लोकोत्तर द्रव्य अनुज्ञा है।

से किं त्तं अचित्ता लोगुत्तरिया दव्वाणुण्णा ? अचित्ता लोगुत्तरिया दव्वाणुण्णा–से जहानामए आयरिए इ वा, उवज्झाए इ वा, पवत्तए इ वा, थेरेइ वा, गणी इ वा, गणहरे इ वा, गणावच्छेयए इ वा, सीसस्स वा, सिस्सणीए इ वा, कम्मि कारणम्मि तुट्ठे समाणे वत्थं वा, पायं वा, पडिग्गहं वा, कंवलं वा, पायपुच्छणं वा, अणुजाणिज्जा। से त्तं अचित्ता लोगुत्तरिया दव्वाणुण्णा।

प्रश्न–वह अचित्त लोकोत्तर द्रव्य अनुज्ञा क्या है ?

उत्तर–जैसे कोई १ आचार्य २ उपाध्याय ३ प्रवर्तक ४ स्थविर ५ गणी ६ गणधर, या ७ गणावच्छेदक हैं, वे किसी शिष्य अथवा शिष्यणी को किसी कारण से सन्तुष्ट होकर १ वस्त्र २ पात्र (आहार के पात्र) ३ पतद्ग्रह (शौच का पात्र) ४ कंवल या ५ पादप्रोंच्छन की अनुज्ञा देते हैं, तो वह अचित्त लोकोत्तर द्रव्य अनुज्ञा है।

से किं तं मीसिया लोगुत्तरिया दव्वाणुण्णा ? मीसिया लोगुत्तरिया दव्वाणुण्णा–से जहानामए आय-रिए इ वा, उवज्झाए इ वा, पवत्तए इ वा, थेरे इ वा, गणी इ वा, गणहरे इ वा, गणावच्छेयए इ वा, सीसस्स वा, सिस्सणीए इ वा, कम्मि कारणम्मि तुट्ठे समाणे, सीसं वा, सिस्सणियं वा, सभंडं-मत्तोवगरणं अणुजा-णिज्जा। से त्तं मीसिया लोगुत्तरिया दव्वाणुण्णा।

से त्तं लोगुत्तरिया दव्वाणुण्णा। से त्तं जाणगसरीर-भवियसरीर-दव्वाणुण्णा। से त्तं नो आगमओ दव्वा-णुण्णा। से त्तं दव्वाणुण्णा।

प्रश्न–वह मिश्र लोकोत्तर द्रव्य अनुज्ञा क्या है ?

उत्तर–जैसे–मान लो, कोई आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर, गणावच्छेक हैं, वे किसी शिष्य या शिष्यणी को किसी कारण से सन्तुष्ट होकर भाण्ड (मिट्टी के पात्र) मात्र (लकड़ी के पात्र) उपकरण (रजोहरण आदि) सहित शिष्य या शिष्यणी की अनुज्ञा देते हैं, अर्थात् अचित्त उपकरण सहित किसी शिष्य शिष्यणी को उनकी निश्रा में, शिष्य शिष्यणी के रूप में प्रदान करते हैं, अथवा सेवा विचरण आदि के लिए पहले की गई साधु साध्वी सम्बन्धी याचना को पूरी करते हैं। वह मिश्र लोकोत्तर द्रव्य अनुज्ञा है।

यह लोकोत्तर द्रव्य अनुज्ञा है। यह ज्ञायक शरीर भव्य-शरीर व्यतिक्ति द्रव्य अनुज्ञा है। यह नो आगम से द्रव्य अनुज्ञा

है। यह द्रव्य अनुज्ञा है।

से किं तं। खेत्ताणुण्णा ? खेत्ताणुण्णा–जण्णं जस्स खेत्तं अणुजाणइ, जत्तियं वा खेत्तं अणुजाणइ, जम्मि वा खेत्तं अणुजाणइ। से त्तं खेत्ताणुण्णा।

प्रश्न–वह क्षेत्र अनुज्ञा क्या है ?

उत्तर– जिस क्षेत्र विषयक अनुज्ञा दी जाती है, वह क्षेत्र अनुज्ञा है। अथवा जितने क्षेत्र विषयक अनुज्ञा दी जाती है, वह क्षेत्र अनुज्ञा है। अथवा जिस क्षेत्र में रहकर अनुज्ञा दी जाती है, वह क्षेत्र अनुज्ञा है। यह क्षेत्र विषयक अनुज्ञा है।

से किं तं कालाणुण्णा ? कालाणुण्णा, जण्णं जस्स कालं अणुजाणइ, जत्तियं वा कालं अणुजाणइ, जम्मि वा कालं अणुजाणइ, तं जहा–तीयं वा, पडुप्पण्णं वा, अणागयं वा, वसंतं वा, हेमंतं वा, पाउसं वा, अवत्थाण-हेउं। से त्तं कालाणुण्णा।

प्रश्न–वह काल अनुज्ञा क्या है ?

उत्तर–जैसे रहने-ठहरने आदि के लिए–१ अतीतकाल विषयक अनुज्ञा २ वर्त्तमान काल विषयक अनुज्ञा और ३ अनागत काल विषयक अनुज्ञा। अथवा–१ जैसे रहने-ठहरने आदि के लिए १ वसन्त ऋतु विषयक अनुज्ञा, या २ हेमन्त ऋतु विषयक अनुज्ञा और ३ वर्षाकाल विषयक अनुज्ञा। यह काल अनुज्ञा है।

से किं तं भावाणुण्णा ? भावाणुण्णा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–१ लोइया २ कुप्पावयणिया ३ लोगु-

त्तरिया।

प्रश्न–वह भाव अनुज्ञा क्या है ?

उत्तर–(उपयोग सहित अनुज्ञा पद के ज्ञाता को अथवा अनुज्ञानंदी आगम के ज्ञाता को–'भाव अनुज्ञा' कहते हैं। अथवा भाव विषयक अनुज्ञा को भाव अनुज्ञा कहते हैं। भाव अनुज्ञा के तीन भेद हैं–१ लौकिक २ कुप्रावचनिक और ३ लोकोत्तरिक।

से किं तं लोइया भावाणुण्णा ? लोइया भावाणुण्णा–से जहानामए राया इ वा, जुवराया इ वा जाव रुट्ठे समाणे, कस्सइ कोहाइभावं अणुजाणिज्जा। से त्तं लोइया भावाणुण्णा।

प्रश्न–वह लौकिक भाव अनुज्ञा क्या है ?

उत्तर–(जो लौकिक गुरुजन, भाव विषयक अनुज्ञा देते हैं, वह लौकिक भाव अनुज्ञा हैं) जैसे–कोई राजा, युवराज यावत् सार्थवाह है। वे किसी पर, किसी अविनय आदि कारण से रूष्ट होकर, क्रोध आदि भाव से अनुज्ञा देते हैं, अर्थात् उनपर क्रोध करते हैं, कटुतम शब्द कहते हैं, मृत्यु दण्ड आदि देते हैं, वह लौकिक भाव अनुज्ञा है।

से किं त्तं कुप्पावयणिया भावाणुण्णा ? कुप्पावयणिया भावाणुण्णा, से जहानामए केइ आयरिए इ वा, उवज्झाए इ वा, जाव कस्स वि कोहाइ भावं अणुजाणिज्जा। से त्तं कुप्पावयणिया भावाणुण्णा।

प्रश्न–वह कुप्रावचनिक भाव अनुज्ञा क्या है ?

उत्तर–जैसे–कोई कुप्रावचनिक आचार्य, उपाध्याय आदि हैं, वे किसी पर किसी अविनय आदि कारणों से रुष्ट होकर क्रोध आदि भाव से अनुज्ञा देते हैं अर्थात् क्रोध करते हैं, कटुतम शब्द कहते हैं, मृत्यु दण्ड आदि देते हैं, वह कुप्रावचनिक भाव अनुज्ञा है।

से किं तं लोगुत्तरिया भावाणुण्णा ? लोगुत्तरिया भावाणुण्णा–से जहानामए आयरिए इ वा, कम्मि कारणे तुट्ठे समाणे–कालोचियनाणाइ-गुण-जोगिणो, विणीयस्स खमाइप्पहाणस्स सुसीलस्स सीसस्स तिविसेणं तिकरणसुद्धेणं भावेणं आयारं वा, सुयगडं वा, ठाणं वा, समवायं वा, विवाहपण्णत्ति वा, णायाधम्मकहा वा, उवासगदसाओ वा, अंतगडदसाओ वा, अणुत्तरोववाइयदसाओ वा, पण्हावागरणं वा, विवागसुयं वा, दिट्ठिवायं वा, सव्व-दव्व-गुण-पज्जवेहिं सव्वाणुओगं वा, अणुजाणिज्जा। से त्तं लोगुत्तरिया भावाणुण्णा। से त्तं भावाणुण्णा।

प्रश्न–वह लोकोत्तर भाव अनुज्ञा क्या है ?

उत्तर–जैसे–कोई आचार्य उपाध्याय यावत् गणावच्छेदक हैं, वे किसी शिष्य या शिष्यणी पर किसी विनय आदि कारण से सन्तुष्ठ होने पर कालोचित् ज्ञानादिगुण के योग्य, विनीत, क्षमादि १० भेदवाले साधु धर्म में प्रधान, सुशील शिष्य

को विशुद्ध तीन करण और तीन योग से भाव पूर्वक १ आचारांग २ सूत्रकृतांग ३ स्थानांग ४ समवायांग ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग ६ ज्ञाताधर्मकथांग ७ उपासकदसांग ८ अंतकृतदसांग ९ अनुत्तरौपपातिक अंग १० प्रश्नव्याकरण अंग, ११ विपाक श्रुत अंग १२ दृष्टिवाद अंग की, या सर्व द्रव्य, सर्व गुण, सर्व पर्यव युक्त सर्व अनुयोग—व्याख्यान की अनुज्ञा देते हैं, अर्थात् आचारांग आदि सम्बन्धी सूत्र अर्थ धारणा आदि को धारण करने की और दूसरों को देने की अनुमति देते हैं, या इस विषयक पूर्व में जो सूत्र अर्थ धारणा आदि देने की, शिष्य शिष्यणी ने याचना की थी, वह पूरी करते हैं, वह लोकोत्तर भाव अनुज्ञा है। यह भाव अनुज्ञा है।

किमणुण्णा कस्सऽणुण्णा, केवइयकालं पवत्तियाणुण्णा ?
आइगरे पुरिमताले, पवत्तिया उसहसेणस्स ॥१॥

प्रश्न—१ अनुज्ञा क्या है, २ अनुज्ञा किसे दी गई और ३ अनुज्ञा कब से प्रवर्तित हुई ?

उत्तर—सबसे पहले आदिकर श्री ऋषभदेव भगवान् ने पुरिमताल नगर में, श्री ऋषभसेन (अपर नाम पुंडरीक) गणधर को अनुज्ञा दी अर्थात् सूत्र आदि को धारण करने की और दूसरों को सिखलाने की आज्ञा दी।

१ अणुण्णा २ उण्णमणी ३ नमणी,
४ नामणि ५ ठवणा ६ भावे ७ पभावणं ८ पयारो।
९ तदुभयहियं १० मज्जाया;

११ नाओ १२ कप्पो य १३ मग्गो य ॥२॥
१४ संगह १५ संवर १६ निज्जर,
१७ ट्ठिइकरणं चेव १८ जीववुड्ढिपयं।
१९ पय २० पवरं चेव तहा,
वीसमणुण्णाइ नामाइं ॥३॥

अर्थ–अनुज्ञा के ये एकार्थक, नानाघोष और नाना व्यञ्जन वाले २० नाम हैं–१ अनुज्ञा २ उन्नमनी ३ नमनी ४ नामनी ५ स्थापना ६ भाव ७ प्रभावना ८ प्रचार ९ तदुभय हित १० मर्यादा ११ न्याय १२ मार्ग १३ कल्प १४ संग्रह १५ संवर १६ निर्जरा १७ स्थितिकरण १८ जीववृद्धि पद १९ पद और २० प्रवर।

विवेचन–१अनुज्ञा–विनय, क्षमा, सुशीलता आदि सूत्रार्थ को धारण करने और सिखाने के अनुकूल गुण प्राप्त होने पर गुरुदेव शिष्य को अनुज्ञा के योग्य जानकर अनुज्ञा देते हैं, अतः इसे 'अनुज्ञा' कहते हैं।

२ उन्नमनी--अनुज्ञा, जीवन को उन्नत बनाती है (पात्र बनाती है) अतएव अनुज्ञा को 'उन्नमनी' कहते हैं।

३ नमनी--अनुज्ञा, आत्मा को 'नम्र'--विनित बनाती है, अतएव अनुज्ञा को 'नमनी कहते हैं।

४ नामनी–अनुज्ञा, गुरुदेव के हृदय को भी नम्र करती है (सूत्रार्थ धराने की भावना न हो, तो भी भाव उत्पन्न कर देती है) अतएव अनुज्ञा को 'नामनी' कहते हैं।

५ स्थापना--अनुज्ञा पूर्वक श्रुतज्ञान धारण करने से श्रुत के

शब्द हृदय में स्थापित हो जाते हैं--स्थिर हो जाते हैं, अतएव अनुज्ञा को 'स्थापना' कहते हैं।

६ भाव—अनुज्ञा पूर्वक श्रुतज्ञान को धारण करने से श्रुत के भाव हृदयंगम हो जाते हैं, अतएव अनुज्ञा को—'भाव' कहते हैं।

७ प्रभावना—अनुज्ञा पूर्वक श्रुतज्ञान सीखने से श्रुतज्ञान, आत्मा को प्रभावित करता है, अतएव श्रुतज्ञान को—'प्रभावना' कहते हैं।

८ प्रचार—अनुज्ञापूर्वक श्रुतज्ञान सीखने से जगत् में श्रुतज्ञान का महत्व वढ़कर, श्रुतज्ञान का प्रचार होता है,अतएव अनुज्ञा को 'प्रचार' कहते हैं।

९ तदुभय हित—अनुज्ञा पूर्वक श्रुतज्ञान सीखने से सीखनेवाले का और अन्य का भी हित होता है, अतएव अनुज्ञा को 'तदुभय हित' कहते हैं।

१० मर्यादा—अनुज्ञा पूर्वक श्रुतज्ञान सीखने से शिष्य सम्यक्-श्रुत की मर्यादा में रहता है, (सूत्र विरुद्ध श्रद्धा प्ररूपणा और स्पर्शनावाला नहीं बनता) अतएव अनुज्ञा को 'मर्यादा' कहते हैं।

११ न्याय—अनुज्ञा पूर्वक श्रुतज्ञान सीखने से श्रुतज्ञान का नियमित लाभ होता है, अतएव अनुज्ञा को 'न्याय' कहते हैं।

१२ कल्प—यदि कोई श्रुतज्ञान आदि में वड़ा भी हो, और उसे किसी छोटे से कोई अभिनव ज्ञान लेना हो, तो उसका भी कल्प यह है कि 'अनुज्ञापूर्वक श्रुतज्ञान ग्रहण करे,' अतएव अनुज्ञा को 'कल्प' कहते हैं।

१३ मार्ग—अनुज्ञा, श्रुतज्ञान को प्राप्त करने का मार्ग है,

अतएव अनुज्ञा को 'मार्ग' कहते हैं।

१४ संग्रह–अनुज्ञापूर्वक श्रुतज्ञान सीखने से श्रुत का अधिक संग्रह होता है, अतएव अनुज्ञा को 'संग्रह' कहते हैं।

१५ संवर–अनुज्ञा पूर्वक श्रुतज्ञान सीखने से ज्ञानावरणीय कर्म का नूतन बंध रुकता है, अतएव अनुज्ञा को 'संवर' कहते हैं।

१६ निर्जरा–अनुज्ञा पूर्वक श्रुतज्ञान सीखने से पुराने ज्ञानावरणीय कर्मों की निर्जरा होती है, अतएव अनुज्ञा को 'निर्जरा' कहते हैं।

१७ स्थितिकरण–अनुज्ञा पूर्वक सीखा हुआ श्रुतज्ञान, आत्मा को आराधक बनाकर आत्मा की मोक्षमार्ग में स्थिति को सुदृढ़ बनाता है। अतएव अनुज्ञा को 'स्थितिकरण' कहते हैं।

१८ 'जीववृद्धि पद'–अनुज्ञा पूर्वक सीखा हुआ श्रुतज्ञान, जीव में उत्तरोत्तर अन्यान्य गुणों की वृद्धि करता है, अतएव अनुज्ञा को 'जीव वृद्धि पद' कहते हैं।

१९ पद–अनुज्ञा पूर्वक श्रुतज्ञान सीखने वाला, श्रुतज्ञान और श्रुतार्थियों के लिए आधारभूत बन जाता है, अतएव अनुज्ञा को 'पद' कहते हैं।

२० प्रवर–अनुज्ञापूर्वक श्रुतज्ञान सीखने से, श्रुतज्ञान अधिकाधिक निर्मल और तेजस्वी होता है, अतएव अनुज्ञा को 'प्रवर' कहते हैं।

लघु नंदी

(योग क्रिया रूप बृहद् नन्दी)

णाणं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा—१ आभिणिबोहियनाणं, २ सुयनाणं, ३ ओहिनाणं, ४ मणपज्जवनाणं, ५ केवलनाणं। तत्थ चत्तारि नाणाइं, ठप्पाइं, ठवणिज्जाइं* नो उद्दिसिज्जंति नो समुद्दिसिज्जंति नो अणुण्णविज्जंति। सुयणाणस्स पुण १ उद्देसो, २ समुद्देसो, ३ अणुण्णा, ४ अणुओगो य पवत्तई।

जइ सुयनाणस्स उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ, किं अंगपविट्ठस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ? किं अंग बाहिरस्स उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ ? अंगपविट्ठस्सवि उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ, अंग बाहिरस्स वि उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तई।

जइ अंगबाहिरस्स उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ, किं आवस्सगस्स उद्देसो, समुद्देसो,

---

* इनमें से (श्रुतज्ञान को छोड़कर) चार ज्ञान स्थाप्य हैं। ये जिसमें हैं, उसीमें रहते हैं, देने-लेने के व्यवहार में नहीं आते। इनका उद्देश समुद्देश आदि नहीं होता।

अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ ? आवस्सग वइरित्तस्स वि उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य, पवत्तइ ? आवस्सगस्स वि उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ। आवस्सगवइरित्त उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ। जइ आवस्सगस्स उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ, किं सामाइयस्स चउव्वीसत्थस्स, वंदणस्स, पडिक्कमणस्स, काउस्सग्गस्स पच्चक्खाणस्स—सव्वेसिं पि एएसिं उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ।

जइ आवस्सग वइरित्तस्स उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ, किं कालियसुयस्स उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ ? किं उक्कालियसुयस्स उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ ? कालियसुयस्स वि उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ, उक्कालियसुयस्सवि उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ।

जइ उक्कालियस्स उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ, किं दसवेकालियस्स, कप्पियाकप्पियस्स, चुल्लकप्पसुयस्स, महाकप्पसुयस्स, उववाइयसुयस्स, रायपसेणियसुयस्स, जीवाभिगमस्स, पण्णवणाए, महापण्णवणाए, पमायप्पमायस्स, नंदीए, अणुओगदाराणं,

देविंदत्थवस्स, तंदुलवेयालियस्स, चंदाविज्झयस्स, सूर-पण्णत्तीए, पोरसिमंडलस्स, मंडलपवेसस्स, विज्जाचरण-विणिच्छयस्स, गणिविज्जाए, झाणविभत्तीए, मरण-विभत्तीए, आयविसोहीए, वीयरागसुयस्स, संलेहणासु-यस्स, विहारकप्पस्स, चरणविहीए, आउरपच्चक्खाणस्स, महापच्चक्खाणस्स, सव्वेसिं पि एएसिं उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ ।

जइ कालियस्स उद्देसो जाव अणुओगो य पवत्तइ किं उत्तरज्झयणाणं, दसाणं, कप्पस्स, ववहारस्स, निसी-हस्स, महानिसीहस्स, इसिभासियाणं, जंबूदीवपण्णत्तीए, चंदपण्णत्तीए, दीवसागरपण्णत्तीए, खुड्डियाविमाणप-विभत्तीए, महल्लियाविमाणपविभत्तीए, अंगचूलियाए, वग्गचूलियाए, विवाहचूलियाए, अरुणोववायस्स, वरुणो-ववायस्स, गरुलोववायस्स, धरणोववायस्स, वेसमणो-ववायस्स, वेलंधरोववायस्स, देविंदोववायस्स, उट्ठाण-सुयस्स, समुट्ठाणसुयस्स, नाग-परियावलियाणं, निरया-वलियाणं, कप्पियाणं, कप्पवडिंसियाणं, पुप्फियाणं, पुप्फ-चूलियाणं, वण्हिदसाणं, आसीविसभावणाणं, दिट्ठिविस-भावणाणं, (चारणभावणाणं) सुमिणभावणाणं, महा-सुमिणभावणाणं, तेयग्गिनिसग्गाणं, सव्वेसिं पि एएसिं उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ ।

जइ अंगपविट्ठस्स उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ, किं आयारस्स, सुयगडस्स, ठाणस्स, समवायस्स, विवाहपण्णत्तीए, नायाधम्मकहाणं, उवासगदसाणं, अंतगडदसाणं, अणुत्तरोववाइय-दसाणं, पण्हावागरणाणं, विवागसुयस्स, दिट्ठीवायस्स, सव्वेसिं पि एएसिं उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ ।

इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च इमस्स साहुस्स, इमाए साहुणीए, उद्देसो, समुद्देसो, अणुण्णा, अणुओगो य पवत्तइ । खमासमणाणं हत्थेणं, सुत्तेणं, अत्थेणं, तदुभएणं, उद्देसोमि, समुद्देसोमि, अणुजाणामि । ॥ नंदी समत्ता ॥
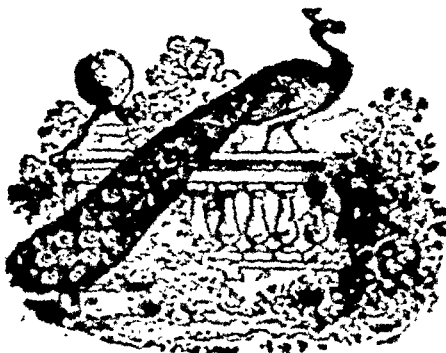
卐 संघ के प्रकाशन

	मूल्य	पोस्टेज
१ मोक्षमार्ग ग्रंथ	५–००	१–७१
२ भगवती सूत्र भाग १	५–००	१–८३
३ भगवती सूत्र भाग २	५–००	१–८३
४ उत्तराध्ययन सूत्र	२–००	०–४६
५ उववाइय सुत्त	२–००	०–४९
६ जैन स्वाध्यायमाला	२–००	०–४९
७ दशवैकालिक सूत्र	१–२५	०–३७
८ अंतगडदसा सूत्र	१–००	०–२५
९ सिद्धस्तुति	०–३५	०–०८
१० स्त्री प्रधान धर्म	०–२५	०–०८
११ सुख विपाक सूत्र	०–२०	०–०८
१२ प्रतिक्रमण सूत्र	०–१६	०–०८
१३ सामायिक सूत्र	०–०७	०–०५
१४ सूयगडांग सूत्र	अप्राप्य	
१५ जैनसिद्धांत थोकसंग्रह भाग १	१–००	०–२५
१६ आत्मसाधना संग्रह	१–२५	०–४०

☞ छप रहा है

सम्यक्त्व विमर्श छप रही है।

संघ का मुख पत्र "सम्यग्दर्शन" पाक्षिक के ग्राहक बनिए। वार्षिक मूल्य ६) रु., प्रेमी ग्राहक १०) रु.।